शक्तिभिः सह ॥ ३ ॥ " इत्यावाह्य पूर्वोक्तमन्त्रेण षोडशोपचारैः पूजयित्वा । माषभक्तबलिं कूष्माण्डादिबलिं वा निवेदयेत् ॥ कुमारीपूजाविधिनिर्णयः। ततः कुमारीपूजा। तदुक्तं हेमाद्रौ स्कान्दे–"एकैकां पूजयेत्कन्यामेकवृद्ध्या तथैव च। द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्रत्येकं नवकं तु वा ॥" तथा–"नवभिर्लभते भूमिमैश्वर्यं द्विगुणेन तु। एकवृद्ध्या लभेत्क्षेममेकैकेन श्रियं लभेत् ॥ एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थे तां विवर्जयेत्। गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥ २ ॥" तेन द्विवर्षामारभ्य दशवर्षापर्यन्ता एव पूज्या न त्वन्याः। तासां च क्रमेण कुमारिका त्रिमूर्तिः कल्याणी रोहिणी काली चण्डिका शाम्भवी दुर्गा सुभद्रा इति नामभिः पूजा कार्या। आसां च प्रत्येकं पूजामन्त्राः फलविशेषाश्च तत्रैव ज्ञेयाः। सामान्यतस्तु–"मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम्। नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् ॥ एवमभ्यर्चनं कुर्यात्कुमारीणां प्रयत्नतः। कंचुकैश्चैव वस्त्रैश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्भोजयेत्पायसादिभिः ॥ २ ॥" तथा–"ग्रन्थिस्फुटितशीर्णाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम्। जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां तनुरोमशाम् ॥ संत्यजेद्रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम् ॥" तथा- "ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम्। लाभार्थे वैश्यवंशोत्थां सुतार्थे शूद्रवंशजाम्। दारुणे चान्त्यजातानां पूजयेद्विधिना नरः ॥" इति। " तत्र वेदपारायण-

---

आवाहन करके और पूर्वोक्तमंत्रसे षोडशोपचार पूजन करके उरद और भात वा कूष्मांड और पेठेकी बलि देनी चाहिये। इसके उपरान्त कुमारीपूजा करे यही हेमाद्रिमें स्कंदपुराणके वाक्यसे लिखा है कि,एक एक कन्याकी पूजा करे, वा एक २ की वृद्धिसे करे, वा दूनी, वा तिगुनी, वा प्रतिदिन नवकी पूजा करे। कथन भी है कि, नौ कन्याओंसे भूमिलाभ दूनीसे ऐश्वर्य, एकवृद्धिसे कुशल, एक एक से लक्ष्मी प्राप्त होती है, एक वर्षकी जो कन्या हो उसको पूजामें त्याग दे। कारण कि, उसको गन्धपुष्पफलआदिकी प्रीति नहीं है इससे दो वर्षसे प्रारम्भ कर दशवर्षपर्यन्तकी कन्या ही पूजनीय है और उनकी क्रमसे इन नामोंसे पूजा करे कि, कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्भवी, दुर्गा, सुभद्रा इन प्रत्येकोंकी पूजा मंत्र,फल विशेषसे वहांसे ही जाननी चाहिये। सामान्यसे तो ये हैं, कि मंत्रके अक्षररूप लक्ष्मी,मातृओंकी रूपधारिणी नवदुर्गारूप कन्याओंका मैं बुलाना कहता हूं।नानाप्रकारके भक्ष्यभोज्यआदिसे भोजन करावे वैसेही यह कहा है कि, ऐसी कन्याको त्याग देना कि,जिसके ग्रंथि निकल रही हों जिसका अंग गिरा हो, जो रुधिर, राधवाले व्रणसे युक्त, जो जन्मान्ध हो जिसके नेत्र कायर हों, कानी, कुरूपा, दहपर रोमवाली, जो रोगिणी हो, जो दासीसे उत्पन्न हो उसे न बुलावे। कहा भी है कि, ब्राह्मणीको सब कामोंमें, जयके निमित्त क्षत्रियकी, लाभके निमित्त वैश्यकी, पुत्रके निमित्त शूद्रकी और मारणमें चाण्डालकी कन्याको विधिसे पूजन करे। इसमें वेदका पारायण करना भी रुद्रया-

निर्णयः । अत्र वेदपारायणमप्युक्तं रुद्रयामले-"एवं चतुर्वेदविदो विप्रान्सर्वान्प्रसादयेत् । तेषां च वरणं कार्यं वेदपारायणाय वै ॥ " इति । तथा-"एकोत्तराभिवृद्ध्या तु नवमी यावदेव हि । चण्डीपाठं जपेच्चैव जापयेद्वा विधानतः ॥" तिथितत्त्वे वाराहीतन्त्रे-"प्रणवं चादितो जप्त्वा स्तोत्रं वा संहितां पठेत् । अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपूरुषः ॥ आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं प्रजपेत्सुधीः । हस्तसंस्थापनादेव यस्माद्धि विफलं भवेत् ॥ स्वयं च लिखितं यच्च शूद्रेण लिखितं भवेत् । अब्राह्मणेन लिखितं तच्चापि विफलं भवेत् ॥ ऋषिच्छन्दाादिकं न्यस्य पठेत्स्तोत्रविचक्षणः । स्तोत्रं न दृश्यते यत्र प्रणवं तत्र विन्यसेत् । सर्वत्र पाठ्ये विज्ञेयस्त्वन्यथा विफलं भवेत् ॥ ९ ॥" एवं नवमीपर्यन्तं प्रत्यहं कुर्यात् । अत्र विशेषो हेमाद्रौ देवीपुराणे-"यदाद्ये दिवसे कुर्याच्चण्डिकापूजनादिकम् । द्विगुणं तद्द्वितीयेऽह्नि त्रिगुणं तत्परेऽहनि ॥ नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम् ॥ " इति । एतेन नवरात्रे पूजैव प्रधानम् । उपवासादि त्वङ्गमिति गम्यते । तिथिह्रासे तु तिथिद्वयनिमित्तं पूजादि महालयश्राद्धवदेकदिने आवृत्त्या कार्यम् । वृद्धौ तद्वदेवावृत्तिः । ततो नवरात्रोपवासादिसंकल्पं कुर्यात् । स्वस्याशक्तावन्येन वा पूजादि कारयेत् । 'स्वयं वाप्यन्यतो वापि पूजयेत्पूजयीत वा' इति तरङ्गिण्यां देवीपुराणात् ।

मलमें लिखा है कि, इसी प्रकार चार वेदोंके ज्ञाता सब ब्राह्मणोंको प्रसन्न करना चाहिये । वेदपारायणके निमित्त उनका वरण करे, इसी प्रकार एकोत्तरवृद्धिसे नवमीपर्यन्त चण्डीको जपे, व विधिपूर्वक जपवावे । तिथितत्त्व और वाराहीतंत्रमें कहा है कि, आदिमें ॐकार उच्चारण कर स्तोत्र वा संहितापाठ करे और अन्तमें प्रणवको दे यह आदिपुरुषने लिखा है । पाट आदिके आधारपर पुस्तक रखकर बुद्धिमान् मनुष्यको बाँचना चाहिये। कारण कि,हाथमें स्थापनसे ही फलहीनता होती है। जो पुस्तक अपनी लिखी हो वा शूद्रकी लिखी वा ब्राह्मणसे भिन्नकी लिखी हो वह भी निष्फल है; बुद्धिमान् मनुष्य ऋषि, छन्द आदिका न्यास करके स्तोत्रपाठ करे। जिस स्तोत्रका न्यास न हो वहां ॐकारका न्यास करे यह सब पाठोंमें जानना चाहिये । अन्यथा करनेसे निष्फल होता है।इस प्रकार नवमीपर्यन्त प्रतिदिन पूजन करे इसमें विशेष हेमाद्रिमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, जो चंडिकाकी पूजा आदि पहले दिनमें करे, दूसरे दिन उससे दुगुनी, तीसरे दिन तिगुनी करे, इसी प्रकार नवमी तिथितक वृद्धिसे पूजा और जप आदि करना चाहिये । इससे नवरात्रमें पूजा ही प्रधान है, व्रत आदि अंग हैं यह जाना गया, तिथिको हानि हो तो दो तिथियोंका पूजन आदि महालयश्राद्धके समान एक दिनमें ही आवृत्तिसे कर ले, वृद्धिमें भी उसी प्रकार आवृत्ति करनी चाहिये । फिर नवरात्र आदिसे व्रत आदिका संकल्प करना चाहिये, अपनी शक्ति न हो तो दूसरेसे व्रत आदि करा देना। कारण कि, तरंगिणीमें देवीपूराणका वाक्य है कि, आप पूजा करे, वा दूसरेसे पूजा करावे । यह देवीपूजन शुक्रास्त आदिमें भी

शुक्रास्तादावपि देवीपूजननिर्णयः। इदं च देवीपूजनं शुक्रास्तादावपि कार्यम्। तदुक्तं धर्मप्रदीपे–"नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ। कार्या चैव स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः॥" इति। मलमासे तु वचनाभावान्न भवति। तत्राश्वपूजननिर्णयः। अत्र साश्वस्याश्वपूजनमुक्तं मदनरत्ने देवीपुराणे–"आश्वयुक् शुक्लप्रतिपत्स्वातियोगे शुभे दिने। पूर्वमुच्चैःश्रवा नाम प्रथमं श्रियमावहत्॥ तस्मात्साश्वैर्नरैस्तत्र पूज्योऽसौ श्रद्धया सह। पूजनीयाश्च तुरगा नवमी यावदेव हि॥ शान्तिः स्वस्त्ययनं कार्यं तदा तेषां दिने दिने। धान्यं भल्लातकं कुष्ठं वचा सिद्धार्थकास्तथा॥ पञ्चवर्णेन सूत्रेण ग्रन्थिं तेषां तु बन्धयेत्। वायव्यैर्वारुणैः सौरैः शाक्तैर्मन्त्रैः सवैष्णवैः॥ वैश्वदेवैस्तथाग्नेयैर्होमः कार्यो दिनेदिने॥ ४॥" कल्पतरौ त्वेतदग्रेऽन्यदपि–"ज्येष्ठे योगे पुरा तत्र गजाश्चाष्टौ महाबलाः। पृथिवीमवहन्पूर्वं सशैलवनकाननाम्॥ कुमुदैरावतौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः। सुप्रतीकोऽञ्जनो नीलस्तस्मात्तांस्तत्र पूजयेत्॥ शाक्राद्दक्षात्समारभ्य नवम्यन्तं च पूर्ववत्॥ ३॥" अश्ववद्धोमादीत्यर्थः॥ अथ प्रतिपदादिविशेषनिर्णयः। अथ प्रतिपदादिषु विशेषो दुर्गाभक्तितरंगिण्यां भविष्ये–"केशसंस्कारद्रव्याणि प्रदद्यात्प्रतिपद्दिने। पक्वतैलं द्वितीयायां केशसंयमहेतवे।" पट्टादोरमिति गौडपादः॥ "दर्पणं च तृतीयायां सिन्दूरालक्तकं तथा॥ मधुपर्कं चतुर्थ्यां तु तिलकं नेत्रमण्डनम्। पञ्च-

---

करना यही धर्मप्रदीपमें लिखा है कि, शुक्र वा बृहस्पति अस्तका हो वा सिंहका बृहस्पति हो तो भी कुलधर्मसे अपनी देवीका पूजन प्रतिवर्ष करना चाहिये। मलमासमें वाक्यके न मिलनेसे पूजा नहीं होती। इसमें अपने घोडेकी पूजा मदनरत्नमें देवीभागवतके वाक्यसे लिखी है कि, आश्विनकी शुक्ल प्रतिपदा स्वाति नक्षत्रके योगसे अच्छे दिनमें प्रथम उच्चैःश्रवानाम अश्व लक्ष्मीको लाये थे, इससे अश्ववाले मनुष्यको श्रद्धापूर्वक अश्वका पूजन करना चाहिये। जबतक नवमी हो तबतक घोडोंका पूजन करे और प्रतिदिन उनकी शांति और स्वस्तिवाचन करे और धनियां, भिलावा, कूठ, वच, सरसोंकी पचरंगे सूत्रसे घोडोंके ग्रंथि बांधे और वायु, वरुण, सूर्य, देवी, विष्णुकी मन्त्रोंसे प्रतिदिन होम करना चाहिये। कल्पतरुमें इससे आगे और भी लिखा है। प्रथम ज्येष्ठाके योगमें वहां आठ महाबली हाथी पर्वत, वन, कानन सहित पृथ्वीको धारण करते हैं। उनके नाम ये हैं कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदंत, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन, नील। इस कारणसे इनकी इस स्थलमें पूजा करनी चाहिये। ज्येष्ठा नक्षत्रसे लेकर नवमीपर्यन्त पूर्वके तुल्य करे और अश्वके सदृश होम आदि करे। अब प्रतिपदा आदि तिथियोंमें विशेष लिखते हैं–दुर्गाभक्तितरंगिणी ग्रन्थमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, प्रतिपदाके दिन संस्कारके द्रव्य दे, केशोंके थमनेके निमित्त पकाहुआ तेल द्वितीयाको देना, गौडोंने पक्व तैलके स्थानमें रेशम डोरा लिखा है। दर्पण, सिन्दूर, लाखका रंग तीजको देना, मधुपर्क, तिलक, नेत्रोंका मण्डन चतुर्थीको देना, अंगराग

म्यामङ्गरागं च शक्त्यालंकरणानि च। षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायं सन्ध्यासु कारयेत् ॥ सप्तम्यां प्रातरानीय गृहमध्ये प्रपूजयेत् । उपोषणमथाष्टम्यामात्मशक्त्या च पूजनम् ॥ नवम्यामुग्रचण्डायाः पूजां कुर्याद्बलिं तथा। संपूज्य प्रेषणं कुर्याद्दशम्यां सारवोत्सवैः ॥ अनेन विधिना यस्तु देवीं प्रीणयते नरः। स्कन्दवत्पालयेद्देवी तं पुत्रधनकीर्तिभिः ॥ ९ ॥" कृत्यतत्त्वार्णवे लैङ्गे-"कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वार्द्रभेऽपि वा। नवम्यां बोधयेद्देवीं महाविभवविस्तरैः ॥ शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोक्षणम् । प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापयेत्सुशुभैर्जलैः ॥ षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेऽधिवासनम् । सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् ॥ पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः। विसर्जनं दशम्यां तु क्रीडाकौतुकमंगलैः ॥ ४ ॥" अत्र नवम्यां बोधनासामर्थ्ये षष्ठ्यां बोधनमिति स्मार्ताः॥ फलभूमार्थिनः समुच्चय इत्यन्ये। नवम्यां मन्त्रः कालिकापुराणे-"इषे मास्यसिते पक्षे नवम्यामार्द्रभे दिवा। श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां यावत्पूजां करोम्यहम् ॥" अत्र स्त्रीव्रते विशेषः परिभाषायां ज्ञेयः। तत्राशौचनिर्णयः। अथाशौचे विशेषो निर्णयामृते विश्वरूपनिबन्धे-"आश्विने शुक्लपक्षे तु प्रारब्धे नवरात्रके। शावाशौचे समुत्पन्ने क्रिया कार्या कथं बुधैः ॥ सूतके वर्तमाने च तत्रोत्पन्ने सदा बुधैः। देवीपूजा प्रकर्तव्या पशुयज्ञविधानतः ॥ सूतके पूजनं प्रोक्तं दानं

रंग और शक्तिअनुसार भूषण पञ्चमीको देना, षष्ठीको बेल वृक्षके नीचे और सन्ध्याकालमें जागरण करे, सप्तमीको प्रातःकाल आकर घरमें पूजा करे, अष्टमीको व्रत और अपनी भक्तिसे पूजन करे, नवमीको उग्रचण्डीकी पूजा करे और बलि देनी चाहिये और दशमीको श्रेष्ठ उत्सवोंमें पूजा करके प्रेषण करनी चाहिये। जो मनुष्य इस विधिसे देवीको पूजनेसे प्रसन्न करता है, उसका पुत्र धन कीर्तिसे देवी कार्तिकेयके तुल्य पालन करती है। कृत्यतत्त्वार्णवमें लिंगपुराणका वाक्य है कि, कन्याके कृष्णपक्षमें आर्द्रा नक्षत्रमें पूजा कर नवमीको बडे धनके विस्तारसे देवीका जागरण करे और शुक्लपक्षकी चतुर्थीको देवीके केश उतरवावे और पञ्चमीको प्रातःकाल श्रेष्ठ जलोंसे स्नान करावे, छठको सन्ध्याके समय बेलके वृक्षके नीचे सुवावे, सप्तमीको बेलपत्रसे पूजा और अष्टमीको व्रत करे और नवमीको जागरण पूजन और विधिसे बलि देनी चाहिये, दशमीको विहारउत्साह मंगलसे बिदा करे। यहां जागरणकी सामर्थ्य न हो तो छठको जागरण करे और कोई यह कथन करते हैं कि, अधिक फलकी इच्छावाला समुच्चय करे, अर्थात् एक दिन दो कार्य करे। नवमीका मन्त्र कालिकापुराणमें कहा है कि, आश्विनमासके कृष्णपक्षकी नवमीको आर्द्रा नक्षत्रमें जबतक तुम्हें बेलके वृक्षके नीचे बोधन करता हूं यहां स्त्रीके व्रतमें यह विशेष है। अब अशौचमें विशेष निर्णयामृत और विश्वरूपनिबन्धमें कहा है कि, आश्विनके शुक्लपक्ष नवरात्रके आरम्भमें मरणाशौच हो जाय तो बुद्धिमान् मनुष्य किस प्रकार कर्म करे और सूतक वर्तमान हो

चैव विशेषतः ॥ देवीमुद्दिश्य कर्त्तव्यं तत्र दोषो न विद्यते ॥ ३ ॥" इति कालादर्शे। विष्णुरहस्येऽपि–"पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः। तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनविवर्जितम् ॥" इति। गौडनिबन्धे तिथितत्त्वेऽप्युक्तम्–आश्विनकृष्णनवम्यादिशुक्लप्रतिपदादि, षष्ठ्यादि, सप्तम्यादि, चैकं कर्म। अतश्च मध्ये अशौचपातेऽपि न दोषः। 'संकल्पो व्रतसत्रयोः' इति विष्णूक्तेरिति। आरब्धं स्वयमेव कार्यम्। अनारब्धं त्वन्येन कारयेदिति दिवोदासः। रजस्वला त्वन्येन कारयेदिति सूतकादिवद्विशेषवचनाभावात्। स्त्रीणां च नवरात्रे ताम्बूलादिचर्वणं भवति। तदुक्तं व्रतहेमाद्रौ गारुडे–" गन्धालंकारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम्। उपवासे न दुष्यंति दन्तधावनमञ्जनम् ॥" इति। एतत्सभर्तृकोपवासविषयम्। अन्यश्चात्र विशेषः परिभाषायामुक्तः। उपांगललिताव्रतनिर्णयः। आश्विनशुक्लपञ्चम्यामुपाङ्गललिताव्रतं महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धम्। तत्र यद्यपि कथायां कालविशेषो नोक्तस्तथापि–'रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रनिस्वनैः' इति रात्रौ जागरोक्तेः शक्तिपूजाया रात्रौ प्राशस्त्याच्च रात्रिव्यापिनी ग्राह्येति केचित्। वस्तुतस्तु वचनं विना रात्रिपूजायां मानाभावात् जागरस्य

तो किस प्रकार करना? सूतक उत्पन्न हो तो बुद्धिमान् मनुष्यको पशुयज्ञविधिसे देवीकी पूजा करनी चाहिये, सूतकके विषय पूजन और दान विशेष कर लिखा है वह देवीके निमित्त करनी उसमें दोष नहीं है यह कालादर्शमें कहा है। विष्णुरहस्यमें भी कहा है कि, व्रतके नियमवालोंने जिस व्रतका प्रथम संकल्प करलिया है उस शुद्ध व्रतको मनुष्यको करना चाहिये, परन्तु दान और पूजन न करे। गौड निबन्ध और तिथितत्त्वमें भी लिखा है कि, आश्विनकृष्ण नौमीसे वा शुक्लप्रतिपदा वा छठसे वा सातैंसे एक २ कर्म हैं, इनके बीचमें अशौच होजाय तो कुछ दोष नहीं है। कारण कि व्रतयज्ञका संकल्प होता है, यह विष्णुने लिखा है। प्रारम्भ किये व्रत आदिको स्वयं करे और जो आप प्रारम्भ न किया हो तो औरसे करवाना चाहिये, यह दिवोदासने कहा है। रजस्वला आदि स्त्री सूतक आदिके तुल्य विशेष वाक्यके न मिलनेसे औरपै करवाय दे, स्त्रियोंको नवरात्रमें ताम्बूल आदिका चर्वण होता है सोई व्रत हेमाद्रिमें गरुडपुराणके वाक्यसे लिखा है कि गन्ध, भूषण, पान, पुष्पमाला, चन्दन, दँतौन, अञ्जन इनका इस व्रतमें दोष नहीं, यह सुहागिनके व्रतमें है और इसमें विशेष परिभाषामें लिखा है। आश्विनशुक्लपंचमीको उपांगललिताका व्रत महाराष्ट्रोंमें विख्यात है यद्यपि कथामें उसका कोई समय नहीं लिखा तो भी गीत वादित्र शब्दोंसे रात्रिमें जागरण करे इस कथनसे रात्रिमें जागरण लिखा है और शक्तिकी पूजा रात्रिमें श्रेष्ठ है इससे रात्रिव्यापिनी यह तिथि ग्रहण करनी, यह किन्हीका कथन है। सिद्धान्त तो यह है कि, वाक्यके विना रात्रिपू-

चांगत्वाद्युग्मवाक्यात् । "भुक्त्वा जागरणे नक्ते चन्द्राद्यर्घ्यव्रते तथा । ताराव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगो विशिष्यते ॥" इति कालहेमाद्रौ वचनाच्च पूर्वविद्धा ग्राह्या । रात्रिशब्दः पूर्वविद्धावचन इति हेमाद्रिः । अस्य च भुक्त्वा जागरणरूपत्वादिति साधु प्रतीमः । भुक्त्वा जागरणं यत्रेत्येकं पदं तस्मिन् व्रते इत्यर्थः । अन्यथा भुक्त्वेत्यसंगतेः । दिवोदासीयेऽप्येवम् । सरस्वत्यावाहननिर्णयः । आश्विनशुक्लपक्षे मूलनक्षत्रे सरस्वतीस्थापनम् । यथोक्तं निर्णयामृते देवीपुराणे-"मूलेषु स्थापनं देव्या पूर्वाषाढासु पूजनम् । उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत् ॥" इति । रुद्रयामलेऽपि-"मूलऋक्षे सुराधीश पूजनीया सरस्वती । पूजयेत्प्रत्यहं देव यावद्वैष्णवमृक्षकम् ॥ नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन । पुस्तके स्थापिते देव विद्याकामो द्विजोत्तमः ॥ २ ॥" संग्रहे-" आश्विनस्य सिते पक्षे मेधाकामः सरस्वतीम् । मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् ॥ " मूलस्याद्यपादे आवाहनमिति शिष्टाः । श्रवणाद्यपादे च विसर्जयेत् । "आदिभागो निशायां तु श्रवणस्य यदा भवेत् । सम्प्रेषणं तदा देव्या दशम्यां च महोत्सवः ॥" इति चिन्तामणौ ब्रह्माण्डपुराणात् ॥ अथ षष्ठीनिर्णयः । गौडनिबन्धे देवीपुराणे-"ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम् । सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम् ॥ पूर्वाषाढा-

---

जामें कोई प्रमाण नहीं है और जागरण अंग है प्रधान नहीं । युग्म (युग्मानि युग०) वाक्यसे और कालहेमाद्रिमें इस वाक्यसे कि रात्रिव्रत चन्द्रआदिका अर्घ्य व्रत और सम्पूर्ण ताराव्रतोंमें भोजनके उपरान्त जागरणमें रात्रिका योग श्रेष्ठ है, इससे पूर्वविद्धा ही ग्रहण करनी कारण कि, रात्रिशब्द पूर्वविद्धाका कथन करनेवाला है इससे और इसको भोजनके उपरान्त जागरण रूप होनेसे हमको उचित जान पडता है, अथवा जहां भोजन करके जागरण है उस व्रतमें यह एकपादका अर्थ है । अन्यथा भुक्त्वा (भोजन करके) यह पद असंगत होजायगा, दिवोदासीयमें भी इसी प्रकार कहा है । आश्विनके शुक्लपक्ष मूलनक्षत्रमें सरस्वतीका स्थापन करना चाहिये, सोई निर्णयामृतमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि हे इन्द्र ! मूलनक्षत्रमें सरस्वतीका पूजन करना और श्रवणपर्यन्त पूजन करता है और विद्याका अभिलाषी ब्राह्मणश्रेष्ठ पुस्तकोंकी स्थापनाके पीछे न पढ़ावे न लिखे न पढ़े । संग्रहमें भी कहा है कि, बुद्धिका अभिलाषी पुरुष आश्विनशुक्लपक्षमें मूलनक्षत्रमें देवीका आवाहन करे और श्रवणमें विसर्जन करे । शिष्ट तो यह कहते हैं कि, मूलके प्रथमपादमें आवाहन और श्रवणके प्रथमपादमें विसर्जन करे कारण कि, चिन्तामणिमें ब्रह्माण्डपुराणका वाक्य है कि, जब श्रवणका प्रथमभाग रात्रिमें हो तो देवीका विसर्जन दशमीके महोत्सवमें करना चाहिये । गौडनिबंधमें देवीपुराणका वाक्य है कि, ज्येष्ठानक्षत्रसे युक्त छठको बेलको निमंत्रण देना, मूलनक्षत्रसे युक्त सप्तमीको बिल्वपत्रका प्रवेश करना उचित है । पूर्वाषाढसे संयुक्त अष्टमीको पूजा, होम, व्रत आदि करे,

युताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम् । उत्तरेण नवम्यां तु बलिभिः पूजयेच्छिवाम् ॥ श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥३॥" कालिकापुराणे—"बोधयेद्बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च । सप्तम्यां बिल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ॥ पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत् । जागरं च स्वयं कुर्याद्बलिदानं महानिशि ॥ प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां विधिवच्चरेत् । विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद्वै सारवोत्सवैः ॥ धूलिकर्दमनिक्षेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥ ४ ॥ " अत्र सर्वत्र तिथिनक्षत्रयोगादरो मुख्यः कल्पः । तदभावे तु तिथिरेव ग्राह्या । " तिथिः शरीरं देवस्य तिथौ नक्षत्रमाश्रितम् । तस्मात्तिथिं प्रशंसन्ति नक्षत्रं न तिथिं विना ॥ " इति विद्यापतिलिखितवचनात् । " तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम् । योगाभावे तिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्मणि ॥" इति तत्रैव देवलोक्तेश्च । अत्र च पत्रीप्रवेशात्पूर्वेद्युः सायंकाले षष्ठ्यभावे तत्पूर्वदिनेऽधिवासनं कार्यम् । सायंकालेऽत्यन्तासत्त्वे त्वधिवासनलोपः—'षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेऽधिवासनम्' इति पूर्ववचनादिति कल्पतरुः । सायंश्रुतिः फलातिशयमात्रार्था । न तु कर्मलोप इत्याचार्यचूडामणिः ॥ तत्र पूजाक्रमनिर्णयः । अत्र क्रमः०बिल्वसमीपं गत्वा देवीं बिल्वं च संपूज्य प्रार्थयेत् ॥ तत्र मंत्रः—"रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च ।

फिर नवमीको बलिदानपूर्वक भवानीका पूजन करे, श्रवणयुक्त दशमीको नमस्कारयुक्त विसर्जन करे । कालिकापुराणमें लिखा है कि, छठको बेलकी शाखा और फलोंमें देवीका बोधन करें, सप्तमीको बेलकी शाखाको छेदन कर पूजन करे, फिर अष्टमीको विशेष कर पूजा जागरण करे, और आधीरात्रिको स्वयं बलिदान करे । नवमीको विधिसे विशेषकर बलिदान करना । दशमीको शरत्कालके उत्सव धूल और पंक फेकनेकी क्रीडा और आनन्दके मंगलसे विसर्जन करे । इन सब वाक्योंमें तिथि और नक्षत्रके योगको मानना मुख्य हेतु है, वह न मिले तो तिथिही ग्रहण करनी कारण कि, विद्यापतिने यह वाक्य कहा है कि, देवताका शरीर तिथि है, और तिथिमें ही नक्षत्र स्थित रहता है, इससे तिथिकी ही बड़ाई है और तिथिविना नक्षत्रकी प्रशंसा नहीं है,वहांही देवलने कहा है कि, तिथि और नक्षत्र दोनोंके योगमें दोनोंको माने, दोनोंका योग न हो तो देवीके पूजनमें तिथिही ग्रहण करनी, यहां बिल्वपत्रके प्रवेशसे प्रथमदिन सायंकालमें षष्ठी न हो तो अधिवासनका अभाव जानना चाहिये । प्रथम यह वाक्य कहआये हैं कि, षष्ठीको सायंकाल बिल्ववृक्षके नीचेमें अधिवासन करे, यह कल्पतरु लिखते हैं । आचार्य्यचूडामणिका तो यह कथन है कि, सायंकालका सुनना अधिकफलके निमित्त है कुछ कर्मका लोप नहीं होसकता । इसमें क्रम यह है कि,बेलके निकट जाकर देवी और बेलका पूजन करके इस मंत्रसे प्रार्थना करे कि,हे बेल ! रावणके मारने और रामचन्द्रके अनुग्रहके निमित्त असमयमें ब्रह्माने तुमसे देवीका बोधन किया था इसमें

अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा ॥ अहमप्याश्रितः षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयाम्यतः। श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः ॥ नेतव्योऽसि समागच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः ॥ २ ॥" इति। एवं देवीमधिवास्य परदिने निमन्त्रितबिल्वशाखापत्रीप्रवेशपूजां कुर्यात् ॥ तदुक्तं हेमाद्रौ लैंगे–"मूलाभावे तु सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत्। युग्माभ्यां नवबिल्वस्य फलाभ्यां शाखिकां तथा ॥ तथैव प्रतिमां देव्याः स्नात्वाभ्युक्ष्य प्रवेशयेत्।" अत्र चोपवासपूजादावौदयिकी सप्तमी ग्राह्या। न तु युग्मवाक्यात् पूर्वा। "युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया। रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता ॥" इति कृत्यतत्त्वार्णवोदाहृतवचनात्–"भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः। तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद्बुधः ॥" इति तिथितत्त्वे नन्दिकेश्वरपुराणाच्च। दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यामप्येवम्। तत्रापि घटिकातो न्यूनत्वे परा न कार्या। 'व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत्' इति देवलोक्तेरिति गौडाः ॥ दाक्षिणात्यास्तु पूर्ववचनमदृष्ट्वा युग्मवाक्यात् पूर्वां कुर्वन्ति ॥ पत्रिकापूजानिर्णयः। पत्रिकापूजा च पूर्वाह्णे एव कार्या। न तु मूलानुरोधान्मध्याह्नादाविति कृत्यतत्त्वार्णवे उक्तम्। पत्रिकास्तु–"रंभा कची हरिद्रा च जयन्ती बिल्वदाडिमौ। अशोको मानवृक्षश्च धान्यादि नव पत्रिकाः ॥"

मैंभी संध्यासमय षष्ठीके दिन तेरे आश्रयसे देवीको बोधन करता हूं, श्रीशैलशिखरपै उत्पन्न हे लक्ष्मीके मूल, इस स्थानसे तुझे अपने घर लेजाऊंगा तुम मेरे संग चलो। मैं तुम्हारा दुर्गारूपसे पूजन करूँगा, इस प्रकार देवीका अधिवासन करके पहले दिनमें न्योती हुई बिल्वशाखापत्रीका प्रवेश करके अर्चन करना, सोई हेमाद्रिमें लिंगपुराणके वाक्यसे लिखा है कि मूलनक्षत्र हो तो केवल सप्तमीमें प्रवेश करे। नवीन दो बेलके फल और शाखा इसी प्रकार देवीकी प्रतिमाको स्नान कराय और जलसे छिड़काकर प्रवेश करे। यहां व्रत और पूजा आदिमें उदयकालकी सप्तमी ग्रहण करनी और युग्मवाक्यसे प्रथम नहीं लेनी। कारण कि, कृत्यतत्त्वार्णवमें वह वाक्य लिखा है कि, युगादितिथि, वर्षवृद्धि, पार्वतीकी प्रिया सप्तमी ये सूर्यके उदयको देखती हैं इनमें दो तिथियोंका योग नहीं मानना, तिथितत्त्वमें नन्दिकेश्वरपुराणका वाक्य है कि, भगवतीके प्रवेशसे विसर्जन पर्यन्त जितने कार्य हैं वे सब बुद्धिमान् मनुष्यको उदयगामिनीतिथिमें करने चाहिये, वहां भी घटिकासे न्यून हो तो अगली लेनी, कारण कि, देवलने यह कहा है कि व्रत और उपवासके नियममें वह तिथि ग्रहण करनी जो एक भी घडी हो, दाक्षिणात्य तो पूर्ववाक्यको न देखकर युग्मवाक्यसे पहली ही करते हैं ॥ पत्रिकाकी पूजा पूर्वाह्णमें करनी चाहिये, मूलके अनुरोधसे मध्याह्नमें न करनी, यह कृत्यतत्त्वार्णवमें लिखा है पत्रिका तो यह यहां ही लिखी है कि, केला, कची, हलदी, जयंती, बेल, अनार, अशोक, मानवृक्ष

इति तत्रैवोक्ताः ॥ देवीत्रिरात्रनिर्णयः। अस्यामेव सप्तम्यां देवीत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ। प्रतिपदादिनवतिथिषु उपवासकरणासामर्थ्ये सप्तम्यादिदिनत्रये वा कुर्यात्। तदाह धौम्यः–"आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम्। प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत् ॥ त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम्।" अत एव हेमाद्रौ देवीपुराणे मङ्गलव्रते–"आश्विने वाथ वा माघे चैत्रे वा श्रावणेऽपि वा। कृष्णाष्टम्यादि कर्तव्यं व्रतं शुक्लावधि हरेः ॥ यावच्छुक्लाष्टमी शक्र उपोष्या तु विधानतः। दानं होमो जपः पूजा कन्या भोज्यास्तथान्वहम् ॥ महाभैरवरूपेण अस्थिमालाधराश्च ये। पूजनीया विशेषेण वस्त्रैर्ग्रामपुरादिषु ॥ ३ ॥" इति। मासचतुष्टयेऽभिधाय अन्यत्रापि–"अथवा नवरात्रं च सप्तमं च त्रिकं दिवा। एकभक्तेन नक्तेनायाचितोपोषितैः क्रमात् ॥' 'इति "पूजयेताश्विने शक्र यावच्छुक्लाष्टमी भवेत्। सर्वकार्याणि सिद्ध्यंति शक्र नास्त्यत्र संशयः ॥" इत्युक्तं दिवेत्येकरात्रमुक्तम्। देवीपुराणे–"नवरात्रव्रते शक्तस्त्रिरात्रं चैकरात्रकम्। व्रतं चरति यो भक्तस्तस्मै दास्यामि वाञ्छितम् ॥" इति। तत्रापि सप्तम्याः पूजने पूर्वोक्तो निर्णयः ॥ अथ तिथियोगपद्ये तन्त्रेणोपवासः। तिथिद्वयनिमित्तं पूजादिकं तु भेदेन। तत्र विशेषः। अत्र विशेषो निर्णयामृते भविष्ये–"सप्तम्यां नव गेहानि दारुजानि नवानि च। एवं वा वित्तभावेन कारयेत्सुसमाहितः ॥ दुर्गागृहं प्रकर्तव्यं

धान्य आदि ये नव पत्रिका हैं ॥ इसी सप्तमीको देवीका त्रिरात्र हेमाद्रिमें लिखा है कि प्रतिपदा आदि नौ ९ तिथियोंमें व्रत आदि करनेकी शक्ति न हो तो सप्तमी आदि तीन दिनमें ही करे। यही धौम्यने लिखा है कि, आश्विनमासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे क्रमसे नवमीतक करे अथवा सप्तमीसे तीन रात्र करे। इसी कारण हेमाद्रिमें देवीपुराणके मङ्गलाव्रतमें लिखा है कि–आश्विन, माघ, चैत्र वा श्रावणमें हे हरे! कृष्णपक्षकी अष्टमीसे शुक्लपक्षकी अष्टमीतक व्रत करे। और दान, होम, जप, पूजा, कन्याओंका भोजन प्रतिदिन करावे। ग्राम और पुर आदिमें महाभैरवरूपसे जो अस्थियोंकी माला धारण करनेवाले हैं उनका विशेषकर वस्त्र आदिसे पूजन करना चाहिये। यह चार मासमें कहकर यह लिखा कि, अथवा नवरात्र सात पांच तीन अथवा एक दिन एक समय भोजन नक्त अयाचित व्रतके क्रमसे शुक्ल अष्टमीपर्यन्त आश्विन मासमें पूजन करता रहे तो हे इन्द्र! सब कार्यकी सिद्धि होती है इसमें किसी प्रकार सन्देह नहीं है। देवीभागवतमें लिखा है कि, जो शक्तिमान् भक्त तीन रात्रि वा एकरात्रि व्रत करता है उसको म यथेच्छ देती हूं, इनमें भी सप्तमीके पूजनमें पूर्वोक्त निर्णय जानना। इसमें भी दो तिथि एकवार आन पडें तो तन्त्र (एक) से व्रत करे, और दो तिथियोंका पूजनादिक तो भिन्न २ करना। इसमें विशेष तो निर्णयामृतमें यह कहा है कि सप्तमीको काठके नवीन नौ ९ घर अथवा अपने वित्तके भावसे सावधानीसे

चतुरस्रं सुशोभनम् । तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तां समां शुभाम् ॥ तस्यां सिंहासनं क्षौमं कम्बलाजिनसंयुतम् । तत्र दुर्गां प्रतिष्ठाप्य सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ भुजैश्चतुर्भी रुचिरैर्दशभिर्वा विभूषिताम् । तप्तहाटकवर्णाभां त्रिनेत्रां शशिशेखराम् ॥ अनेककुसुमाकीर्णां कपर्देन सुशोभिताम्। नितम्बबिम्बसन्नद्धकिंकिणीकाणनादिनीम् ॥ शूलचक्रदण्डशक्तिवज्रचापासिधारिणीम् । घंण्टाक्षमालाकरकपानपात्रलसत्कराम् ॥ तदग्रे छिन्नशिरसं माहिषं रुधिराप्लुतम् । निःसृतार्धतनुं कण्ठनाले चर्मासिधारिणम् ॥ देवीधुतकरग्रीवं शूलेनोरसि ताडितम् । नागपाशेन विक्षिप्तं हर्यक्षेणापि विद्रुतम् ॥ वमद्रुधिरवक्त्रेण धुन्वतोर्ध्वं सटाक्रुधा । सर्वतो मातृचक्रेण सेव्यमानां सुरैस्तथा ॥ ९ ॥" इति । "तत्र देवी प्रकर्तव्या हैमी वा राजती तथा । मृद्वार्क्षी लक्षणोपेता खड्गे शूले च पूजयेत्॥" वार्क्षी–दारुमयी देवी । मूर्तिस्थापने निर्णयः । मूर्तिस्थापने विशेषो दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे–"याम्यास्या शुभदा दुर्गा पूर्वास्या जयवर्धिनी । पश्चिमाभिमुखी नित्यं न स्थाप्या सौम्यदिङ्मुखी ॥" प्रतिमाभावे निर्णयः । प्रतिमाभावे विशेषस्तत्रैव–"हैमराजतमृद्धातुशैलचित्रार्पितापि वा । खड्गे शूलेऽर्चिता देवी सर्वकामफलप्रदा ॥ यद्यद्यस्यायुधं प्रोक्तं तस्मिंस्तां

एक घर निर्माण करावे, यह दुर्गाका घर चौकोर सुन्दर निर्माण करे और उसके मध्यमें चार हाथकी श्रेष्ठ वेदी निर्माण करे उसमें रेशमके वस्त्र, कम्बल, मृगचर्मसे युक्त सिंहासन निर्माण करे, सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त चार वा दश भुजाओंसे शोभित दुर्गाका स्थापन करके जिसकी कान्ति तपाये सुवर्णकी तुल्य हो, जिसके तीन नेत्र, चन्द्रमा मस्तकपर हो, अनेक पुष्पोंसे आच्छादित हो और जटाजूटसे शोभित हो और नितम्बपर कौंधनी बँधी हुई उसके शब्दसे शब्दायमान हो, और जो शूल, चक्र, दण्ड, शक्ति, वज्र, चाप, खड्गको धारे हाथमें घण्टा अक्षमाला लिये पानपात्रसे शोभित दुर्गाके आगे इस प्रकार भैंसा बनावे जिसका शिर कटरहा हो, रुधिरसे भररहा हो, आधा शरीर निकल रहा हो, कण्ठके नालमें ढाल और तलवार लटक रही हो, जिसकी गर्दन भगवतीने हाथमें पकड रक्खी हो, नागपाशसे फेंका हो, सिंहद्वारा आक्रान्त और मुँहसे रुधिरका वमन करता हुआ, गर्दनके बालोंको क्रोधसे कंपित करता हो और वहां देवीकी सुवर्ण वा चांदीकी मृत्तिका वा वृक्षकी सुन्दर लक्षणोंसे युक्त मूर्ति निर्माण करे जिसके चारों ओर मातृ और देवता सेवा करते हों, देवीके खड्ग और शूलका भी पूजन करना॥ देवीकी मूर्तिके स्थापनमें दुर्गाभक्तितरंगिणीमें देवीपुराणके वाक्यमें यह विशेष वर्णन किया है कि, दक्षिणको मुख किये दुर्गा शुभदा और पूर्वाभिमुखी दुर्गा जयवर्द्धिनी होती है, और पश्चिम ओर मुख किये सदा स्थापनेके योग्य होती है और उत्तरको मुख किये दुर्गा स्थापन न करनी । प्रतिमा न हो तो वहांही विशेष यह लिखा है सोना, चांदी, धातु, मृत्तिका, पाषाणकी अथवा चित्रमें लिखी हुई भी देवी खड्ग और शूलकी पूजा करनेसे सब मनोरथोंके फलको दान करती है और जो २ शस्त्र

प्रतिपूजयेत् । देवी भक्त्यार्चिता पुंसां राज्यायुःसुतसौख्यदा ॥ ३ ॥" कृत्यतत्त्वार्णवे कालिकापुराणे—"लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं मण्डलस्थां तथैव च । पुस्तकस्थां महादेवीं पावके प्रतिमासु च ॥ चित्रे च त्रिशिखे खड्गे जलस्थां वापि पूजयेत् । बिल्वपत्रैर्यजेद्देवीं तथा जातीप्रसूनकैः ॥ नानापिष्टकनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः । भगलिंगाभिधानैश्च भगलिंगप्रगीतकैः ॥ भगलिंगक्रियाभिश्च प्रीणयेद्वरचण्डिकाम् । परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपत्यपि ॥ तस्य क्रुद्धा भगवती शापं दद्यात्सुदारुणम् ॥ ४ ॥" चित्रमृन्मयादौ स्नानाद्यसंभवे तत्रैवोक्तम्—'अन्तिके स्थापिते खड्गे स्नापयेद्दर्पणेऽथवा' इति । अथ सप्तमीपूजाविधिनिर्णयः । प्रतिपद्युक्तविधिना फलसंकीर्तनान्ते नवपत्रिकामृन्मयदुर्गापूजाबलिदानानि करिष्ये इति संकल्प्य पूर्वनिमन्त्रितबिल्वसमीपं गत्वा सम्पूज्य 'आगच्छ सर्वकल्याणि' इति पूर्वोक्तमंत्रं पठित्वा । "बिल्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं शङ्करप्रिय । गृहीत्वा तव शाखां च देवीपूजां करोम्यहम् ॥ शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो । गृहीत्वा तव शाखां च पूज्या दुर्गेति च स्मृतिः ॥ उत्तिष्ठ पत्रके देवि सर्वकल्याणहेतवे । पूजां गृहाण सकलामस्माकं वरदा भव ॥ मेरुमन्दरकैलासहिमवच्छिखरे

जिस जिस देवका लिखा है उस उसमें उसकी पूजा करे, भक्तिसे पूजन की हुई देवी राज्य, आयु, सुख, पुत्रको देती है । कृत्यतत्त्वार्णवमें कालिकापुराणका कथन है कि, लिंगमें स्थित देवीका पूजन करना अथवा मण्डल, पुस्तक, प्रतिमा, चित्र, त्रिशूल, खड्ग, जलमें भी स्थित देवीका पूजन करना । बिल्वपत्र, जातीके फूल, नानाप्रकारके मालपुवे, नैवेद्य और मनोहर धूप, दीपसे देवीकी अर्चा करनी और भगके लिंगोंका कथन, गान और कहनेसे श्रेष्ठ चण्डिकाको प्रसन्न करे, जिसकी कोई निन्दा न करे और जो किसीकी निन्दा न करे उसपर क्रुद्ध हुई देवी कठिन शाप देती है । चित्रमें और मृत्तिकाकी प्रतिमामें स्नान आदि न हो सके तो वहां ही यह लिखा है कि, निकटमें रक्खे हुए खड्गमें अथवा दर्पणमें पूजन करे । अब सप्तमीकी पूजा विधि लिखते हैं कि, प्रतिपदामें की हुई विधिसे फल संकीर्त्तनके उपरान्त नव पत्रिकासे मृत्तिकाकी दुर्गाका पूजन करके हे सर्वकल्याणि ! तुम आओ इस पूर्वोक्त मन्त्रको पढ़कर यह स्तुति करे, हे बिल्ववृक्ष ! हे महाभाग ! तुम सदा शंकरके प्यारे हो, तुम्हारी शाखाको लेकर मैं देवीकी अर्चा करता हूं शाखाके काटनेसे हे प्रभो ! तुम्हें दुःख न करना चाहिये । कारण कि, धर्मशास्त्रमें तुम्हारी शाखा लेकर दुर्गाकी पूजा करनी लिखी है । हे पत्रिके ! हे देवी ! तुम सर्व कल्याणके निमित्त उठो और हमारी सब पूजाको ग्रहण करो और हमें वरके देनेवाली हो । हे श्रीफल (बिल्व) वृक्ष ! तुम मेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमालय, पर्वतोंके शिख-

---

१ यह शब्द अश्लीलरूपसे उच्चारण नहीं हैं किन्तु प्रकृति पुरुषके बोधक हैं ॥

गिरौ। जातः श्रीफलवृक्ष त्वमम्बिकायाः सदा प्रियः ॥ ४ ॥" इति सम्प्रार्थ्य । 'ॐ हुं छिंधि फट् फट्। 'ॐ फट् स्वाहा इति छित्त्वा संपूज्य। ॐ चामुण्डे चल चल' इति वाद्यघोषेण देवीं तां च गृहं प्रवेश्य । "आरोपितासि दुर्गे त्वं मृन्मय्यां श्रीफलेऽपि च। स्थिरा नितान्तं भूत्वा च गृहे त्वं कामदा भव॥" इति स्थिरीकृत्य, रम्भादिपत्रिकाः पञ्चगव्येन पञ्चामृतेन च स्नापयित्वा, वस्त्रेणावेष्ट्य स्थापयेत्। इतः पूर्ववत्संकल्पं कृत्वाऽक्षतानादाय देवीमावाहयेत्। तत्र मन्त्रः—"आवाहयाम्यहं देवि मृन्मय्यां श्रीफले तथा । कैलासशिखराद्देवि विंध्याद्रेर्हिमपर्वतात् ॥ आगत्य बिल्वशाखायां चण्डिके कुरु सन्निधिम्। स्थापितासि मया दुर्गे पूजये त्वां प्रसीद मे ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते। दुर्गे दुर्गस्वरूपासि सुरतेजोमयेऽर्चिते ॥ सदानन्दकरे देवि प्रसीद मम सिद्धये। एह्येहि भगवत्यम्ब शत्रुक्षयजयप्रदे ॥ भक्तितः पूजयामि त्वां दुर्गे देवि सुरार्चिते । पल्लवैश्च फलोपेतैः पुष्पैश्च सुमनोहरैः। पल्लवे संस्थिते देवि पूजये त्वां प्रसीद मे। दुर्गे देवि इहागच्छ सांनिध्यमिह कल्पय । यज्ञभागान्गृहाण त्वं योगिनीकोटिभिः सह ॥ ६ ॥ " इति। ततो मूलमन्त्रेण पाद्यादिगन्धान्तोपचारैः संपूज्य । ततः—"अमृतोद्भवं च श्रीवृक्षं शंकरस्य सदा प्रियम्। बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥" इति बिल्वपत्रम्। "ब्रह्मविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदा प्रियम्। तत्ते

रोंपर उत्पन्न हुए हो और अंबिका तुमको निरन्तर प्यार करती है। इस प्रकार प्रार्थना करके ॐ छिंधि फट् फट् ॐ हुं फट् स्वाहा इस मन्त्रसे छेदन और पूजन करके ॐ चामुण्डे चलर इस मन्त्रसे बाजोंके शब्दसे देवी और शाखाका घरमें प्रवेश करके हे दुर्गे ! तुम मृत्तिका और श्रीफलपर स्थापित हो, घरमें निरंतर स्थिर होकर मनोरथ देनेवाली हो।इस मन्त्रसे स्थिर करके केले आदिके पत्तोंको पंचगव्य और पंचामृतसे स्नान कराय और वस्त्रसे लपेटकर स्थापना करे। फिर पूर्वके सदृश संकल्प करके चावल लेकर देवीका आवाहन करे कि, हे देवि ! मैं मृत्तिका और बेलके फलपर आपका आवाहन करता हूं।हे देवि ! कैलासके शिखर,विन्ध्याचल, हिमाचल पर्वतसे यहां आकर निकटमें आओ । हे दुर्गे ! मैंने आपको स्थापन किया है, मैं आपकी अर्चा करता हूं।तुम प्रसन्न हो और अवस्था, आरोग्य ऐश्वर्यको मेरे निमित्त दो आपको प्रणाम है हे दुर्गे!तुम दुर्गरूपा हो देवताओंका तेजरूप हो और सब पूजित हो, पत्रोंमें स्थित हुई आपको बेलपत्र, फल और मनोहर पुष्पसे पूजन करता हूं। मेरे ऊपर प्रसन्न हो। हे दुर्गे देवि ! यहां आओ और यहां सन्निधि करो, कोटियों योगिनी सहित आप यज्ञके भागोंको स्वीकार करो, फिर मूलमन्त्रसे पाद्य आदि गन्धके उपचार पर्यन्त पूजन करके, हे सुरेश्वरि ! अमृतसे उत्पन्न और महादेवको सदैव प्रिय यह बेलका वृक्ष है इस पवित्र बिल्वपत्रको देता हूं। इस मन्त्रसे बिल्वपत्र। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिको द्रोणपुष्प सदा प्रिय है, हे दुर्गे ! उसको सब कामना-

दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये ॥" इति द्रोणपुष्पं निवेद्य । धूपादिदक्षिणान्तां पूजां मूलेन कृत्वा प्रार्थयेत् । ॐ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनी । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ कुंकुमेन समालब्धे चन्दनेन विलेपिते । बिल्वपत्रकृतापीडे दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥ रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥ ३ ॥" 'सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इति च सम्प्रार्थ्य पत्रिकाः पूजयेत् । कदल्यां ब्रह्माणीम् । दाडिमे रक्तदन्तिकाम् । धान्ये लक्ष्मीम् । हरिद्रायां दुर्गाम् । माने चामुण्डाम् । कवौ कालिकाम् । बिल्वे शिवाम् । अशोके शोकरहिताम् । जयन्त्यां कार्तिकीं चावाह्य सम्पूज्य दुर्गायै बलिं दद्यात् ॥ शस्त्रादिपूजानिर्णयः । अत्र शस्त्रादिपूजा वक्ष्यते । ततः स्तुतिं वदेत् । तदुक्तं शिवरहस्ये-"दुर्गां शिवां शांतिकरीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः प्रियाम् । सर्वलोकप्रणेत्रीं च प्रणमामि सदाशिवाम् ॥ मङ्गलां शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां कलाम् । विश्वेश्वरीं विश्वमातां चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥ सर्वदेवमयीं देवीं सर्वरोगभयापहाम् । ब्रह्मेशविष्णुनमितां प्रणमामि सदा उमाम् ॥ विन्ध्यस्थां विन्ध्यनिलयां दिव्यस्थाननिवासिनीम् । योगिनीं योगमातां च चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥ ईशानमातरं देवीमीश्वरीमीश्वरप्रियाम् । प्रणतोऽस्मि सदा दुर्गां

ओंकी सिद्धिके निमित्त आपको देता हूं । इस मन्त्रसे द्रोणपुष्प निवेदन करके और धूप आदि दक्षिणा पर्यन्त पूजाको मूलमन्त्रसे करके इस प्रकार स्तुति करे कि, हे महिषासुरमर्दिनि ! हे महामाये हे चामुण्डे ! मुण्डमालावाली ! अवस्था, आरोग्य, ऐश्वर्य दीजिये. हे देवि ! आपको प्रणाम है, कुंकुम लगाये चन्दन लेपन किये बेलपत्रके गुच्छेसे युक्त हे दुर्गे ! आपकी मैं शरण हूं । रूप दो, यश दो, हे भगवती ! मुझे पुत्र दो, धन दो और सब कामना दो । सब मंगलोंकी तुम मंगलरूप हो इन मन्त्रोंसे प्रार्थना करके पत्रिकाका पूजन करे; केलोंमें ब्रह्माणीका, अनारमें रक्तदंतिकाका, धान्यमें लक्ष्मीका, हरिद्रामें दुर्गाका, मानमें चामुण्डाका, केविकापुष्पमें कालिकाका, बिल्वमें शिवाका, अशोकमें शोकरहिताका,जयन्तीमें कार्तिकीका आवाहन और पूजन करके दुर्गाको बलि देनी । यहां शस्त्र आदिकी पूजा कहेंगे, फिर स्तुति पढे यह शिवरहस्यमें लिखा है कि, दुर्गा, शिवा, शांतिकरी, ब्रह्माणी, ब्रह्माकी प्रिया, सर्वलोकोंकी रचनेवाली सदाशिवाको मैं प्रणाम करता हूं । मंगला, शोभना, शुद्धा, निष्कला, परमकला, जगतकी ईश्वरी और माता चण्डिकाको मैं प्रणाम करता हूं।सब देवमयी, सब रोगोंके भयनाशक, ब्रह्मा, विष्णु शिवसे वंदित उमाको सदैव नमस्कार करता हूँ । विंध्याचलमें स्थित, विन्ध्याचल स्थानवाली, दिव्य २ स्थानोंमें विलास करनेवाली, योगिनी और योगकी माता चण्डिकाको मैं प्रणाम करता हूं । ईशानकी माता, देवी, ईश्वरी, ईश्वरकी प्रिया, संसाररूप दुर्गके

संसारार्णवतारिणीम् ॥ य इदं पठते स्तोत्रं शृणुयाद्वापि यो नरः । स मुक्तः सर्वपापैस्तु मोदते दुर्गया सह ॥ ६ ॥ " महाष्टमीव्रतनिर्णयः । अथ महाष्टमी । सा च परयुता । " शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता ॥ " इतिब्रह्मवैवर्तात् । मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहे-" शरन्महाष्टमी पूज्या नवमीसंयुता सदा । सप्तमीसंयुता नित्यशोकसंतापकारिणी ॥ जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता तु महाष्टमी । इन्द्रेण निहतो जम्भस्तस्माद्दानवपुङ्गवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सप्तमीमिश्रिताऽष्टमी । वर्जनीया प्रयत्नेन मनुजैः शुभकांक्षिभिः ॥ सप्तमीशल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोऽपि वा । महाष्टमीं प्रकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ सप्तमी कलया यत्र परतश्चाष्टमी भवेत् । तेन शल्यमिदं प्रोक्तं पुत्रपौत्रक्षयप्रदम् ॥ ९ ॥" तथा-"पुत्रान्हंति पशून् हन्ति हन्ति राष्ट्रं सराजकम् । हन्ति जातानजातांश्च सप्तमीसहिताष्टमी ॥ " तेन नात्र त्रिमुहूर्तवेधः । तदा घटिकामात्राप्यौदयिकी ग्राह्या । 'व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत्' इति देवलोक्तेः । गौडा अप्येवमाहुः । अत एवोक्तं भोजराजेन 'न च सप्तमी शल्यसमोपहता' इति । इयं भौमेऽतिप्रशस्ता । " अष्टम्यामुदिते सूर्ये दिनान्ते नवमी भवेत् । कुजवारो भवेत्तत्र पूजनीया प्रयत्नतः॥" इति मदनरत्ने वचनात् । " सप्तमी-

---

तारनेवाली दुर्गाको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूं । जो मनुष्य इस स्तोत्रको पढता है वा सुनता है वह सब पापोंसे छूटकर दुर्गाके संग आनन्द करता है ॥ अब महाअष्टमीका निर्णय कथन करते हैं-वह परयुता ग्रहण करनी कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि, शुक्ल पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी पूर्वविद्धा न करनी चाहिये, परतिथिसे युक्त करनी । मदनरत्नमें स्मृतिसंग्रहका कथन है कि, शरत्कालकी महाष्टमी निरन्तर नवमीसे युक्त पूजनी, सप्तमीसे संयुक्त तो नित्य शोक संतापदायक होती है । जम्भने सप्तमसे युक्त महाष्टमी पूजी थी इससे उस दानवोंमें श्रेष्ठ जम्भको इन्द्रने मार दिया, इससे सब प्रयत्नोंसे सप्तमीसे मिश्रित अष्टमीको शुभकी आकांक्षावाले मनुष्य प्रयत्नसे त्याग दे। सप्तमीरूप कांटेसे युक्त महाष्टमीको मोह वा अज्ञानसे जो करते हैं वह नरकमें जाते हैं । जहां एक कला सप्तमी हो और फिर अष्टमी हो तिससे यह कांटा पुत्र पौत्रोंका नाश करनेवाला लिखा है, इसी प्रकार पुत्र, पशु, देश, राज्य, उत्पन्न और न उत्पन्न हुओंको सप्तमीसहित अष्टमी मारती है, इससे तीन मुहूर्तका वेध है तब घडीभर भी उदयकालकी ग्रहण करनी । कारण कि, देवलने यह लिखा है कि, व्रत, उपवास, नियममें वह तिथि लेनी जो एक घड़ी भी हो।गौड भी इसी प्रकार कथन करते हैं,इसीसे भोजराजने लिखा है कि,सप्तमीरूप शल्यसे युक्त अष्टमीको करे। यदि यह मंगलवार हो तो अत्यन्त उत्तम है। कारण कि, मदनरत्नमें यह लिखा है कि, अष्टमीमें सूर्योदय हो,दिनके उपरान्तमें अष्टमी हो और मंगल हो तो वह प्रयत्नसे पूजनी चाहिये । मदनरत्नमें स्मृतिसमुच्चयका कथन है कि,सप्तमीरूप शल्यसे विद्धा अष्टमी सदैव त्यागनी जिसमें

शल्यसंविद्धा वर्जनीया सदाष्टमी । स्तोकापि सा महापुण्या यस्यां सूर्योदयो भवेत् ॥" इति मदनरत्ने स्मृतिसमुच्चयवचनात् । 'अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता ।' इति पाद्मवचनाच्च । इयमेव मूलयुक्ता चेन्महानवमीसंज्ञा । "आश्वयुक्छुक्लपक्षे याष्टमी मूलेन संयुता । सा महानवमी प्रोक्ता त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा॥" इति हेमाद्रौ स्कान्दात् । मूलयुक्तापि सप्तमीयुता चेत्त्याज्यैवेत्युक्तं निर्णयामृते । दुर्गोत्सवे–"मूलेनापि हि संयुक्ता सदा त्याज्याऽष्टमी बुधैः । लेशमात्रेण सप्तम्या अपि स्याद्यदि दूषिता ॥" इति महाष्टमी । पूर्वेद्युः पूर्वाह्णव्यापित्वे पूर्वा अन्यथा परैवेति निर्णयदीपमतम् । एतच्च तुच्छत्वादुपेक्ष्यम् ॥ रूपनारायणधृते देवीपुराणे–" सप्तमीवेधसंयुक्ता यैः कृता तु महाष्टमी । पुत्रदारधनैर्हीना भ्रमन्तीह पिशाचवत् ॥ " यत्तु–" सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतो याष्टमी भवेत् । तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेऽहनि ॥" इति विश्वरूपनिबन्धवचनं तदाश्विनकृष्णाष्टमीविषयम् । " कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वाष्टमीदिने । नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥" इति देवीपुराणे । तत्रापि पूजोक्तेरिति हेमाद्रौ निर्णयामृते चोक्तम् । यानि तु–" भद्रायां भद्रकाल्याश्च मध्ये स्यादर्चनक्रिया । तस्माद्वै सप्तमीविद्धा कार्या दुर्गाष्टमी बुधैः ॥" इति । यच्च मोहचूलोत्तरे ब्राह्मे च–" आश्विनस्य सिताष्टम्यामर्धरात्रे तु पार्वती । भद्रकाली समुत्पन्ना पूर्वाषाढासमायुता ॥" इति ।

सूर्योदय हो वह अल्प भी महापवित्र है । पद्मपुराणमें लिखा है कि, अष्टमी नवमीसे युक्त हो और नवमी अष्टमीसे युक्त हो और यही अष्टमी मूलनक्षत्रसे युक्त हो तो उसकी महानवमी संज्ञा है । कारण कि, हेमाद्रिमें स्कंदपुराणका मत है कि, आश्विनके शुक्लपक्षमें मूलनक्षत्रसे युक्त अष्टमी त्रिलोकीमें दुर्लभ महानवमी लिखी है । मूलयुक्त भी सप्तमीसे युक्त हो तो बड़ी योग्य है । यह निर्णयामृतके दुर्गोत्सवमें लिखा है कि, जो सप्तमीके लेशमात्रसे भी दूषित हो मूलसे युक्त भी वह अष्टमी बुद्धिमानोंको सदा छोड़ने योग्य है । पूर्वदिनमें पूर्वाह्णमें हो तो महाअष्टमी प्रथम भी लेनी, नहीं तो परली लेनी, यह निर्णयदीपका मत है, यह तुच्छ होनेसे छोड़ने योग्य है । रूपनारायणमें लिखा देवीपुराणका वाक्य है कि, जिन्होंने सप्तमी वेधसे युक्त महाष्टमी की है वे पुत्र, स्त्री, धनसे हीन हुए पिशाचके तुल्य भ्रमण करते हैं, जो यह विश्वरूपनिबन्धका वाक्य है कि, सप्तमीमें सूर्योदय होकर फिर जो अष्टमी है उसमें दुर्गाका उत्सव करे परदिनमें न करे सो आश्विनकृष्ण अष्टमीके विषयमें है । कन्याके सूर्य और कृष्णपक्षमें जो अष्टमी उस दिन पूजकर गीतबाजोंके शब्दोंसे नवमीके दिन अर्चा करे इस देवीपुराणके कथनसे उसमें भी पूजा लिखी है यह हेमाद्रि और निर्णयामृतमें लिखा है । जो ये वाक्य हैं कि, भद्रा और भद्रकालीके मध्यमें पूजाकार्य होता है उससे बुद्धिमान् मनुष्य सप्तमीविद्धा दुर्गाष्टमी करे । जो मोहचूलोत्तरमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, आश्विनसुदी अष्टमीको आधीरातके समय पूर्वाषाढनक्षत्रमें, भद्रकाली रूपसे

तथा-"तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी। प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनी-कोटिभिः सह ॥" इति। यच्च मदनरत्ने-"महाष्टम्याश्विने मासि शुक्ला कल्याण-कारिणी। सप्तम्यापि युता कार्या मूलेन तु विशेषतः॥" इति। तानि परदिनेऽष्टम्यभाववविषयाणीति मदनरत्ने उक्तम्। यत्तु तत्रैव परदिनेऽष्टमीसत्त्वेऽपि पूर्वविद्धाविधायकं वचनम्। "यदाष्टमीं तु संप्राप्य ह्यस्तं याति दिवाकरः। तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेऽहनि ॥ दुर्भिक्षं तत्र जानीयान्नवम्यां यत्र पूज्यते ॥" इति। तत् परदिने दशम्यां नवम्यभावविषयम्। "यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी चापरेऽहनि। तदाष्टमीं प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितां नृप ॥" इति तत्रैव स्मृतिसंग्रहोक्तेः। "उत्तरास्तिथयो यत्र क्षयं यांति नराधिप। पूर्वाष्टमीं तदा कुर्यादन्यथा त्वशुभं भवेत् ॥" इति दुर्गोत्सवोक्तेश्चेति मदनरत्ने। वस्तुतस्तु इदं वचनद्वयम्। अष्टमीनवम्योः सूर्योदयद्वयसंबन्धपरम्। 'अत एव नवमी च' इति चकारादष्टमी च। तिथय इति बहुवचनादष्टमीनवमीदशम्युक्ता। अन्यथा पूर्वोक्तविरोधादिति दिक्। यत्तु-"अहं भद्रा च भद्राहं नावयोरन्तरं क्वचित्। सर्वसिद्धिं प्रदास्यामि भद्रायामर्चिता ह्यहम्॥" इति देवीपुराणे तद्विष्टिकरणमध्ये पूजाविधानार्थम्। "विष्टिं त्यक्त्वा महाष्टम्यां मम पूजां करोति यः। तस्य पूजाफलं न स्यात्तेनाहमवमानिता ॥" इति तत्रैवोक्तेरिति

पार्वती प्रकट हुई, वैसे ही वहां दक्षयज्ञके नाश करनेवाली भद्रकाली कोटियों योगिनीसहित महाघोररूपसे प्रकट हुई है। जो मदनरत्नमें यह लिखा है कि, आश्विनमहीनेके शुक्लपक्षकी कल्याणकारिणी महाष्टमी सप्तमीसे और विशेषकर मूलनक्षत्रसे युक्त भी करनी, ये सब वाक्य दूसरे दिनमें अष्टमीके न होनेके विषयमें हैं, यह मदनरत्नमें लिखा है जो वहां ही यह वाक्य परदिनमें अष्टमी होनेपर भी पूर्वविद्धाका करनेवाला है कि, जब अष्टमीमें सूर्यास्त हो उस दिन दुर्गोत्सव करे, अगले दिन न करे, जहां नवमीमें पूजा हो वहां दुर्भिक्ष जाने। यह वचन दूसरे दिनमें दशमी नवमीमें न हो तो तब जानना। कारण कि, वहां ही स्मृति-संग्रहका वाक्य है कि, हे राजन्! जब सूर्योदयकालमें परदिन नवमी न हो तब सप्तमी-सहित भी अष्टमीको करे यह वहां स्मृतिसंग्रहका कथन है। मणिरत्नमें दुर्गोत्सवका वचन है कि, हे राजन्! जहां उत्तर तिथिका क्षय हो जाय वहां पूर्वाष्टमीको करना अन्यथा अशुभ फल होता है। सिद्धान्त तो यह है कि, ये दोनों वाक्य उस समयके हैं जब अष्टमी और नवमीको दोनों दिन सूर्यका संबंध न हो। इसीसे (नवमी च) इस चकारसे अष्टमी और (तिथयः) इस बहुवचनसे अष्टमी, नवमी, दशमी तिथि लिखी हैं अन्यथा पूर्वोक्तका विरोध प्राप्त होगा यही मार्ग है। जो देवीपुराणमें यह लिखा है कि, मैं भद्रारूप हूं और भद्रा मेरा रूप है, हम दोनोंमें कुछ अन्तर नहीं है भद्रामें पूजी मैं सब सिद्धियोंको देती हूं। वह वाक्य विष्टिकरणमें मध्यमें पूजाके निमित्त है। कारण कि, वहां ही निर्णयामृतमें यह लिखा है कि, भद्राको त्यागकर जो महाष्टमीमें मेरी पूजा करता है उसको पूजाका फल नहीं मिलता। कारण कि, उसने मेरा तिरस्कार किया इसी प्रकार

निर्णयामृते। तथा कालिकापुराणे-"सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम्। पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः॥" इति॥ पुत्रवतामष्टम्यामुपवासनिषेधनिर्णयः। अष्टम्युपवासश्च पुत्रवता न कार्यः। "उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान्न समाचरेत्। यथातथा वा पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत्॥" इति तत्रैवोक्तेः। रूपनारायणीये ब्राह्मे-"अतोऽर्थं पूजनीया सा तस्मिन्नहनि मानवैः। उपोषितैर्वस्त्रधूपमाल्यरत्नानुलेपनैः॥ पशुभिः पानकैर्हृद्यै रात्रौ जागरणेन च। दुर्गागृहे च शस्त्राणि पूजितव्यानि पण्डितैः॥ वाद्यभाण्डानि चिह्नानि कवचान्यायुधानि च॥॥ ३॥" तत्र विशेषः। अत्र विशेषो हेमाद्रौ निर्णयामृते भविष्ये-"आश्वयुक्छुक्लपक्षस्य अष्टमी मूलसंयुता। सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा॥ कन्यागते सवितरि शुक्लपक्षेऽष्टमीयुता। मूलनक्षत्रसंयुक्ता सा महानवमी स्मृता॥ नवम्यां पूजिता देवी ददात्यभिमतं फलम्। सा पुण्या सा पवित्रा च सा धन्या सुखदायिनी॥ तस्यां सदा पूजनीया चामुण्डा मुण्डमालिनी॥" सदेत्युक्तेर्नित्यतापि। "तस्यां ये ह्युपयुज्यंते प्राणिनो महिषादयः। सर्वे ते स्वर्गतिं यान्ति घ्नतां पापं न विद्यते॥ यावन्न चालयेद्गात्रं पशुस्तावन्न हन्यते। न तथा बलिदानेन पुष्पधूपविलेपनैः॥ यथा सन्तुष्यते मेषैर्महिषैर्विन्ध्यवासिनी। एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः॥ एकभुक्तेन नक्तेन स्वशक्त्याऽयाचितेन च। पूजनीया

कालिकापुराणमें लिखा है कि, सप्तमीको पत्रिकाकी पूजा, अष्टमीको व्रत और नवमीको पूजा-जागरण और विधिपूर्वक बलि देना चाहिये। अष्टमीका व्रत पुत्रवाला न करे। कारण कि, वहां ही यह लिखा है कि, अष्टमीको पुत्रवाला व्रत न करे जैसे तसे पवित्र आत्मावाला व्रती देवीकी पूजा करे। रूपनारायणमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, इस निमित्त उस दिन व्रती पंडितजन वस्त्र, माला, रत्न, धूप, चंदन, पशु, मनोहर पानसे रात्रिमें जागरणपूर्वक देवीकी पूजा करे, और दुर्गाके घरमें शस्त्र, बाजे, पात्र, चिह्न, कवच, आयुधका भी पण्डित जन पूजन करे। इसमें विशेष हेमाद्रि निर्णयामृतके वाक्यसे कहा है कि, आश्विनके शुक्लपक्षके मूलनक्षत्रसे युक्त अष्टमी महानवमी कही है, वह त्रिलोकीमें दुर्लभ कही है। कन्याके सूर्यमें कृष्णपक्ष अष्टमीसे मूलनक्षत्रसे युक्त नवमी लिखी है, नवमीमें पूजित देवी वांछित फलको देती है, वह पुण्य, पवित्र, धन्य, सुखदायिनी है, उसमें मुण्डमालिनी चामुण्डाका सदा पूजन करे। इस कथनमें सदा करनेसे यह व्रत नित्य भी है उस दिन भैंसेको आदि लेकर जिन प्राणियोंकी पूजा होती है वे सब स्वर्गमें गमन करते हैं आर मारनेवालोंको दोष नहीं प्राप्त होता जबतक पशु अपने शरीरको न हिलावे तबतक उसे विशसन न करे। वैसे बलिदानसे पुष्प, धूप, चन्दनसे विन्ध्यवासिनी प्रसन्न नहीं होती जिस प्रकार मेष और भैंसोंके द्वारा प्रसन्न होती है। इससे विन्ध्यवासिनीमें नवरात्रके व्रत एकभक्त, नक्त और अयाचितसे अपनी शक्तिके अनुसार मनुष्य देवीका

जनैर्देवी स्थानेस्थाने पुरेपुरे ॥ गृहेगृहे भक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वनेवने। स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टै-र्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः। वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुतैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ॥ स्त्रीभिश्च कुरु-शार्दूल तद्विधानमिदं शुणु। जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमात्। लौ-हाभिसारिकं कर्म कारयेद्यावदष्टमी ॥ १०.॥" इति। लौहाभिसारिककर्मवि-धानं तत्रैवोक्तम्। "प्रागुदक्प्रवणे देशे पताकाभिरलंकृतम्। मण्डपं कारयेद्दिव्यं नवसप्तकरं परम् ॥" षोडशहस्तमित्यर्थः। "आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशो-भनम्। मेखलात्रयसंयुक्तं योन्याश्वत्थदलाभया ॥ राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्य-स्त्राणि यानि च। आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्यत्राधिवासयेत् ॥ ततस्तु ब्राह्मणः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः। ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैस्तल्लिंगैर्जुहुयाद्धृतम् ॥ शस्त्रास्त्र-मन्त्रैर्होतव्यं पायसं घृतसंयुतम्। हुतशेषं तुरंगाणां राजानमुपहारयेत् ॥ लौहाभि-सारिकं कर्म तेनैव ऋषिभिः स्मृतम्। धृतपल्ययनानश्वान्गजांश्च समलंकृतान् ॥ भ्रामयेन्नगरे नित्यं बन्दिघोषपुरःसरम्। प्रत्यहं नृपतिः स्नात्वा संपूज्य पितृदेवताः॥ पूजयेद्राजचिह्नानि फलमाल्यविलेपनैः। यस्याभिसरणाद्राज्ञो विजयः समुदाहृतः ॥ पूजामन्त्रान्प्रवक्ष्यामि पुराणोक्तानहं तव। यैः पूजिताः प्रयच्छन्ति कीर्तिमायुर्यशो ब-लम् ॥" अथ विष्णुधर्मोत्तरोक्ता मन्त्राः। छत्रस्य—"यथाम्बुदश्छादयति शिवायेमां

स्थान २ पुर २ घर २ में और ग्राम २ वन २ में स्नान करके प्रसन्न हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजा, वैश्य, शूद्र और भक्तिसे युक्त म्लेच्छ और दूसरे मनुष्य और स्त्री हे कुरुओंमें श्रेष्ठ! पूजन करें, उसकी यह विधि तुम सुनो—जयका अभिलाषी राजा प्रतिपदाके क्रमसे अष्टमी पर्यन्त लौहा-भिसारिक कार्य करावे अर्थात् लोहेसे पशुओंको विशसन करे। लौहाभिसारिककर्मका विधान वहां ही लिखा है कि पूर्व वा उत्तरको नीचे देशमें पताकाओंसे शोभित दिव्य नौ सात (सोलह) हाथका मंडप निर्माण करे उसमें आग्नेयदिशामें सुन्दर हाथभरका इस प्रकार कुण्ड निर्माण करे जिसमें तीन मेखला हों और पीपलके पत्तेके तुल्य योनि हो और राजाके चिह्न जितने अस्त्र वा शस्त्र हैं उन सबको लाकर उस मंडपमें रक्खें, फिर ब्राह्मण स्नान करके श्वेत वस्त्र पहने, और शुद्ध होकर ॐकारपूर्वक ऐसे पशुलिंगके मन्त्रोंसे (जिनमें पशुपद हो) घृतका हवन करे और घी मिली खीरसे होम करे और होमसे बचेको तुरंगों (घोडे) के राजाको भोजन करावे, इससे यह लौहाभिसारिक कर्म ऋषियोंने लिखा है। लगाम लगे घोडे और अलंकृत हाथियोंको बन्दीजनोंके बाजे सहित नगरमें नित्य घुमावे, राजा नित्यप्रति स्नान करके पितर और देवताओंका पूजन करके फल, पुष्प, चन्दनसे राजाके चिह्नोंका पूजन करे, जिसके करनेसे राजाकी विजय होती है। पुराणोंमें लिखे पूजाके मन्त्रोंको मैं तुमसे कहता हूँ, जिनके पूजन कियेके चिह्न कीर्ति, आयु, यश, बलको देते हैं। (अथ मन्त्राः) विष्णुधर्ममें लिखा है छत्रका यह मंत्र है कि, जैसे मेघ कल्याणके निमित्त इस पृथ्वीको ढकते हैं, इसी प्रकार विजय, आरोग्य, वृद्धिके निमित्त

वसुन्धराम्। तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये ॥" चामरस्य-"शशांककरसंकाश क्षीरडिण्डीरपाण्डुर। प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरदुर्लभ ॥" अश्वानां वृद्धयर्थं रेवंतपूजनमहं करिष्ये। "सूर्यपुत्र महाबाहो छायाहृदयनंदन। शांतिं कुरु तुरंगाणां रेवन्ताय नमोनमः ॥" अनेन मन्त्रेण पूजा। अथाश्वस्य-"गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः। ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥ प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धय त्वं तुरंगमान्। तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा तथा ॥ रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च। स्मर त्वं राजपुत्रं त्वं कौस्तुभं च मणिं स्मर ॥ यां गतिं ब्रह्महा गच्छेन्मातृहा पितृहा तथा। भ्रूणहानृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः ॥ सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्यावत्पश्यन्ति दुष्कृतम्। व्रजाश्वतां गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत्तव। निष्कृतो यदि गच्छेथा युद्धाध्वनि तुरंगम। रिपून्विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव ॥ ६ ॥" इति। अथ ध्वजस्य-"शक्रकेतो महावीर्य श्यामवर्णार्चयाम्यहम्। पत्रिराज नमस्तेऽस्तु तथा नारायणध्वज ॥ काश्यपेयारुणभ्रातर्नागारे विष्णुवाहन। अप्रमेय दुराधर्ष रणे दैवारिसूदन ॥ गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि संनिहितो यतः। सारवन्त्यायुधान्यत्र रक्ष त्वं च रिपून् दह ॥ ३ ॥" अथ पताकायाः-"हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः

तुम राजाको ढको। (चमरका मन्त्र) चन्द्रमाकी किरणोंके तुल्य, दूधके झागोंके तुल्य श्वेत, हे निर्मल और दुर्लभ चामर! शीघ्र पापको नष्ट करो, घोडोंकी वृद्धिके निमित्त मैं रेवंतका पूजन करता हूं। हे सूर्यपुत्र! हे महाबाहो! हे छायाके हृदयके नन्दन! घोड़ोंकी शांति कर, रेवंतको प्रणाम है, इस मन्त्रसे पूजा करे। (अथ अश्वकी पूजा) हे अश्व! तुम गंधर्वकुलसे उत्पन्न हुए हो कुलको दूषित मत करियो, ब्रह्माके और चन्द्रमा वरुणके सत्यवाक्यसे और अग्निके प्रभावसे घोडोंकी तुम वृद्धि करो सूर्यके तेज और मुनियोंके तप और रुद्रके ब्रह्मतेज और पवनके बलसे युक्त तुम राजपुत्र हो उसका और कौस्तुभमणिका स्मरण करो। जिस गतिको ब्राह्मण, माता, पिता, भ्रूण, इनका हत्यारा, झूठा, पराङ्मुख, क्षत्रिय प्राप्त होते हैं, सूर्य, चंद्रमा, वायु इतने पापको देखते हैं, ये सब पाप शीघ्र न चलनेसे तुमको होंगे। हे अश्व! यदि तुम युद्धके शब्दको सुनकर तिरस्कारसे चलोगे तो ऐसा होगा इससे तुम शीघ्र चलो संग्राममें शत्रुओंको जीतकर अपने स्वामी सहित सुखी हो। (ध्वजाका मंत्र) हे इंद्रकी ध्वजा हे महावीर्य! हे श्यामवर्ण! मैं तुम्हारा पूजन करता हूं। हे पितृराज! तुम्हें नमस्कार है। हे नारायणकी ध्वजा! हे अरुणके भ्राता, हे नागोंके शत्रु, हे विष्णुके वाहन, हे प्रमाणरहित, हे सहनेके अयोग्य, हे संग्राममें शत्रुनाशक! तुम गरुड़ हो, वायुके तुल्य तुम्हारी गति है, सारवाले शस्त्रोंकी तुम रक्षा और शत्रुओंका दाह करो। (पताकाका मंत्र) अग्नि, वसु, रुद्र, वायु, चंद्रमा, महान् ऋषि,

सौमो महर्षयः। नागकिंनरगन्धर्वयक्षभूतगणग्रहाः ॥ प्रमथास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह। शक्रः सेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितास्त्वयि ॥ प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमृच्छतु। यानि प्रयुक्तान्यरिभिरायुधानि समंततः ॥ पतन्तूपरि शत्रूणां हतानि तव तेजसा। हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे तथा। कालनेमिवधे यद्वद्यद्वत्त्रिपुरघातने। शोभितासि तथैवाद्य शोभयास्मांश्च संस्मर। नीलाञ्छ्वेतानिमान्दृष्ट्वा नश्यंत्वाशु नृपारयः। व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः। पूतना रेवती नाम्ना कालरात्रिश्च या स्मृता। दहत्वाशु रिपून्सर्वान् पताके त्वं मयार्चिता ॥ ७ ॥" अथ गजस्य—"कुमुदैरावतौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः। सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वनान्यष्टौ समाश्रिताः। मन्दो भद्रो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ॥ वनेवने प्रसूतास्ते यूथानि सुमहांति च। पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः ॥ भर्तारं रक्ष नागेंद्र स्वामिवत्प्रतिपाल्यताम्। अवाप्नुहि जयं युद्धे गमने स्वस्ति नो व्रज ॥ श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोऽनिलात्। स्थैर्यं मेरोर्जयं रुद्राद्यशो देवात्पुरन्दरात्। युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः। अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा ॥ ८ ॥" इति।

नाग, किन्नर, गंधर्व, यक्षभूतोंके गण, ग्रह, प्रमथ, सूर्य, भूत, ईश, मातर, इंद्र, सेनाका पति स्वामिकार्तिक, वरुण ये सब तुम्हारेमें आश्रित हैं, यह सब शत्रुओंको हनते हैं और राजाकी विजय हो जो शस्त्र चारों तरफसे शत्रुओंने फेंके हैं वे शत्रुओंके ऊपर पड़ते हुए तुम्हारे तेजसे नष्ट हों। हिरण्यकशिपुके युद्धमें, देवता असुरके युद्धमें, कालनेमिके मरनेमें और त्रिपुरके मरनेमें जैसी तुम्हारी शोभा हुई इसी प्रकार अब हमारी शोभा करो और हमें स्मरण कर नील और श्वेत इन पताकाओंको देखकर शीघ्र राजाके शत्रु नष्ट हों। नाना प्रकारकी घोर व्याधि और शस्त्रोंसे युद्धमें जीते पूतना रेवती और कालरात्रि ये सब शीघ्र शत्रुओंको दग्ध करें। हे पताके! मैंने तुम्हारा पूजन किया। (अथ हाथीका मन्त्र) कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदंत, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन, नील ये आठ हाथी देवयोनि हैं, इनके पुत्र और पौत्र जो आठ वनोंमें रहते हैं, जैसे मन्द, भद्र, मृग, गज, संकीर्ण जो वन वन में उत्पन्न हुए हैं उनकी योनिको स्मरण करो. वसु, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, तुम्हारी रक्षा करो. हे नागेन्द्र! अपने पालन करनेवालेकी रक्षा कर और स्वामीके समान पालना करो। और युद्धमें जयकी प्राप्ति हो तथा यात्रामें हमारा कल्याण करो। चन्द्रमासे तुम्हारी लक्ष्मी, विष्णुसे बल, सूर्यसे तज, पवनसे वेग, मेरुसे स्थिरता, रुद्रसे जय, इन्द्रदेवसे यश तुम्हारा प्राप्त रहे और नागदेवताओंके सहित दिशा, तथा गन्धर्वोंसहित अश्विनीकुमार एकत्र होकर तुम्हारी चारों ओरसे रक्षा करें। (अब खड्गको मन्त्र कहते हैं) हे खड्ग

अथ खड्गमन्त्रः—"असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथैव च ॥ एतानि तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा। नक्षत्रं कृत्तिका ते तु गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ रोहिण्यश्च शरीरं ते दैवतं च जनार्दनः। पिता पितामहो देवस्त्वं मां पालय सर्वदा ॥ नीलजीमूतसङ्काशस्तीक्ष्णदंष्ट्रः कृशोदरः। भावशुद्धोऽमर्षणश्च अतितेजास्तथैव च॥ इयं येन धृता क्षोणी हतश्च महिषासुरः। तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय ते नमः ॥ ९ ॥" अथ छूरिकायाः—"सर्वायुधानां प्रथमं निर्मितासि पिनाकिना । शूलायुधाद्विनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिग्रहं शुभम् ॥ चण्डिकायाः प्रदत्तासि सर्वदुष्टनिबर्हिणी। तया विस्तारिता चासि देवानां प्रतिपादिता ॥ सर्वसत्त्वाङ्गभूतासि सर्वाऽशुभनिबर्हिणि । छुरिके रक्ष मां नित्यं शांति यच्छ नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥ " अथ कट्टारकपूजा—"रक्षांगानि गजान्रक्ष रक्ष वाजिधनानि च। मम देहं सदा रक्ष कट्टारक नमोऽस्तु ते ॥" कट्टारको मध्यदेशे कटारीति प्रसिद्धा। अथ धनुःपूजा—"सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन । चाप मां समरे रक्ष साकं शरवरैरिह ॥ धृतं कृष्णेन रक्षार्थं संहाराय हरेण च । त्रयीमूर्तिगतं देवं धनुरस्त्रं नमाम्यहम् ॥ २ ॥" अथ कुन्तपूजा—"प्रास पातय शत्रूंस्त्वमनया नाकमायया। गृहाण जीवितं तेषां मम सैन्यं च रक्षताम् ॥ " अथ चर्मपूजा—

असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मधार ये तुम्हारे नाम हैं और ब्रह्माने स्वयं कहे हैं, कृत्तिका तुम्हारा नक्षत्र, गुरुदेव महेश्वर हैं, तुम्हारा शरीर रोहिणी है, जनार्दन देवता है, तुम पितापितामह देव हो, तुम मेरी सदा पालना करो। नीलमेघके तुल्य तुम्हारा रूप है, तुम्हारी तीक्ष्ण दाढ़ें हैं, कृश पेट है, भाव शुद्ध है,सहनेके अयोग्य अत्यन्त तेजवान् हो, इस पृथ्वीको जिसने धारण किया है और महिषासुरको मारा है उस तीक्ष्ण धारावाले शुद्ध खड्गको प्रणाम है। (छुरीका मंत्र) हे छुरी ! सब शस्त्रोंसे प्रथम महादेवने तुम्हें शूल आयुधसे निकालकर और शुभ मुष्टि धर बनाकर निर्माण किया है, और चण्डिकाको दी है, तुम सब दुष्टोंकी नाश करनेवाली हो, देवीने ऐसा ही तुम्हारा विस्तार किया और देवताओंको दी, सब जीवोंके अंगसे उत्पन्न सब अशुभोंको नष्ट करनेवाली, हे छुरिके ! मेरी नित्य रक्षा करो और शान्ति दो, तुम्हें नमस्कार है। (कटारकी पूजा) हे कटार ! गौ, हाथी, घोड़े, धनकी रक्षा कर और मेरे देहकी निरन्तर रक्षा कर। हे कटार ! तुम्हें नमस्कार है, कटारको कोई मध्यदेशमें 'कटारी' कहते हैं। (धनुषकी पूजा) हे सब आयुधोंमें महान् ! हे सब देव शत्रुओंके नाशक ! हे धनुष ! बाणोंसहित संग्राममें हमारी रक्षा कर, रक्षाके निमित्त कृष्णने और संहारके निमित्त महादेवने तुझे धारण किया। तीनों मूर्तियोंमें तेरा तेज है, मैं धनुष अस्त्रको प्रणाम करता हूं। (भालेकी पूजा) हे भाले ! तुम शत्रुओंको गिराओ, इस देवमायासे उनके प्राणको ग्रहण करो और मेरी सेनाकी रक्षा करो। (अब चर्म ढालकी पूजा कहते हैं) हे चर्म ! तू

"शर्मप्रदस्त्वं समरे चर्म सैन्ये यशोऽद्य मे। रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तापनेय नमोऽस्तु ते॥" अथ कनकदण्डमन्त्रः-"प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंरक्षणाय च। ब्रह्मणा निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये॥ यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः। ताडयस्व रिपून्सर्वान्हेमदण्ड नमोऽस्तु ते॥ २॥" अथ दुन्दुभिमन्त्रः-"त्वं दुन्दुभे सपत्नानां घोरो हृदयकम्पनः। भव भूमिपसैन्यानां तथा विजयवर्धनः॥ यथा जीमूतघोषेण प्रहृष्यन्ति च बर्हिणः। तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावहः॥ यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते। तथात्र तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्द्विषो रणे॥ ३॥" अथ शंखमन्त्रः-"पुण्यस्त्वं शंख पुण्यानां मंगलानां च मंगलम्। विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिप्रदो भव॥" अथ सिंहासनमंत्रः-"विजयो जयदो जेता रिपुघाती शुभंकरः। दुःखहा धर्मदः शांतः सर्वारिष्टविनाशनः॥ एते वै संनिधौ यस्मात्तव सिंहा महाबलाः। तेन सिंहासनेति त्वं देवैर्मंत्रैश्च गीयसे॥ त्वयि स्थितः शिवः शांतस्त्वयि शक्रः सुरेश्वरः। नमस्ते सर्वतोभद्र भद्रदो भव भूपतेः॥ त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोऽस्तु ते। तथैव कर्मचिह्नानि स्वानि पूज्यानि शिल्पिभिः॥ लोहाभिसारिकं कर्म कृत्वैवं मंत्रपूर्वकम्। कृत्वा नियममष्टम्यां पूर्वाह्णे स्नानमाचरेत्॥ कुंकुमचंदनचम्पकचतुरामैः शैलपिष्टैश्च। चर्चितगात्री

संग्राममें सुख देनेवाली है, आज मेरी सेनाके यशकी रक्षा कर, मैं तुम्हारी रक्षाके योग्य हूं, हे तपानेवाले! तुमको नमस्कार है। (अब सुवर्णके दण्डका मन्त्र कथन करते हैं) कि, दुष्टोंके भगाने और साधुओंकी रक्षाके और व्यवहारको प्रसिद्धके निमित्त ब्रह्माने तुम्हें रचा है। राजाको यश, सुख, जय देनेवाला हो, सब शत्रुओंको ताडन कर। हे सुवर्णके दंड! तुझको प्रणाम है॥ (दुन्दुभिका मन्त्र) हे दुन्दुभे! तू भयानक है और शत्रुओंके हृदय आकर्षण करनेवाला है, जैसे मेघके शब्दसे मोर प्रसन्न होते हैं इस प्रकार तुम्हारे शब्दसे हमको प्रसन्नता हो। जिस प्रकार मेघके शब्दसे स्त्रियोंको डर होता है तैसे ही तेरे शब्दसे युद्धमें हमारे शत्रुओंको त्रास हो। (अब शंखका मन्त्र कथन करते हैं) हे शंख! तू पुण्योंका पुण्य और मंगलोंका मंगल है, विष्णु भगवान् तुझे नित्य धारण करते हैं इससे हमें शांति दो। (अब सिंहासनका मन्त्र कहते हैं) विजय, जयका देनेवाला, शत्रुओंका जीतनेवाला, रिपुका मारनेवाला, शुभका कर्ता, दुःखका नाशक, धनदाता, शान्तरूप, सब अरिष्टोंका नाशक ह, जिससे यह आठ महाबली सिंह तुम्हारे निकट हैं इससे वेद और मंत्रमें तुम्हें! सिंहासन कहा है, तुममें शान्त शिव स्थित हैं, तुममें इन्द्र स्थित हैं, हे सर्वतोभद्र तुम्हें प्रणाम है; तुम राजाको वर देनेवाले हो। हे त्रिलोकीके जयके सर्वस्व सिंहासन! तुझे प्रणाम है। वैसे शिल्पी अपने कामके चिह्नोंका पूजन करें, इस प्रकार मंत्रपूर्वक लोहाभिसारिक कर्मको समाप्त करके अष्टमीको नियमपूर्वक पूर्वाह्णमें स्नान करे, कुंकुम, चंदन, चम्पा, लाखको चन्दनमें पीसकर शरीरपर चर्चे,

देवीं कुसुमैरभ्यर्चयेद्बहुभिः ॥ कुमुदैः सपद्मपुष्पैः सधूपदीपैः सनैवेद्यैः । मांसैर्बल्युपहारैर्मङ्गलशब्दैः समुच्छलितैः ॥ विहितच्छत्रैर्यानैः स्यन्दनसितशस्त्रधारिजनलोकैः । तुष्टैः पश्वस्त्रादि च निवेद्यते सर्वमेव भगवत्यै ॥ दुर्गा सा पूजनीया च तद्दिने द्रोणपुष्पकैः । ततः खड्गं नमस्कृत्य शत्रूणां वधसिद्धये ॥ इच्छेत विजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मने नृपः । पुनःपुनः प्रणम्यार्यां संस्मरन्हृदये शिवाम् ॥ सर्वं कृत्वेति कौरव्य अष्टम्यां जागरं निशि । नटनर्तकगीतैश्च कारयेच्च महोत्सवम् ॥ एवं हृष्टैर्निशां नीत्वा प्रभाते अरुणोदये । घातयेन्माहिषान्मेषानग्रतो नतकंधरान् ॥ शतमर्धशतं वापि तदर्धं वा यथेच्छया । सुरासवधृतैः कुम्भैस्तर्पयेत्परमेश्वरीम् । कापालिकेभ्यस्तद्देयं दासीदासजने तथा । ततोऽपराह्णसमये नवम्यां वै रथे स्थिताम् ॥ भवानीं भ्रामयेद्राष्ट्रे स्वयं राजा सशब्दवान् । कश्चिच्चोपोषितो वीरो विधृतोऽन्येन खड्गवान् ॥ भूतेभ्यस्तु बलिं दद्यान्मंत्रेणानेन सामिषम् । सरक्तं सजलं चान्नं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ॥ त्रींस्त्रीन्वारान्समूहेन दिग्विदिक्षु किरेद्बलिम् ॥ १७ ॥" मन्त्रश्च—"बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा । मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥ असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः । डाकिन्यो यक्ष-

---

और बहुत फलोंसे गायत्रीकी अर्चा करे, कुमुद, पद्मके फूल, दीप, नैवेद्य, मांसबलि, भेंट, बडे बडे मंगलके शब्द, नाये छत्र,पान,रथ, पैने शस्त्र धारण करनेवाले लोक प्रसन्नमन होकर इन सबका भगवतीके प्रति निवेदन करे और उस दिन दुर्गाकी द्रोणके फूलोंसे पूजा करे, फिर शत्रुओंके मारनेके निमित्त खड्गको प्रणाम करके राजा अपने विजय राज्य सुभिक्षकी इच्छा करे। वारंवार खड्गको नमस्कार करके शिवाका हृदयमें स्मरण करता हुआ पूजन करे हे कुरुवंशी ! इन सब कृत्योंको करके अष्टमीको रात्रिमें नटोंके नृत्य गीतोंसे बडे उत्साहसे जागरण करे। इस प्रकार प्रसन्नतासे रात्रिको विताकर प्रातःकाल अरुणोदयके समय देवीके आगे झुकाये कन्धेवाले भैंसे और मेढे सौ, पचास, पचीस, अपनी इच्छासे बलि दिवावे और सुराके आसवसे भरे घडोंसे परमेश्वरीकी अर्चा करे। वह मांस कापालिकोंको दे देना और दास दासियोंको देदे, फिर अपराह्ण कालमें नवमीकी रथमें बैठाकर भवानीको अपने राष्ट्र (देश)में स्वयं भ्रमण करावे, जो कोई व्रती वीर खड्गवान् किसी दूसरेने पकड़ रक्खा हो मांससहित सब भूतोंको बली इस मंत्रसे दे[१], रुधिर जलसहित गंध, पुष्प, अक्षतोंसे युक्त अन्न तीन तीन वार मूलमंत्र पढ़कर दिशा और विदिशाओंमें उस अन्नकी बलि देनी. मंत्र यह है—देवता, आदित्य, वसु, मरुत्, अश्विनीकुमार, रुद्र, सुपर्ण, पन्नग, ग्रह, असुर, यातुधान पिशाच, उरग, राक्षस, डाकिनी, यक्ष, वेताल, योगिनी, पूतना, शिवा, जंभिका, सिद्ध,

---

१ यह कल्पान्तरका विषय है।

वेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥ जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा माला विद्याधरा नगाः ॥ दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥ जगतां शांतिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः। मा विघ्नं मा च मे पापं मा संतु परिपंथिनः ॥ सौम्या भवंतु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ॥ ४ ॥" इति। इति महाष्टमीनिर्णयः ॥ महानवमीनिर्णयः। महानवमी तु पूर्वयुता ग्राह्या पूर्वोक्तवचनात्। 'नवमी दुर्गाव्रते श्रावणी' इति दीपिकोक्तेः। "श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् ॥" इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेश्च। भविष्येऽपि-"आश्वयुक्छुक्लपक्षे तु अष्टमी मूलसंयुता। सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा॥" इति मूल-मुपलक्षणम्। "दुर्गापूजा तु नवमी मूलाद्यृक्षत्रयान्विता। महती कीर्तिता तस्यां दुर्गा महिषमर्दिनी ॥" इति मदनरत्ने लैंगात्। अत्र पूजयेदित्यग्रे शेषः। यानि तु 'सा कार्योदयगामिन्यां' 'तिथावुदयगामिन्याम्' इत्यादिप्रागुक्तानि। तानि नवमीभिन्नतिथिपराणि। नवम्यां विशेषोक्तेः। वेधश्च मुहूर्तत्रयेणैव ज्ञेयः। यद्यपि हेमाद्रिमते मुहूर्तद्वयात्मापि वेधोऽस्ति तथापि सूर्योदय एव सः। सायं तु त्रि-मुहूर्त एव। तदुक्तं दीपिकायाम्-'त्रिमुहूर्तगा तु सकला सायम्' इति। माधवोऽपि-'सायं तूत्तरया तद्वन्न्यूनया न तु विद्ध्यते' इति। तेन त्रिमुहूर्तयोगे पूर्वा नवमी।

गन्धर्व, माला, विद्याधर, नाग, दिक्पाल, लोकपाल जो तथा विघ्न और विनायक हैं और जगत्की शांति करनेवाले ब्रह्मा आदि महर्षि हैं, वे सबही इस बलिको स्वीकार करें और मेरा विघ्न न हो, पाप न हो। शत्रु न हों और सुख देनेवाले सब भूत प्रेत मुझे सौम्य हो जायँ। इति महाष्टमीनिर्णयः ॥ महानवमी पूर्वोक्तवाक्यसे पूर्वयुक्त ग्रहण करनी। कारण कि, दीपि-कामें यह लिखा है कि, दुर्गाव्रतकी नवमी और श्रावणी पूर्वयुता ग्रहण करनी। हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वाक्य है कि, श्रावणी, दुर्गानवमी, दूर्वाअष्टमी, होली, शिवरात्री, वामनद्वादशी यह पूर्वविद्धा ग्रहण करनी। भविष्यपुराणमें लिखा है कि, आश्विनशुक्ल पक्षकी मूलसंयुक्त अष्टमी महानवमी कही है, यह त्रिलोकीमें भी दुर्लभ है, मूलनक्षत्र उपलक्षण है। कारण कि, मदनरत्नमें लिंगपुराणका कथन है कि, दुर्गापूजामें नवमी मूल आदि तीन नक्षत्रोंसे युक्त बडी लिखी है, उसमें महिषमर्दिनी दुर्गाकी पूजा करे और जो यह वाक्य है कि, उदयगामिनी तिथिमें वह करनी चाहिये। यह पूर्वोक्त वाक्य नवमीसे भिन्न तिथिके विषयमें लिखे हैं कारण कि, नवमीमें विशेष लिखा है, वेध तीन मुहूर्तसे जानना चाहिये। यद्यपि हेमाद्रिके मतमें दो मुहूर्तका भी वेध लिखा है तो भी सूर्योदयमें वह जानना। सायंकालकी तो तीन मुहूर्त्तका ही वेध होता है यही दीपिकामें लिखा है कि, सायंकालको तीन मुहूर्त्त भी तिथि हो तो सम्पूर्ण ही जाननी। माधवका भी यही कथन है कि सायंकालके समय न्यून भी अगली तिथिसे वेध नहीं होता इससे तीन मुहूर्तके योगमें पूर्वोक्त वाक्यसे प्रथम नवमी ग्रहण करनी,

पूर्वोक्तवचनात्। 'न कुर्यान्नवमीं तात दशम्यां तु कदाचन ' इति स्कान्दे परा-निषेधाच्च। त्रिमुहूर्तयोगाभावे तु निषिद्धापि परैव कार्येति निष्कर्षः ॥ यत्तु-"नवम्यां च जपं होमं समाप्य श्रवणेऽपि वा।" इति संग्रहोक्तेः। 'व्रतं च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः ' इति देवीपुराणाच्च। तत्र होमबल्यादिनिर्णयः। नवम्यां होमबल्यादिविहितं तत्र-"आश्वयुक्छुक्लनवमी मुहूर्तं वा कला यदि। सा तिथिः सकला ज्ञेया लक्ष्मीविद्याजयार्थिभिः ॥" इति सौरपुराणात्। "सूर्योदये परं रिक्ता पूर्णा स्यादपरा यदि। बलिदानं प्रकर्तव्यं तत्र देशे शुभावहम् ॥ बलिदाने कृतेऽष्टम्यां पुत्रभंगो भवेन्नृप। इति मदनरत्ने देवीपुराणाच्च। बल्यादौ परा कार्या। उपवासादौ तु पूर्वेति मदनरत्ने उक्तम्। प्रतापमार्तण्डेऽप्येवम्। यत्तु-'अष्टम्यां बलिदानेन पुत्रनाशो भवेद्ध्रुवम् ।' इति कालिकापुराणे। तत्संधिपूजा-परम्। 'अष्टमीनवमीसंधौ तृतीया खलु कथ्यते'। इति तत्रैव तदुक्तेः। कामरूप-निबन्धे-"अष्टम्याः शेषदण्डश्च नवम्याः पूर्व एव च। तत्र या क्रियते पूजा विज्ञेया सा महाफला ॥" अष्टमीमात्रे भवत्येव। "आश्विने पूजयित्वा तु अर्ध-रात्रेऽष्टमीषु च। घातयंति पशून् भक्त्या ते भवन्ति महाबलाः ॥" तथा-"कन्या-संस्थे रवावीशे शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत्। सोपवासो निशार्द्धे तु महाविभवविस्तरैः ॥" तथा-"पशुघातश्च कर्तव्यो गवयाजवधस्तथा ॥" इति रूपनारायणीये देवी-

स्कन्दपुराणमें यह निषेध भी है कि, हे तात! दशमीमें नवमीको कभी भी न करे उससे तीन मुहूर्त्तका योग हो तो निषिद्ध भी अगली करनी यही सिद्धान्त है। जो किसीने संग्रहके वाक्यस यह लिखा है कि, श्रवणमें जप और होम नवमीको पूर्ण करे, नवमीमें विधिपूर्वक व्रत, जागरण, बलिदान करे यह देवीपुराणमें है। यहां नवमीको होम बलिदान लिखा है, उसमें इस सौरपुराण और देवीपुराणके वाक्यसे बलि आदिमें दूसरी और व्रत आदिमें पहली करनी। यह मदनरत्नमें लिखा है कि, आश्विनशुक्ला नवमी मुहूर्त्त वा कलामात्र हो तो वह विद्या, लक्ष्मी जयकी इच्छावालोंको सम्पूर्ण जाननी चाहिये, सूर्योदयमें नवमी हो और आगे दशमी हो तो देशमें शुभ देनेवाले बलिदानको करना। हे राजन्! अष्टमीमें बलि-दान करनेसे पुत्रका नाश होता है और प्रतापमार्तण्डमें भी इसी प्रकार लिखा है। जो यह कालिकापुराणमें कहा है कि, अष्टमीको बलिदानसे अवश्य पुत्रनाश होता है वह वाक्य सन्धिपूजाकी प्रशंसाके निमित्त है। कारण कि, उसी स्थलमें उसने यह लिखा है कि, अष्टमी और नवमीकी सन्धिमें पूजा करनी। कामरूप निबन्धमें भी कहा है कि, अष्टमीका शेषभाग और नवमीका पूर्वभाग उसमें की हुई पूजा महाफलको देनेवाली होती है, केवल अष्टमीमें भी यह होती है, आश्विनकी अष्टमीमें आधीरातके समय पूजा करके जो भक्तिसे पशुओंका वध करते हैं वे महाबलको प्राप्त होते हैं। कन्याके सूर्यमें शुक्लाष्ट-मीको व्रत करके आधीरातमें बड़े धनके विस्तरसे पूजा करे। इसी प्रकार पशुका घात और नीलपशु और मेषका घात करे, रूपनारायणीयमें यह देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, वहां ही भविष्यपुराणका यह वाक्य लिखा है कि, उससे महापुण्य और पापनाशिनी

पुराणात्। तत्रैव भविष्ये-"तस्मादियं महापुण्या नवमी पापनाशिनी। उपोष्या सुप्रयत्नेन सततं सर्वपार्थिवैः॥" निर्णयदीपे तु महानवमी परदिने पराह्णव्यापित्वे परा। अन्यथा पूर्वा। "आवर्तनात्पूर्वकाले नवमी स्यात्परेऽहनि। दुर्गार्चा तत्र पूर्वेद्युः पूर्वाह्णे त्वष्टमी यदि॥" इति धौम्यवचनादित्युक्तम्। अस्य तु शारदानवमीविषयत्वं समूलत्वं च विमृश्यम्। यानि तु-"नन्दायां ज्वलते वह्निः पूर्णायां पशुघातनम्। भद्रायां गोकुलक्रीडा तत्र राज्यं विनश्यति॥" इति। "नवम्यामपराह्णे तु बलिदानं प्रशस्यते। दशमीं वर्जयेत्तत्र नात्र कार्या विचारणा॥" इति। "नन्दायां दर्शने रक्षा बलिदानं दिशासु च। भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते"॥ 'ब्रह्मवैवर्तनारदादिवचनानि शुद्धाधिकानिषेधपराणि' इति मदनरत्ने। तथा कालिकापुराणे-"नवम्यां बलिदानं तु कर्त्तव्यं वै यथाविधि। जपं होमं च विधिवत्कुर्यात्तत्र विभूतये॥" केचित्तु-'पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्।" इति पूर्वोक्तदेवीपुराणादष्टम्यां होममाहुः। अन्ये तु द्विविधवाक्यवशादष्टम्यामारभ्य नवम्यां समापयन्ति। समुच्चयस्तु युक्तः। रुद्रयामले तु विकल्प उक्तः। तत्तु निर्मूलम्। दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यादिगौडग्रन्थेष्वपि नवम्यां होम उक्तः। होमे विशेषः। होमे च विशेष उक्तो डामरतन्त्रे-"पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम्। होमयेद्द्वि-

---

यह नवमी बड़े यत्नसे सब राजाओंके व्रत रहने योग्य है। निर्णयदीपमें तो यह लिखा है कि, महानवमी परदिनमें अपराह्णव्यापिनी हो तो परली लेनी अन्यथा पहली करनी। कारण कि, यह धौम्यने कहा है कि, आवर्त्तन (मध्याह्न) से नवमी पूर्व कालमें परले दिन हो और जो अष्टमी पहले दिन पूर्वाह्णमें हो तो दुर्गाकी पूजा प्रथम दिन करे, इस वाक्यको शरद्नवमीविषयमें मानना चाहिये। और इसमें प्रमाण भी विचारने योग्य है। जो ब्रह्मवैवर्त नारद आदिके यह वाक्य हैं कि, नन्दामें अग्निहोत्र, पूर्णामें पशुवध, भद्रामें गौओंकी क्रीडा करे तो राज्य नष्ट होता है, नवमीके दिन अपराह्णमें बलिदान उत्तम है और दशमीको निषेध है इसमें विचार नहीं करना, नन्दामें राजदर्शन रक्षाबन्धन दिशाओंमें बलिदान करना, भद्रामें क्रीडा हो तो देशका नाश होता है, ये पूर्वोक्त वाक्य शुद्धासे अधिकके निषेधके विषय लिखे हैं, यह मदनरत्नमें कहा है, इसी प्रकार कालिकापुराणके वाक्य हैं कि, नवमीको विधिसे बलिदान करे और अपने ऐश्वर्यके निमित्त विधिसे जप, होम करे। कोई तो इस पूर्वोक्त देवीपुराणके वाक्यसे अष्टमीको होम कहते हैं कि, पूर्वाषाढासे युक्त अष्टमीको पूजा, हवन, व्रत करे और तो दोनों प्रकारके वाक्योंसे अष्टमीसे आरम्भ करके नवमीको पूर्ण करते हैं, इनकी एकता तो युक्त है। रुद्रयामलमें तो विकल्प लिखा है सो निर्मूल है। दुर्गाभक्तितरंगिणी आदि गौडग्रन्थोंमें तो नवमीको हवन लिखा है और हवनमें विशेष डामरतन्त्रमें यह लिखा है कि, हे राजन्! घीसे

धिवद्भक्त्या दशांशेन नृपोत्तम ॥१॥ रुद्राध्याये यथा होमं मंत्रेणैकेन साधयेत्। तथा स्तोत्रजपे होमं श्लोकेनैकेन साधयेत् ॥ २ ॥" यद्वा सप्तशतीजप्यहोममन्त्रो नवाक्षरः। 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इति नवाक्षरः इति केचित्। पूजोक्तो ग्राह्य इति तु युक्तम्। रुद्रयामलेऽपि—"प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टं पायसान्नं तिलास्तथा। किंशुकैः सर्षपैः पूगैर्लाजदूर्वाङ्कुरैरपि॥ यवैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा। रक्तचन्दनखण्डैश्च गुग्गुलैश्च मनोहरैः॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयात्सर्वद्रव्याणि च क्रमात्। नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो देव्या इतीति च॥" इति। रहस्ये तु—'प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं त्रिलसर्पिषा।' इत्युक्तम्। दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां तु तिलैर्जयन्तीमन्त्रेण च होम उक्तः—'पुरश्चरणकार्ये तु बिल्वपत्रयुतैस्तिलैः।' इति। कालिकापुराणाद्बिल्वपत्रैश्चेति स्मार्ताः। तन्न। अत्र मानाभावात्। अथ बलिदानम्। तत्राश्वमेषच्छागमहिषस्वमांसानामुत्तरोत्तरं प्राशस्त्यं फलविशेषश्चान्यतोऽवसेय इति दिक्॥ बलिप्रकारस्तु देवीपुराणे—"कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत्। द्रोणपुष्पैश्च बिल्वाम्रजातीपुन्नागचम्पकैः॥ पञ्चाब्दं लक्षणोपेतं गन्धपुष्पसमन्वितम्। विधिवत्कालिकालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत्॥ २॥" 'ॐ कालिकालि वज्रेश्वरि लोहदण्डायै नमः।' इति मंत्रः। 'तदुत्थरुधिरं मांसं गृहीत्वा पूजनादिषु।' आदिशब्दात्

और श्वेत तिलोंसे मिली खीरका भक्ति और विधिसे दशांश हवन करे, जैसे रुद्राध्यायमें एक मन्त्रसे हवन होता है इसी प्रकार स्तोत्रके जपमें एक श्लोकसे हवन करे, अथवा सप्तशती (दुर्गापाठ) जपमें 'ऐंह्रींक्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस नवाक्षरसे वा पूर्वोक्त पूजाके नवाक्षर मन्त्रसे हवन करे यह युक्त ही है। रुद्रयामलमें तो यह लिखा है कि, खीर और तिल पूजाके प्रधान द्रव्य हैं और टेशू, सरसों, सुपारी, खील, दूर्वा, यव, श्रीफल, नाना प्रकारके दिव्य फल, लालचन्दनके खण्ड, मनोहर गन्ध इन सब द्रव्योंसे प्रतिश्लोकसे वा नवाक्षरसे वा (नमो देव्यै) इससे हवन करे। रहस्यमें तो यह लिखा है कि, घी मिली खीरसे प्रतिश्लोक पढ़कर होम करे। दुर्गाभक्तितरंगिणीमें तो जयन्तीमन्त्रसे तिलोंका होम करना कहा है, पुरश्चरणके कार्योंमें तो बिल्वपत्रसे मिले तिलोंसे होम करना कहा है इस कालिकापुराणसे बेलपत्रसे होम करना कहा है, यह स्मार्त्त कहते हैं सो उचित नहीं। कारण कि, इसमें प्रमाण नहीं है। अब बलिदान कहते हैं—उसमें मेष, बकरी, भैंसा, अपना मांस, उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं इसका फल विशेष दूसरे ग्रन्थोंसे देख लेना यही मार्ग है। बलिका प्रकार तो देवीपुराणमें यह लिखा है कि, हे इन्द्र ! कन्याके सूर्यमें शुक्लाष्टमीको द्रोणके फूल, बेल, आम, जाती, पुन्नाग, चम्पासे तथा लक्षणसे युक्त गन्ध पुष्पसे पांच वर्षके पशुकी पूजा करे और विधिसे (ॐकालिकालि वज्रेश्वरि लोहदण्डायै नमः) इस मंत्रको जपकर खड्गसे वध करे, उसके निकले हुए रुधिर और मांसको लेकर पूजन आदि

चरकीविदारीपापराक्षस्यः । ' नैर्ऋतेभ्यः प्रदातव्यं महाकौशिकमन्त्रितम् ।' मन्त्रस्तु वक्ष्यते । तथा—"तस्याग्रतो नृपः स्नायात्कृत्वा शत्रुं तु पैष्टिकम् । खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात्स्कन्दविशाखयोः ॥" अशक्तौ ब्राह्मणेन च कूष्माण्डादिभिर्बलिदानं कार्यम् । तदुक्तं कालिकापुराणे—"कूष्माण्डमिक्षुदंडं च मांसं सारसमेव च । एते बलिसमाः प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमाः सदा ॥" रुद्रयामलेऽपि—"छागाभावे तु कूष्माण्डं श्रीफलं वा मनोहरम् । वस्त्रसंवेष्टितं कृत्वा छेदयेच्छुरिकादिना ॥" तथा—"ब्राह्मणेन सदा देयं कूष्मांडं बलिकर्मणि । श्रीफलं वा सुराधीश छेदं नैव तु कारयेत् ॥" छेदे विकल्पः—"माषान्नेन बलिर्देयो ब्राह्मणेन विजानता ॥" कालिकापुराणे—"उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा । निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ पशुस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः । प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ॥ चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम् । चामुण्डाबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥ यज्ञार्थे बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा । अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण तं बलिं मत्स्वरूपिणम् । चिन्तयित्वा न्यसेत्पुष्पं मूर्ध्नि तस्य तु भैरव ॥ रसना त्वं चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधकः ॥" ह्रीं ह्रीं खड्गेति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं च पूजयेत् । पूजयित्वा ततः खड्गं ॐ हुंफडिति

की विदारी पापराक्षसी राक्षस इनको महाकौशिकमंत्र (जो आगे लिखेंगे) पढ़कर दे । इसी प्रकारसे मन्त्र है । उसके आगे राजा स्नान करे और पिट्ठीक शत्रुको बनाकर खड्गसे मारकर स्कंद और विशाखाके निमित्त प्रदान करे, शक्ति न हो तो ब्राह्मणके द्वारा पेठा आदिसे बलि करनी चाहिये । यही कालिकापुराणमें लिखा है कि, कूष्माण्ड (पेठा), गन्ना, सारसका मांस ये बलिके तुल्य कहे हैं और तृप्तिमें सदा बकरेके तुल्य हैं । रुद्रयामलमें भी लिखा है कि, छाग न हो तो कूष्माण्ड वा मनोहर नारियलको वस्त्रसे लपेटकर छुरी आदिसे छेदन करावे, इसी प्रकार हे इन्द्र ! ब्राह्मणोंको सदैव बलिकर्ममें कूष्माण्ड वा श्रीफल देना चाहिये और उसका छेदन न करावे, छेदन करनेमें विकल्प है, ज्ञानी ब्राह्मण उर्द अन्नसे बलि दे । कालिकापुराणमें कहा है कि, आप उत्तराभिमुख होकर और बलिको पूर्वाभिमुख करके देखे और साधक भक्त पछिसे इस मंत्रको उच्चारण करे, तू पशु मेरे भाग्यसे बलिरूप प्राप्त हुआ है सर्वरूपी और बलिरूप तुझे मैं प्रणाम करता हूं, चंडिकाको प्रीतिदानसे तू दाताकी आपत्तियोंको हरता है, चांमुडाके बलिरूप तुम्हें मैं प्रणाम करता हूं, ब्रह्माने यज्ञके निमित्त स्वयं पशु रचे हैं, इससे तुझे मैं आज वध करता हूं इससे यज्ञमें मारना नहीं मारनेके समान है, ऐंह्रींश्रीं इस मंत्रसे उस बलिके देवतारूपी चिन्तन करके हे भैरव ! उसके मस्तकपर फल रक्खे । तू चण्डिकाकी जिह्वा इन्द्रलोक देनेवाली है । ह्रीं ह्रीं इस मन्त्रसे ध्यान करके खड्गकी पूजा करे पूजित खड्गको ॐहुंफट् इस मन्त्रसे लेकर उस उत्तम

मन्त्रकैः । गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद्वलिमुत्तमम् ॥ ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकीति रुधिरेणाप्यायतामिति । बलिदाने तु दुर्गायाः सर्वत्रायं विधिः स्मृतः ॥ ८ ॥" मत्स्यसूक्ते–"नवम्यां पूर्ववत्पूजा कर्तव्या भूतिमिच्छता। दक्षिणां वस्त्रयुग्मं च आचार्याय निवेदयेत् ॥" शतचण्डीविधाननिर्णयः । अथात्र प्रसंगाच्छतचण्डीविधानमुच्यते रुद्रयामले–"शतचण्डीविधानं च प्रोच्यमानं शृणुष्व तत् । सर्वोपद्रवनाशार्थे शतचण्डीं समारभेत् ॥ षोडशस्तंभसंयुक्तं मण्डपं पल्लवोज्ज्वलम् । वसुकोणयुतां वेदीं मध्ये कुर्यात्रिभागतः ॥ पक्वेष्टकचितां रम्यामुच्छ्राये हस्तसंमिताम् । तत्र वर्णरजोभिश्च कुर्यान्मण्डलकं शुभम् ॥ पञ्चवर्णवितानं च किंकिणीजालमण्डितम् । आचार्येण समं विप्रान्वरयेद्दश सुव्रतान् ॥ ईशान्यां स्थापयेत्कुम्भं पूर्वोक्तविधिना चरेत् । वारुण्यां च प्रकर्तव्यं कुण्डं लक्षणलक्षितम् ॥ मूर्तिं देव्याः प्रकुर्वीत सुवर्णस्य पलेन वै । तदर्धेन तदर्धेन तदर्धेन महामते ॥ अष्टादशभुजां देवीं कुर्याद्वाष्टकरामपि । पट्टकूलयुगच्छन्नां देवीं मध्ये निधापयेत् ॥ देवीं सम्पूज्य विधिवज्जपं कुर्युर्दश द्विजाः । शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवार्णवम् ॥ चण्डीं सप्तशतीं मध्ये सम्पुटोऽयमुदाहृतः । एकं द्वे त्रीणि चत्वारि जपेद्दिनचतुष्टयम् ॥ रूपाणि क्रमशस्तद्वत्पूजनादिकमाचरेत् । पञ्चमीदिवसे प्रातर्होमं कुर्याद्विधानतः ॥

बलिका छेदन करे, फिर (ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकीति रुधिरेणाप्यायताम्) इस मन्त्रसे बलि देनी दुर्गाके बलिदानमें सब स्थानमें यह विधि कथन की है, मत्स्यसूक्तमें लिखा है कि, धनकी इच्छावाले मनुष्यको नवमीके दिन पूर्वके तुल्य पूजन करना तथा दक्षिणा और वस्त्र आचार्यको देने चाहिये । अब प्रसंगसे शतचंडीकी विधि लिखते हैं–रुद्रयामलमें लिखा है कि, मेरे कहे हुए शतचंडीविधानको सुनो, सब उपद्रव नाशके निमित्त शतचंडीका आरम्भ करना चाहिये । पत्तोंसे उज्ज्वल सोलह स्तभोंका मंडप निर्माण करे उसके मध्यके त्रिभागमें आठ कोणकी ऐसी वेदी निर्माण करे जो पक्की ईंटोंसे चुनी हो मनोहर और एक हाथ ऊँची हो, उसपर पांच रंगोंसे सुन्दर मंडल निर्माण करे, पांच वर्णका चँदोआ झालर सहित ऊपर लगावे, आचार्य सहित सुन्दर व्रतवाले दश ब्राह्मणोंका वरण करना । हे इन्द्र ! ईशानदिशामें पूर्वोक्तविधिसे घड़ेको स्थापन करे और लक्षणोंसे युक्त कुण्ड दक्षिणदिशामें बनावे, सुवर्णके एक पलकी वा आधेकी वा उससे आधेकी वा उससे आधेकी ऐसी मूर्ति बनवावे, जिसके अठारह वा आठ भुजा हों और रेशमके दो वस्त्रोंसे ढकी हो देवीको मध्यमें स्थापन करे, विधिसे देवीकी पूजा करके दशों ब्राह्मण विधिपूर्वक जप करें, और आदिअन्तमें सौ सौ नवार्ण मंत्रका और मध्यमें सप्तशती चंडीका जप करे यह संपूर्ण कहा है । एक, दो, तीन, चार पाठ चार दिनतक क्रमसे करने उसी प्रकार पूजन करे पांचवे दिन विधिसे पूजन करे, पांचवे दिन विधिसे हवन करे, चंडीपाठका होम प्रतिश्लोक दशां-

गुडूचीं पायसं दूर्वां तिलाञ्छुक्लान्यवानपि। चण्डीपाठस्य होमं तु प्रतिश्लोकं दशांशतः॥ होमं कुर्याद्ग्रहादिभ्यः समिदाज्यचरून् क्रमात्। हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्याद्द्विजेभ्यो दक्षिणां क्रमात्॥ कपिलां गां नीलमणिं श्वेताश्वं छत्रचामरे। अभिषेकं ततः कुर्युर्यजमानस्य ऋत्विजः। एवं कृतेऽमरेशान सर्वसिद्धिः प्रजायते॥" सहस्रचण्डीनिर्णयः। अथ सहस्रचण्डी। सा च तत्रैवोक्ता-"सहस्रचण्डीं विधिवच्छृणु विष्णो महामते। राज्यभ्रंशे महोत्पाते जनमारे महाभये॥ गजमारेऽश्वमारे च परचक्रभये तथा। इत्यादिविविधे दुःखे क्षयरोगादिजे भये॥ सहस्रचण्डिकापाठं कुर्याद्वा कारयेत्तथा। जापकास्तु शतं प्रोक्ता विंशद्धस्तश्च मण्डपः॥ भोज्याः सहस्रं विप्रेन्द्रा गोशतं दक्षिणां दिशेत्। गुरवे द्विगुणं देयं शय्यादानं तथैव च॥ सप्तधान्यं च भूदानं श्वेताश्वं च मनोहरम्। पञ्चनिष्कमिता मूर्तिः कर्तव्या वार्धमानतः॥ अष्टादशभुजा देवी सर्वायुधविभूषिता। अवारितान्नं दातव्यं सहस्रं प्रत्यहं प्रभो॥ शतं वा नियताहारः पयःपानेन वर्तयेत्। एवं यश्चण्डिकापाठं सहस्रं तु समाचरेत्॥ तस्य स्यात्कार्यसिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा॥ ७॥" इति। एतद्द्वयं यद्यपि महानिबन्धेषु नास्ति तथापि प्रचरद्रूपत्वादुक्तमिति दिक्। वाराहीतंत्रे-"संकटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये तथा। जातिभ्रंशे कुलोच्छेदेऽप्या-

---

शसे, गिलोय, खीर, दूर्वा, श्वेततिल, यवसे होता है, और समिधा, घृत, चरु इनसे ग्रहोंके निमित्त हवन करे और होमके पीछे ब्राह्मणोंको कपिला गौ, नीलमणी, श्वेतछत्र, चामरकी दक्षिणा दे, फिर ऋत्विजको यजमानका अभिषेक करना चाहिये। हे इन्द्र! ऐसे करनेसे संपूर्ण सिद्धि प्राप्त होती हैं। अब सहस्रचण्डीकी विधि कथन करते हैं-यह भी रुद्रयामलमें ही लिखी है हे महामते विष्णो! सहस्रचंडीको विधानसे सुनो कि, राज्यभ्रष्ट महान् उत्पात, जनोंका मरना, महान् भय, हाथी और घोड़ोंकी महामारी, पराये चक्रका भय, क्षयरोग आदिका भय इत्यादि अनेक दुःखोंकी प्राप्ति हो तो सहस्रचंडीका जप करे वा करावे, इसके जापक सौ कहे हैं और बीस हाथका मंडप बनाना लिखा है, एक सहस्र ब्राह्मण भोजन करावे और सौ १०० गौकी दक्षिणा दे, और गुरुको दूनी दक्षिणा, शय्यादान, सप्तधान्य, भूमिदान, श्वेत रमणीय घोडा दे और पांच निष्कभर वा ढाई निष्कभर सुवर्णकी अठराह भुजायुक्त सब आयुधोंसे विभूषित देवीकी मूर्ति बनावे। हे विभो! प्रतिदिन सहस्र ब्राह्मणोंको या सौ ब्राह्मणोंको निरन्तर अन्नदान करना चाहिये और प्रमितदुग्ध पानसे यजमान रहे, इस प्रकारसे जो चण्डिकाके सहस्र पाठ करता है उसके कार्यकी सिद्धि होती है, इसमें विचार नहीं करना। यद्यपि यह दोनों विधान बड़े २ ग्रन्थोंमें नहीं लिखे हैं तथापि इनका प्रचार अधिक होनेसे इस ग्रन्थमें लिखे हैं। इति दिक्। वाराहीतन्त्रमें कहा है कि, संकटकी प्राप्ति चिकित्साके अयोग्य

युषो नाश आगते ॥ वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये।तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवोपपातके ॥ कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः संपद्यते :शुभम् । श्रेयोवृद्धिः शतावृत्ताद्राज्यवृद्धिस्तथापरा ॥ मनसा चिंन्तितं देवि सिद्ध्येदष्टोत्तराच्छतात् सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति वयं स्थिरा । भुक्त्वा मनोरथान्कामान्नरो मोक्षमवाप्नुयात्। चण्ड्याः शतावृत्तिपाठात्सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः ॥" इति शतचण्डीसहस्रचण्डीविधिः । नवरात्रपारणानिर्णयः । अथ नवरात्रपारणा । सा च दशम्यां कार्या—"आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम् । प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत् ॥ त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यां हि यथाक्रमम् ॥" इति हेमाद्रौ धौम्यवचनात् । 'नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम् ।' इति प्रागुक्तवचनैर्नवमीपर्यन्तं प्रधानभूतपूजाद्युक्तेरुपवासादेश्चाङ्गत्वेन तत्पर्यन्तत्वात् । आदिशब्देनोपवासोक्तेः पूर्वोक्तत्रिरात्रव्रते नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च न च पारणान्तत्वेन त्रिरात्रत्वम् । विष्णुत्रिरात्रादौ तथाप्रसक्तेः । न चात्रोपवासे मानाभाव इति वाच्यम् । "एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे ।" इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः । नवरात्रसमाख्यातो नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च । ननु तिथि-

---

रोग, जातिभ्रंश, अवस्थाका नाश, वैरी और व्याधिकी वृद्धि, धननाश, क्षयी रोग, तीन प्रकारके उपद्रव और उपपातकमें यत्नसे शतचण्डी करनी चाहिये तो शुभ होता है, चण्डीसे कल्याण और राज्यकी वृद्धि होती है। हे देवी! शत पाठसे मनोरथ सिद्ध होते हैं, सहस्रचण्डीसे स्वयं आकर लक्ष्मी प्राप्त होती है, सम्पूर्ण मनोरथ और कामनाओंको भोगकर मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होता है, चण्डीसे सब सिद्धि होती है। (इति शतचण्डीसहस्रचण्डीविधिः)। अब नवरात्रके पारणाका निर्णय लिखते हैं—वह पारणा दशमीमें करना चाहिये। कारण कि, हेमाद्रिमें धौम्यके वाक्यसे नवमी तिथिपर्यन्त व्रत लिखा है कि, आश्विनमासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे नवमीतक नवरात्र करने वा सप्तमीसे लेकर नवमीतक त्रिरात्रकरने और वृद्धिसे पूजा व्रत आदि करने, पहले कहे इन वाक्योंसे नवमी पर्यन्त प्रधान पूजा लिखी है और व्रत आदि पूजाके अंग हैं। कारण कि, आदि शब्दसे व्रत लिखा है और पूर्वोक्त त्रिरात्रव्रतमें नवमीको भी व्रत प्राप्त होता ह, यदि कोई शंका करे कि पारणके अन्ततक त्रिरात्र होंगे सो उचित नहीं कारण कि, विष्णुके त्रिरात्रमें भी इसी प्रकार हो जायगा, इसमें भी कोई शंका करे कि, यहां व्रतमें प्रमाण नहीं सो भी यथार्थ नहीं, कारण कि; हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे यह लिखा है कि, इस प्रकार विन्ध्यवासिनीमें नवरात्रके व्रत एक बार भोजन, नक्त, अयाचितव्रतसे मनुष्यको स्थान स्थान और पुर पुरमें व्रत करना चाहिये और नवरात्रके नामसे नवमी भी व्रत करने योग्य है, यदि कोई

ह्रासेऽष्ट वाप्युपवासा भवन्तीति कथं समाख्या । तेन कर्मविशेषे नवरात्रशब्दो रूढः । अत एवोक्तं देवीपुराणे-" तिथिवृद्धौ तिथिह्रासे नवरात्रमपार्थकम् ।" इति चेन्न । तिथिह्रासेऽपि नवतिथीनामुपोष्यत्वान्नवरात्रत्वाक्षतेः । एतेन रात्रीणां प्राधान्यात् ह्रासे अमामादाय नवत्वमिति मूर्खोक्तिः परास्ता । यत्तु देवीपुराणे-"कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् । अयाची ह्यथ-वैकाशी नक्ताशी वाथवाम्ब्वदः ॥" इति व्रतचतुष्टयमुक्तं तल्लौहाभिसारिकाविषयम् । तस्य-"जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् । लौहाभिसारिकं कर्म कारये-द्यावदष्टमी ॥" इति भविष्येऽष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेः । रूपनारयेणन तु नन्दादिव्रत-प्रयोगं पृथगेवोक्त्वा तस्य नवम्यां पारणमुक्तम् । यदपि निर्णयदीपे-"आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रमुपोषितः । नवम्यां पारणं कुर्याद्दशमीमिश्रता न चेत् । दशमी-मिश्रिता यत्र पारणे नवमी भवेत् । दुःखदारिद्र्यदा ज्ञेया तथा व्रतविना-शिनी ॥ २ ॥" इति ब्राह्मनाम्ना लिखितं वचनम् । यच्च रुद्रयामले इति वदन्ति-"अष्टम्या सह कार्या स्यान्नवमी पारणादिने । यो मोहाद्दशमीवेधो नवम्यां चण्डिकां यजेत् ॥ पारणं च प्रकुर्याद्वै तस्य पुण्यं निरर्थकम् । नवम्यां पारिता देवी कुल-वृद्धिं प्रयच्छति । दशम्यां पारिता देवी कुलनाशं करोति वै । तस्मात्तु पारणं

शंका करे कि, तिथिके घटनेमें आठ व्रत तो नवरात्रनाम किस प्रकार हो सकता है? इससे कर्म-विशेषमें नवरात्र शब्द रूढ है । इससे देवीपुराणमें लिखा है कि, तिथिकी वृद्धि और हानिमें नवरात्र नाम सत्य नहीं है सो ठीक नहीं कारण कि, तिथिके घटनेमें भी नौ तिथियोंमें व्रत होनेसे नवरात्र नाममें कोई हानि नहीं होती इससे यह मूर्खोंका कथन खण्डित हुआ कि, रात्रि प्रधान है, वह घट जाय तो अमावस्याको लेकर नवरात्र पूरे करने । जो देवीपुराणमें ये चार व्रत लिखे हैं कि, कन्याके सूर्यमें शुक्ल छठसे लेकर अयाचित, एकवार भोजन नक्त व्रतको करे, सो पूर्वोक्त लौहाभिसारिक कर्मके विषय जानना, कारण कि, वहकर्म भविष्यमें अष्टमीपर्यन्त ही लिखा है कि, जयकी इच्छावाला राजा अष्टमीपर्यंत लौहाभिसारिक कर्म सम्पादन करे, रूपनारायणने तो नन्दा आदि प्रयोगको कथन कर उसका नवमीमें पारण लिखा है । जो निर्णयदीपमें ब्रह्मपुराण नामसे यह कहा है कि आश्विनके शुक्लपक्षमें नौ ९ दिन व्रत करके दशमीयुक्त न हो तो नवमीको ही पारण करे, यदि पारणामें दशमीयुक्त नवमी हो तो दुःख दारिद्र्यकी देनेवाली और व्रतकी नाशक जाननी । जो रुद्रयामलमें यह लिखा है कि, पारणाके दिन अष्टमीयुक्त नवमी करनी चाहिये, जो अज्ञानसे दशमीविद्धा नवमीको पूजते हैं वा पारणा करते हैं उनका पुण्य व्यर्थ हो जाता है । नवमीमें पारणा करनेसे देवी वंशकी वृद्धि करती है और दशमीमें पारणासे वंशका नाश करती है, इससे हे इन्द्र !

कुर्यान्नवम्यां विबुधाधिप ॥ ३ ॥" इत्यादीनि । तानि यदि समूलानि तदा लौहाभिसारिकनन्दादिव्रतचतुष्टयविषयाणि । तस्याऽष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेरित्युक्तं प्राक्। अन्यथा महाष्टम्यां परविद्धायां ता (पा) रणाविधाने पूर्वनिबन्धैर्विरोधो दुर्वारः स्यात् । यानि तु कैश्चिल्लिखितानि नवम्यां पारणाविधायकानि वचनानि तानि हेमाद्र्यादिविरुद्धत्वान्निर्मूलानि । समूलत्वेऽपि यदा दिनद्वये नवमी, तदा द्वितीयदिन उपोष्य तिथ्यन्ते पारणा न किं तु नवमीमध्ये कार्येत्येवं नेयानि शिवरात्रिपारणावत् । अत्र केचित्पारणाहे सूतकादिप्राप्तौ तदतिक्रम्य पारणां कुर्यादित्याहुः। तन्मंदम्। "काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके। तत्र काम्यव्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्" ॥ इति माधवीये कौर्मोक्तेः। "व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥" इति विष्णुवचनाच्चाशौचमध्येऽपि तत्कर्तव्यतावगतेः । पारणान्तत्वाद्व्रतस्य प्रारम्भस्तु तेनैवोक्तः—"प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नांदीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥" इति । रुद्रयामलेऽपि—"सूतके पारणं कुर्यान्नवम्यां होमपूर्वकम् । तदन्ते भोजयेद्विप्रान् दानं दद्याच्च शक्तितः ॥" इति । तदन्ते—सूतकान्ते । एवं स्त्रीभिरपि रजोदर्शनमध्ये कर्तव्यमेव पारणम् । 'संप्रवृत्तेऽपि रजसि न

नवमीमें पारणा करनी चाहिये, इत्यादि वाक्य यदि प्रमाणयुक्त हैं तो लौहाभिसारिक नन्दा आदि चार व्रतोंके विषयमें जानने यह प्रथम कह आये हैं, अन्यथा परविद्धा अष्टमीको पारणा करोगे तो पूर्व (ग्रन्थों) के संग विरोध नहीं करसकोगे जो यह वाक्य किसीने नवमीमें पारणा आदिके विषयक लिखे हैं, वे हेमाद्रि आदिके विरुद्ध होनेसे निर्मूल हैं। यदि समूल भी हों तो वे इस प्रकार लगाने योग्य हैं—जब दो दिन नवमी हो तब दूसरे दिन व्रत करके तिथिके उपरान्तमें पारणा न करे, किन्तु शिवरात्रिके तुल्य नवमीके बीचमें ही कर ले। जो कोई यहां यह कथन करते हैं कि, पारणाके दिन सूतक आदि आ पड़े तो सूतककी निवृत्ति होनेपर पारणा करनी, सो मन्दता है। कारण कि, माधवीयमें कूर्मपुराणका लेख है कि, काम्यव्रतके प्रारम्भसे मरण वा सूतक हो जाय तो वहां दान और पूजनको त्यागकर काम्य व्रत करना और व्रत, यज्ञ, विवाह, होम, श्राद्ध, पूजन, जपके प्रारम्भके उपरान्त सूतक नहीं और प्रारम्भके पहिले सूतक है। इस विष्णुके वाक्यसे पारणान्त व्रत होनेसे पारणान्तव्रत ही प्रतीत होता है, प्रारम्भ तो सूतकमें नहीं लिखा है, कारण कि, यह वाक्य है कि, प्रारम्भ, वरण, यज्ञ और सूत्रमें व्रतका संकल्प, विवाह आदिमें नांदीमुखका संकल्प, श्राद्धमें पाक ये सूतकमें न करने चाहिये। रुद्रयामलमें यह लिखा है कि, नवमीका सूतकमें भी हवन करके पारणा करे और सूतकके पीछे ब्राह्मण जिमावे और शक्तिसे दान दे। इसी प्रकार स्त्री भी रजोदर्शनके उपरान्तमें पारणा कर ले। कारण कि, माधवीयमें ऋष्यश्रृंगने कहा है कि, रजके होनेपर भी स्त्री द्वादशीके व्रतको न त्यागे।

स्त्याज्यं द्वादशीव्रतम् ।' इति माधवीये ऋष्यशृङ्गवचनात् । द्वादशीव्रतमित्युपलक्षणम् । "प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् । न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन ॥" इति तत्रैव सत्यव्रतवचनात् । किं च एकादश्यादौ पञ्चषाशौचपाते मासान्ते पारणापत्तिः । मासोपवासान्ते पञ्चषाशौचपाते जीवनासम्भवश्च । यत्तु—"नियमस्था यदा नारी प्रपश्येदन्तरा रजः । उपोष्यैव तु ता रात्रीः स्नात्वा शेषं चरेद्व्रतम् ॥" इत्यंगिरोवचनम् । यच्च हारीतवचनम्—"नियमस्था व्रतस्था स्त्री रजः पश्येत्कथञ्चन । त्रिरात्रं तु क्षिपेदूर्ध्वं व्रतशेषं समापयेत् ॥" तद्विधवोपवासविषयम् । तासां तत्र भोजननिषेधादिति केचित् । वयं तु प्रागुक्तसत्यव्रतवचने दीर्घतपसामिति विशेषणोपादानाद्द्वादशीव्यतिरिक्तसकलैकाहोपवासविषयोऽयं निषेधः । त्रिरात्रनवरात्रादिदीर्घव्रतेषु तु रजोमध्ये पारणा इति ब्रूमः । आशौचमध्ये सर्वापि पारणा भवति प्रागुक्तकौर्मवचनादिति सिद्धम् । अथ चोपवासपारणानिर्णयः सर्वव्रतेषु बोद्धव्य इत्यलं भूयसा । दशम्यां देवीविसर्जननिर्णयः । दशम्यां देवीं विसर्जयेत् । तदुक्तं दुर्गाभक्तितरंगिण्यां देवीपुराणे—"ततः प्रातः पूजयित्वा दशम्यां विधिपूर्वकम् । संप्रेषणं तु कर्तव्यं गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि ।

द्वादशीव्रत और व्रतोंका भी उपलक्षण है, कारण कि, वहां ही सत्यव्रतका कथन है कि, दीर्घ तपके प्रारम्भ करनेपर यदि स्त्रियोंको रजोदर्शन हो जाय तो वहाँ भी किसी प्रकार व्रतका उपरोध नहीं होता और यह भी लिखा है कि, एकादशी आदि व्रतोंमें पांच छः आशौचोंके लगातार आनेपर महीनेके पीछे पारणा होगी, और मासोपवासके मध्यमें पांच छः आशौच होनेपर जीवनका भी असंभव प्राप्त होगा जो ये अंगिरा और हारीतके वाक्य हैं कि, नियममें स्थित हुई यदि स्त्री रजको देख ले तो उन रात्रियोंमें व्रत स्नान करके शेष व्रतको करना । नियम और व्रतमें स्थित स्त्री यदि किसी प्रकार रजको देखे तो तीन रात्रके बितानेपर शेष व्रतको पूर्ण करे, ये वाक्य विधवाके व्रतमें हैं। कारण कि, विधवाओंको ऋतुमें भोजनका निषेध कहा है कोई यह कहते हैं, परन्तु हम तो यह कहते हैं कि, पूर्वोक्त सत्यव्रतके कथनमें (दीर्घतपसां) यह विशेषण देनेसे द्वादशीसे भिन्न एक दिनके सब व्रतोंके विषयमें यह निषेध है । तीनरात्र नवरात्र आदि दीर्घव्रतोंके विषयमें तो रजके मध्यमें भी पारणा कर ले, आशौचके बीचमें तो पूर्वोक्त कूर्मपुराणके वाक्यसे सब पारणा होती है । यह व्रतके पारणका निर्णय सब व्रतोंमें जानना अधिक कहनेसे क्या ? यहीं बस करते हैं । दशमीको देवीका विसर्जन करे, सोई दुर्गाभक्तितरंगिणीमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, इससे पीछे दशमीके दिन प्रातःकाल पूजन कर गीतबाजेके शब्दोंसे (विसर्जन) करे । हे भगवति ! रूप, यश, ऐश्वर्य, पुत्र, धन और सब कामनाओंको मुझे दीजिये, हे महिषघ्नि ! हे महामाये ! हे चामुण्डे ! हे मुण्डमालिनि ! हे देवि ! अवस्था, आरोग्य, ऐश्वर्य दीजिये आपको

आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ इति संप्रार्थ्य देवीं तु ततश्चोत्थापयेद्बुधः । उत्तिष्ठ देवि चण्डेशि शुभां पूजां प्रगृह्य च ॥ कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह । गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके ॥ व्रज स्रोतोजलं वृद्ध्यै स्थीयतां च जले त्विह ॥ १ ॥" इति जलं नीत्वा । "दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते । संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै ॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादिताम् । रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम् ॥ २ ॥" इति जले प्रवाहयेत् ॥ विजयादशमीनिर्णयः ॥ इयमेव विजयादशमी ॥ सा च द्वितीयदिने श्रवणयोगाभावे पूर्वा ग्राह्या । तदुक्तं हेमाद्रौ स्कान्दे-"दशम्यां तु नरैः सम्यक्पूजनीयाऽपराजिता । ऐशानीं दिशमाश्रित्य अपराह्णे प्रयत्नतः ॥ या पूर्णा नवमीयुक्ता तस्यां पूज्यापराजिता । क्षेमार्थं विजयार्थं च पूर्वोक्तविधिना नरैः ॥ नवमीशेषयुक्तायां दशम्यामपराजिता । ददाति विजयं देवी पूजिता जयवर्धिनी ॥ ३ ॥" तथा-"आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां पूजयेन्नरः । एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम् ॥" इति । यदा तु पूर्वदिने श्रवणयोगाभावः परदिने चाल्पापि तद्योगिनी, तदा परैव । तथा च हेमाद्रौ व्रतकाण्डे कश्यपः-"उदये दशमी किंचित्संपूर्णैकादशी यदि । श्रवणर्क्षं यदा काले सा तिथिर्विजयाभिधा ॥ श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः । उलंघयेयुः सीमानं तद्दिनर्क्षे ततो

प्रणाम है । इस प्रकार प्रार्थना करके बुद्धिमान् देवीको उठावे, हे देवि! चण्डेशि! श्रेष्ठ पूजाको ग्रहण करके उठिये और आठ शक्तियों सहित मेरा कल्याण कीजिये । हे देवि ! हे चण्डिके ! अपने श्रेष्ठ स्थानको गमन करो, वृद्धिके निमित्त स्रोतके जलमें गमन करो और इस जलमें जाओ, इस मन्त्रसे उठाकर और ले जाकर जलमें प्रवाह कर दे कि, हे दुर्गे ! हे देवि ! हे जगन्मातः ! वर्षदिनके पीछे रक्षाके निमित्त फिर आनेके निमित्त पूजा की हुई तुम अपने स्थानको जाओ । यही विजया दशमी है, वह दूसरे दिन श्रवणका योग न हो तो पहली ग्रहण करनी सोई हेमाद्रिमें स्कंदके वाक्यसे लिखा है कि, दशमीको मनुष्य भले प्रकार कल्याणकी प्राप्तिके निमित्त और पूर्वोक्तविधिसे अपराजिता देवीका पूजन करे, नवमीके शेषयुक्त दशमीमें पूजा करनेसे जयवर्द्धिनी अपराजिता जय देती है, इसी प्रकार आश्विनके शुक्लपक्षकी दशमीमें मनुष्यको अपराजिताका पूजन करना चाहिये और एकादशीमें न करे यदि प्रथमदिन श्रवणका योग न हो और अगले दिन श्रवणसे युक्त थोड़ी भी तिथि हो तो अगली ही लेनी । इसी प्रकार हेमाद्रिके व्रतकाण्डमें कश्यपने लिखा है कि, यदि उदयकालमें दशमी किंचित्मात्र भी हो और आगे सम्पूर्ण एकादशी हो तब यदि अपराह्न समयपर श्रवण नक्षत्र हो तो वह विजयादशमी कहाती है, जिससे श्रवण नक्षत्रमें दशमीके दिन रामचन्द्रने प्रस्थान किया है, इससे मनुष्य उस दिन श्रवण नक्षत्रमें ग्रामकी

नराः ॥ २ ॥ " इति । कालेऽपराह्णे । परदिनेऽपराह्णे श्रवणाभावे तु सर्वपक्षेषु पूर्वैव । मदनरत्नेऽप्येवम् । ज्योतिर्निबन्धे रत्नकोशे च नारदः–"ईषत्संध्यामतिक्रान्तः किंचिदुद्भिन्नतारकः । विजयो नाम कालोऽयं सर्वकार्यार्थसिद्धिदः ॥ ईषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत् । श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने ॥ सूर्योदये यदा राजन्दृश्यते दशमी तिथिः । आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः ॥ ३ ॥ " अत्रायं निर्गलितोऽर्थः । अपराह्णो मुख्यः कर्मकालः । तत्रैव पूजाद्युक्तेः । प्रदोषो गौणः । तत्र दिनद्वयेऽपराह्णव्यापित्वे पूर्वा प्रदोषव्याप्तेराधिक्यात् । दिनद्वये प्रदोषव्यापित्वे परा । अपराह्णव्याप्तेराधिक्यात् । इदं शुद्धतिथौ अन्यकाले श्रवणस्तु रोहिणीवदप्रयोजकः । दिनद्वयेऽपराह्णस्पर्शे तु पूर्वा । तत्रापि परदिनेऽपराह्णे श्रवणसत्त्वे परैवेति दिक् । तत्र विशेषः । अत्र विशेषो भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये–"शमीयुक्तं जगन्नाथं भक्तानामभयङ्करम् । अर्चयित्वा शमीवृक्षमर्चयेच्च ततः पुनः ॥" शमीमन्त्रस्तु हेमाद्रौ गोपथब्राह्मणे–"अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च । दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम् ॥" तथा भविष्ये–"शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका । धारिण्यर्जुनबाणानां

सीमाको लंघन करे, यदि परले दिन श्रवण नक्षत्र न हो तो सब पक्षोंमें प्रथम ही लेनी। इसी प्रकार मदनरत्नमें भी कहा है, ज्योतिर्निबन्धमें रत्नकोशमें नारदका वाक्य है कि, जिस समय थोड़ी सन्ध्या बीती हो और कुछ तारे उदय हुए हों उस समय जो विजय मुहूर्त कहते हैं वह सब कार्य और अर्थोंकी सिद्धिको देता है । आश्विनके शुक्लपक्षकी दशमी यदि श्रवण नक्षत्र युक्त हो तो भी राजाओंको पट्टाभिषेक (राजगद्दी) में पूर्वविद्धा न करनी चाहिये, आश्विनके शुक्लपक्षमें सूर्योदयमें यदि दशमी तिथि हो तो उसे पंडित विजयादशमी कहते हैं । यहां यह मुख्य अर्थ है कि, अपराह्णमें पूजा आदिके कथनसे कर्ममें अपराह्ण मुख्य समय है और प्रदोष गौण है, इसमें यदि दोनों दिन दशमी (अपराह्ण व्यापिनी न हो तो प्रदोषकी व्याप्ति सम्बन्धकी अधिकतासे ग्रहण करनी, और दोनों दिन प्रदोष व्यापिनी न हो तो, अपराह्णकी व्याप्तिकी आधिकतासे) अगली ही लेनी, यह शुद्ध तिथिके विषयमें जानना, अन्य कालमें तो श्रवण रोहिणीके समान अप्रयोजक है कि, यदि दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी न हो वा हो तो श्रवणसे युक्त प्रथमकी ही ग्रहण करनी और यदि इसमें भी परले दिन अपराह्णमें श्रवण हो तो थोड़ी भी परली ही लेनी, यह संक्षेपसे कहा ह ॥ यहाँ भार्गवार्चनदीपिकामें भविष्यपुराणमें यह विशेष लिखा है कि, भक्तोंको अभय करनेवाले शमीसे युक्त जगन्नाथको पूजन कर फिर शमीकी पूजा करे, शमीकी पूजाका मन्त्र हेमाद्रिमें गोपथब्राह्मणमें यह कहा है–मैं अमंगल (दुःख) और पापोंके दूर करनेवाली और दुःस्वप्नोंके नष्ट करनेवाली धन्य और शुभरूप शमीकी शरणको प्राप्त हुआ हूं और इस प्रकार भविष्यपुराणमें लिखा है कि,जो लाल कांटे तथा अर्जुनके बाणोंको धारण करनेवाली है और रामको प्रियवादिनी

रामस्य प्रियवादिनी ॥ १ ॥ करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मया। तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते ॥ २ ॥" इति । तथा–"गृहीत्वा साक्षतामार्द्रां शमीमूलगतां मृदम्। गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत्स्वगृहं प्रति । ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत्स्वजनैः सह॥" इति। बलिनीराजनम्। अत्रैव बलिनीराजनमुक्तं कृत्यरत्ने। तत्र मन्त्रः–"चतुरङ्गबलं मह्यं निररिष्टं व्रजत्विह । सर्वत्र विजयो मेऽस्तु त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि॥" इति। गौडनिबन्धे ज्योतिषे–"कृत्वा नीराजनं राजा बलवृद्ध्यै यथाक्रमम् । शोभनं खंजनं पश्येज्जलगोगोष्ठसंनिधौ ॥" अस्य फलानि शुभाशुभदेशाश्च तत्रैव ज्ञेयाः ॥ आश्विनपौर्णमासीनिर्णयः । आश्विनपौर्णमासी परा ग्राह्या । 'सावित्रीव्रतमन्तरेण भवतोऽमापौर्णमास्यौ परे ' इति दीपिकोक्तेः। अत्र विशेषस्तिथितत्त्वे लैङ्गे–"आश्विने पौर्णमास्यां तु चरेज्जागरणं निशि । कौमुदी सा समाख्याता कार्या लोकैर्विभूतये ॥ कौमुद्यां पूजयेल्लक्ष्मीमिन्द्रमैरावतस्थितम् । सुगंधिर्निशि सद्वेष अक्षैर्जागरणं चरेत् ॥ ३ ॥" तथा–"निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीतिभाषिणी। तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः ॥" इति । अत्रैवाश्वयुजीकर्मोक्तमाश्वलायनेन–'आश्वयुज्यामाश्वयुजीकर्म' इति। तच्छेषपर्वणि कार्यम् । विकृतित्वात्तत्र पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । दैव-

---

है ऐसी शमी पापोंको नष्ट करती है, समयपर जो मैं यात्रा करूंगा उसमें हे श्रीरामपूजिते ! तू निर्विघ्न अर्थात् विघ्नका अभाव करनेवाली हो, इसी प्रकार अक्षतों सहित गीली शमी त्याग करके मूलकी मृत्तिकाको लेकर गीत बाजेके शब्दों सहित घर लावे, फिर अपने मनुष्यों सहित भूषण वस्त्र आदिको पहरे । इसमें कृत्यरत्नम बलिनीराजन (सेनाकी आरती) लिखी ।है इस आरतीका यह मन्त्र है कि, चतुरंगव्यूह मेरी सेना अरिष्टके विना गमन करे, और हे सुरेश्वरि ! तुम्हारी कृपासे सर्वत्र मेरी विजय हो। गौडनिबन्धमें ज्योतिषका यह कथन ह कि, राजा क्रमसे सेनाकी वृद्धिके निमित्त नीराजन करके जल, गौ वा गोशालाके निकट खंजन (ममोले) पक्षीको देखे, इसका फल और शुभाशुभ देश तो वहींसे ही जान ले। आश्विनकी पूर्णमासी अगली ही लेनी, कारण कि, दीपिकामें लिखा है कि, सावित्रीव्रतके विना अमावास्या पौर्णमासी दूसरी होती है, यहां तिथितत्त्वमें लिंगपुराणके वाक्यसे यह विशेष लिखा है कि, आश्विनकी पौर्णमासीको रात्रिमें जागरण करना और उसे कौमुदी कहा है, मनुष्य अपने ऐश्वर्यके निमित्त उसे करे, कौमुदीके विषय लक्ष्मी और ऐरावतपर स्थित इन्द्रका पूजन करे और रात्रिके समय सुगन्ध लगाकर द्वेषबुद्धिसे (पासोंसे) जागरण करे अर्थात् उन्होंसे खेलता हुआ रात्रि व्यतीत करे, इसी प्रकार अर्द्धरात्रके समय वरके देनेवाली लक्ष्मी यह कहती है कि, कौन जागता है? और उसको मैं धन दूंगी जो कि, पासोंसे खेल करता है, इसीमें आश्वयुजी कर्म आश्वलायनने लिखा है कि, आश्विनकी पूर्णमासीको आश्वयुजी कर्म करे, वह विकृति (अंग)होनेसे शेष

कर्मत्वात् । आग्रयणं तु पर्वणि कार्यम्-'शरद्याग्रयणं नाम पर्वणि स्यात्तदुच्यते' इति शौनकोक्तेः । तत्रापि शेषपर्वणि कार्यमिति प्रागुक्तम् ॥ तच्च-"व्रीहिभिरिष्ट्वा व्रीहिभिरेव यजेत् यवेभ्यो यवैरिष्ट्वा यवैरेव यजेत व्रीहिभ्यः" इति श्रुत्या दर्शपूर्णमासयोरेककर्मत्वेनैकद्रव्यनियमाद्दर्शेष्ट्याः परं पौर्णमासेष्ट्याश्च प्राग्भवतीति हेमाद्र्यादयः। 'दर्शेष्ट्याः परमुक्तमाग्रयणकं प्राक्पौर्णमासाच्च तत्' इति दीपकोक्तेश्च । तच्चाग्रयणं त्रेधा-व्रीह्याग्रयणं यवाग्रयणं श्यामाकाग्रयणं चेति। एषां कालः श्रुतौ-"गृहमेधी व्रीहियवाभ्यां शरद्वसन्तयोर्यजेत श्यामाकैर्नीवारैर्वर्षास्वापत्कालेनान्येन पुराणैर्वा" इति। आपस्तम्बोऽपि-'वर्षासु श्यामाकैर्यजेत शरदि व्रीहिभिर्वसन्ते यवैर्यथर्तुवेणुयवैः' इति । तत्रापि श्यामाकाग्रयणमनित्यम् । इतरे तु अनाहिताग्नेर्नित्ये यवाग्रयणं च कार्यमिति स्मार्तवृत्तावुक्तत्वात् । सूत्रे व्रीहियवदेवतासंबद्धानामत्र मन्त्राणामाम्नानाच्च । आहिताग्नेस्तु यवाग्रयणस्याप्यनित्यत्वम् । 'अपि वा क्रिया यवेषु' इति सूत्रात् । यद्वा व्रीह्याग्रयणेन समानतन्त्रता । श्यामाकैस्तु प्रस्तरं कुर्यान्नाग्रयणम् । यदि वा तदपि समानतन्त्रमित्यादिनारायणवृत्तौ परिश्रमवतां सुलभमित्यलम् ॥

अर्थात् (तिथिके अन्त) पर्वमें करना और आग्रायण तो इस शौनकके वाक्यसे पर्वमें करे, शरदमें आग्रयण नाम यज्ञपर्वमें होता है उसे आग्रयण कथन करते हैं, वह भी पर्वके शेष (अन्न) में करना, यह शेष प्रथम कह आये हैं, उसको अमावस्या और पूर्णिमामें एक कर्म होनेसे उसमें एक ही द्रव्यका नियम लिखा है कि, व्रीहियोंसे यज्ञ करके यवके स्थानमें व्रीहियोंसे यज्ञ करे, यवसे यज्ञ करके व्रीहियोंके स्थानमें यवसे यज्ञ करे,अर्थात् प्रधान पर्वका कर्म जिस द्रव्यसे किया है उसी द्रव्यसे शेष पर्वको करना चाहिये यह हेमाद्रि आदि कहते हैं । दीपिकामें भी यह लिखा है कि, दर्शपूर्णिमाके यज्ञके उपरान्त शेष कर्म होता है जो आग्रयण (अगहनकी) पूर्णिमाका यज्ञ तीन प्रकारका लिखा है-व्रीहियोंका आग्रयण, यवका आग्रयण, श्यामा (समे) का आग्रयण । इनके करनेवाला काल श्रुतिमें यह लिखा है कि, गृहस्थीको शरद् और वसंतमें व्रीहि और यवोंसे वर्षामें समे और नीवारोंसे यज्ञ करना चाहिये, अथवा आपत्कालमें पुराने अन्नसे वा और किसी अन्नसे यज्ञ करे । आपस्तम्बका वचन है कि, वर्षामें समेसे, शरद्में व्रीहिसे, वसन्तमें यवोंसे यज्ञ करे वा सब ऋतुओंमें इन्द्रजौ वा बांसके निकले धान्यसे यज्ञ करे, इन तीनों आग्रयणोंमें भी समयका आग्रयण अनित्य (अनावश्यक) है और दोनों अग्निहोत्रीसे भिन्नको नित्य ही है अर्थात् इनको अवश्य करना चाहिये । कारण कि, स्मार्तवृत्तिमें यह लिखा है कि, यवाग्रयण तो करे और सूत्रमें भी व्रीहि और यवके देवताओंसे मिले ही मंत्र कहे हैं, अग्निहोत्रीको तो यवाग्रयण भी अनित्य है । कारण कि, यह सूत्र है कि, वा यवसे भी कर्म कर ले, अथवा व्रीह्याग्रयणके समान यवाग्रयण है(समे)से तो प्रस्तार करना अथवा समा भी व्रीहियोंके समान है, यह परिश्रमवालोंको नारायणवृत्तिग्रन्थमें मिल सकता ।। (इति अलम्)॥

इदं च पर्वाभावे शुक्लपक्षे देवनक्षत्रके कृत्तिकादिविशाखान्ते कार्यमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ॥ बौधायनीये केशवस्वामिनाप्येवमुक्तम् ॥ परिशिष्टे–"श्यामाकैर्व्रीहिभिश्चैव यवैश्चान्योन्यकालतः । प्रागयष्टुं युज्यतेऽवश्यं न ह्यनाग्रयणात्पथः ॥" त्रिकाण्डमण्डनोऽप्येवम् । यदा त्वेतदाश्विनपौर्णमास्यां क्रियते तदैककालत्वादाश्वयुजीकर्मणोऽस्य च समानतन्त्रता भवति तदेतद्वृत्तिकृता–'एकबर्हिरिध्माज्या' इति सूत्रे स्पष्टमुक्तम् ॥ अस्याकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृतिचन्द्रिकायां कात्यायनेन–"नित्ये यज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्वयस्य च । अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ॥ भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥" कारिकापि–"अकृताग्रयणोऽश्नीयान्नवान्नं यदि वै नरः । वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा ॥" इति ॥ ऋग्विधाने तु–"समिन्द्ररायामन्त्रं च वर्षेवर्षे जपेच्छतम् । आग्रयणं यदा न्यूनं तदा सम्पूर्णमिति तत् ॥" इत्युक्तम् ॥ एतच्चापादि मलमासे कार्यमन्यथा नेति प्रागुक्तम् ॥ अन्योऽप्याहिताग्न्यादिविशेषः शौनकादेर्ज्ञेयः । इत्यलं बहुना ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ आश्विनमासः समाप्तः ॥ अथ कार्त्तिकमासः । तुलासंक्रमे प्रागपरा दश घटिकाः पुण्याः । रात्रौ तु प्रागुक्तम् ॥ अथ कार्तिकस्नान-

यह कर्म पर्वमें न होसके तो शुक्लपक्षमें कृत्तिकासे विशाखा नक्षत्रपर्यन्त देवनक्षत्रोंमें करना चाहिये, यह स्मृत्यर्थसारमें लिखा है । बौधायनीयग्रन्थमें भी केशवस्वामीका भी इसी प्रकार कथन है। परिशिष्टमें भी कहा है कि, प्रथम परस्पर अन्नोंके समयमें समा व्रीहियवसे अवश्य यज्ञ करे, इसमें आग्रयणका न होना नहीं होता, त्रिकांडमंडनमें भी इसी प्रकार लिखा है, जब आग्रहण आश्विनकी पूर्णिमाको ही किया जाय तब एक समयमें होनेसे आश्वयुजी और इसकी समानतंत्रता प्राप्त होती है, अर्थात् दोनों एक दिन होते हैं, इसमें यह वृत्तिकारने (एकबर्हिरिध्माज्या)इस सूत्रमें स्पष्ट लिखे हैं, इसके न करनेमें प्रायश्चित्त स्मृतिचन्द्रिकामें कात्यायनने लिखा है कि, नित्य यज्ञ और दोनों वैश्वदेवके बीत जाने और यजन न करनेसे नव यज्ञके विना यजन किये नये अन्नप्राशनमें पतित अन्नके भोजनमें वैश्वानर (अग्नि)का चरु होता है । कारिकामें भी कहा है कि, यदि मनुष्य आग्रयणके विना किये नये अन्नको खाय तो अग्निके निमित्त चरु वा पूर्णाहुति करे, ऋग्विधानमें तो यह कहा है कि, आग्रयण न होसके तो वर्ष २ में समिंद्रराया इस मन्त्रको सौ वार जपनेसे उसकी पूर्ति हो जाती है, यह जप भी तब है जब आग्रयण मलमासमें करना हो, यह प्रथम कह आये हैं और भी अग्निहोत्री आदिका विशेष शौनक आदि ग्रन्थोंसे जानना चाहिये, यही बहुत है ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायामाश्विनमासः ॥ अब कार्तिकका निर्णय लिखते हैं–तुलाकी संक्रांतिमें पहिली और पिछली दश दश घडीका पवित्र काल है रात्रिका पुण्यकाल प्रथम कह आये हैं ॥ अथ कार्तिकस्नान–उसमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें विष्णुस्मृति और

१ 'समिन्द्रराया समिषारभेमहि संवाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः सन्देव्याप्रमत्यावीरशुष्मयागो अग्रश्वावत्यारभेमहि' । ऋ० १ । ४ । १५॥

निर्णयः । तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुस्मृतिपाद्मयोः–"तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥" इति सौरमास उक्तः । प्राच्याश्चैतदेवाद्रियन्ते । दाक्षिणात्यास्तु–"आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् । कार्तिकस्य व्रतानीह तस्यां वै प्रारभेत्सुधीः ॥" इति पाद्मोक्तेः । भार्गवार्चने च–"प्रारभ्यैकादशीं शुक्लामाश्विनस्य तु मानवः । प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत यावत्कार्तिकभास्करः ॥" इति विष्णुरहस्योक्तेः ॥ हेमाद्रावादित्यपुराणे–'पूर्ण आश्वयुजे मासि पौर्णमास्यां समाहितः ।' इत्युक्त्वा 'मासं समग्रं परया च भक्त्या समाप्यते कार्तिकपौर्णमास्याम् ।' इत्यन्तेऽभिधानाच्चाश्विनशुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यां वारभ्य कार्तिकशुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यां वा समापयेदित्याहुः । मदनपारिजाते विष्णुः–"कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः । जपन्हविष्यभुक्छान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥" तत्र देशविशेषः । अत्र कार्तिकं प्रक्रम्य देशविशेषः पाद्मे–"कुरुक्षेत्रे कोटिगुणो गंगायामपि तत्समः । ततोऽधिकः पुष्करे स्याद्द्वारवत्यां च भार्गव ॥ पुण्याः पुर्यश्च सप्तैवं मुनयो मथुराधिकः । दुर्लभः कार्तिको विप्रा मथुरायां नृणामिह ॥ यत्रार्चितः स्वकं रूपं भक्तेभ्यः संप्रयच्छति ॥ ३ ॥" इति ॥ इदं च स्नानं काशीस्थपञ्चनदेऽप्यतिप्रशस्तम् । "शतं समास्तपस्तप्त्वा कृते यत्प्रा-

---

पद्मपुराणका कथन है कि, तुला, मकर, मेषकी संक्रांतिमें प्रभात ही स्नान, हविष्यभोजन ब्रह्मचर्य करे तो महापातकोंका नाश होता है, इसमें सूर्यमास भी कहा है, प्राच्य भी सौरमासका ही सत्कार करते हैं। दक्षिणियोंका तो यह कथन है कि, इस पद्मपुराणके वाक्यसे आश्विन शुक्ल एकादशीमें बुद्धिमान् मनुष्योंको कार्तिकके व्रतोंका प्रारम्भ करना उचित है और भार्गवार्चनमें विष्णुरहस्यके इस वाक्यसे कि, मनुष्य आश्विनशुक्ल एकादशीको प्रारम्भ करके कृत्तिकाके सूर्यतक प्रातःस्नान करे, हेमाद्रिमें आदित्यपुराणके इस कथनसे कि, आश्विनमासके पूर्ण होनेपर पूर्णिमाको सावधानीसे प्रारम्भ करे, यह कथन कर अन्तमें यह कहनेसे कि, पूरे महीनेभर परमभक्तिसे स्नान कर कार्तिककी पूर्णिमाको पूर्ण करे, इन सब वाक्योंसे आश्विनशुक्ल एकादशी वा पूर्णिमाको आरम्भ करके कार्तिकशुक्लद्वादशी वा पूर्णिमाको पूर्ण करे, मदनपारिजातमें विष्णुने कहा है कि, सम्पूर्ण कार्तिकमें नित्य स्नान, हविष्यभोजन, जप करना चाहिये और जितेन्द्रिय और शान्त रहे तो उसके सब पाप दूर हो जाते हैं। इसमें देशविशेषमें पद्मपुराणमें कार्तिकीके प्रकरणमें यह लिखा है कि, हे भार्गव! कुरुक्षेत्र और गंगामें करोड गुना, पुष्कर और द्वारकामें उससे अधिक पुण्य नहीं मिलता है, ये सात पुरी पवित्र हैं हे मुनियो! इनमें मथुरा विशेष है, मनुष्योंको इस लोकमें मथुरामें कार्तिकस्नान दुर्लभ है जहां पूजित हुए कृष्ण भक्तोंको अपना रूप देते हैं। यह स्नान काशीकी पंचगंगामें भी अति उत्तम है, कारण कि, काशीखण्डमें यह लिखा है कि, जो फल सौ वर्षतक तप करके सतयुगमें मिलता है वह कार्तिकमें पंचगंगाके एक बार स्नानसे प्राप्त

प्यते फलम्। तत्कार्त्तिके पञ्चनदे सकृत्स्नानेन लभ्यते ॥ कार्त्तिके बिंदुतीर्थे यो ब्रह्मचर्यपरायणः। स्नास्यत्यनुदिते भानौ भानुजातस्य भीः कुतः ॥ २ ॥" इत्यादि काशीखण्डोक्तेः। भानुजो यमः। इदं च प्रातःस्नानं संध्यां च कृत्वा कार्यम्। तेन विनेतरकर्मानधिकारादिति वर्धमानः। यद्यपि प्रातःसंध्यायाः सूर्योदये समाप्तिः तथापि वचनबलादनुदितहोमवद्भविष्यति। तत्र स्नानादिमन्त्राः। स्नानमन्त्रश्च तत्रैव–"कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन। प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य मौनी स्नायाद्व्रती नरः ॥" इति। अर्घ्यमन्त्रोऽपि तत्रैव-"व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ नित्यनैमित्तिके कृष्ण कार्त्तिके पापनाशने। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ इमौ मन्त्रौ समुच्चार्य योऽर्घ्यं मह्यं प्रयच्छति। सुवर्णरत्नपुष्पांबुपूर्णशंखेन पुण्यवान् ॥ सुवर्णपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः ॥ ३ ॥" इति। एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं स्नायात्–"वाराणस्यां पंचनदे त्र्यहं स्नातास्तु कार्त्तिके। अमी ते पुण्यवपुषः पुण्यभाजोऽतिनिर्मलाः ॥" इति काशीखण्डोक्तेः। अथ मालाधारणम्। तत्र स्कान्दे द्वारकामाहात्म्ये–"निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम्। वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥ न जह्यात्तुलसीमालां धात्रीमालां विशेषतः। महापातकसंहर्त्रीं धर्मकामार्थदायिनीम् ॥ २ ॥"

होता है जो ब्रह्मचारी होकर कार्त्तिकमें बिन्दुतीर्थमें सूर्योदयके समय प्रतिदिन स्नान करते हैं उनको यमका भय न होगा। यह प्रातःस्नान संध्या करके करना चाहिये, सन्ध्याके विना और कर्मका अधिकार नहीं यह वर्धमानका कथन है। यद्यपि प्रातःसंध्याकी सूर्योदयमें पूर्ति होती है तो भी सूर्योदयसे प्रथम हवनके समान उदयसे प्रथम ही संध्या हो जायगी। स्नानमंत्र भी वहां ही कहा है कि, हे जनार्दन! मैं प्रातःकाल स्नान करता हूं, हे दामोदर! इससे आपके संग मेरी सायुज्य मुक्ति हो। इस मंत्रको पढ़ और मौन होकर व्रती मनुष्यको स्नान करना चाहिये। अर्घ्यका मंत्र भी वहां ही है कि,हे दैत्येंद्रोंके वधकर्ता! हे कृष्ण! कार्त्तिकमें विधिसे स्नान करनेवाले मेरे दिये अर्घ्यको स्वीकार करो। हे कृष्ण! नित्य और नैमित्तिक और पापनाशक कार्त्तिकमें मेरे दिये अर्घ्यको राधासहित ग्रहण करो, इन दो मन्त्रोंको पढकरके जो पुण्यात्मा सुवर्ण रत्न, पुष्प, जल भरकर शंखसे अर्घ्य देता है उसने सुवर्णभरी पृथ्वी दान की इसमें संदेह नहीं। इस प्रकार कार्त्तिकके पूरे स्नानमें शक्ति न हो तो तीन दिन स्नान करे। कारण कि, काशीखंडमें यह लिखा है कि, काशीकी पंचगंगाका स्नान जो तीन दिन भी करते हैं वे पुण्यके भागी होकर अत्यन्त निर्मल होते हैं। अब मालाका धारण करना कहते हैं–इसमें स्कंदपुराणके द्वारकामाहात्म्यमें कहा है कि, तुलसीके काष्ठकी माला केशवको निवेदन करके जो मनुष्य भक्तिसे धारण करते हैं, उनका पातक नहीं रहता है। तुलसीकी माला, आंवलेकीमाला महापातकोंका नाश करने और धर्म अर्थ कामकी देनेवाली हैं, इस कारण

विष्णुधर्मे-"स्पृशेत्तु यानि लोमानि धात्रीमालां कलौ नृणाम् । तावद्वर्षसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् ॥ मालायुग्मं तु यो नित्यं धात्रीतुलसिसम्भवम् । वहते कण्ठदेशे तु कल्पकोटि दिवं वसेत् ॥ तुलसीकाष्ठसम्भूते माले कृष्णजनप्रिये । बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां कृष्णवल्लभम् ॥ एवं सम्प्रार्थ्य विधिवन्मालां कृष्णगलेऽर्पिताम् । धारयेत्कार्त्तिके यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥ ४ ॥" इति । अत्र मूलं चिन्त्यम् । तथा काशीखण्डे-"कार्त्तिके मासि मे यात्रा यैः कृता भक्तितत्परैः । बिन्दुतीर्थकृतस्नानैस्तेषां मुक्तिर्न दूरतः ॥" भार्गवार्चनदीपिकायां सिंहपुराणे-"अगस्तिकुसुमैर्देवं योऽर्चयेच्च जनार्दनम् । दर्शनात्तस्य देवर्षे नरकं नाश्नुते नरः ॥ विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम् । कार्त्तिके योऽर्चयेद्भक्त्या वाजपेयफलं लभेत् ॥ २ ॥" स्कान्दे कार्त्तिकमाहात्म्ये-"मालतीमालया विष्णुः केतक्या चैव पूजितः । समासहस्रं सुप्रीतो भवेत्तु मधुसूदनः ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे-"कार्त्तिके नार्चितो यैस्तु कमलैः कमलेक्षणः । जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे ॥" तथा-कार्त्तिके केशवे पूजा येषां नाम्ना सुतैः कृताः । ते निर्भर्त्स्य रवेः पुत्रं वसन्ति त्रिदिवे सदा ॥ तुलसीदललक्षेण कार्त्तिके योऽर्चयेद्धरिम् । पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम् ॥" तथा स्कान्दे कार्त्तिक-

---

तुलसीकी मालाको मनुष्यको न त्यागना चाहिये। विष्णुधर्ममें लिखा है कि, कलिमें आंवलेकी माला मनुष्योंके जितने रोमोंको स्पर्श करती है उतने ही वर्षतक उसका वैकुण्ठमें वास होता है, तुलसी और आंवलेकी दोनों मालाओंको जो कण्ठमें धारण करता है वह कोटियों कल्पतक स्वर्गमें रहता है । हे तुलसीकाष्ठसे उत्पन्न हुई कृष्णभक्तकी प्रियमाला ! तुझे कण्ठमें धारण करता हूं, मुझे कृष्णका प्यारा करो । इस प्रकार विधिसे प्रार्थना करके कृष्णके गलेमें पहरायी हुई मालाको जो धारण करता है वह विष्णुके पदको प्राप्त होता है, इसमें प्रमाण नहीं है । इसी प्रकार काशीखण्डमें लिखा है कि, कार्त्तिकमासमें बिन्दुतीर्थके व्रत स्नानसे जिन भक्तिमान् मनुष्योंने मेरी अर्चा की है उनको मुक्ति दूर नहीं है, प्राप्त ही है । भार्गवार्चनदीपिकामें नृसिंहपुराणका वाक्य लिखा है कि, अगस्त्यके फूलोंसे जो भगवान्को पूजता है उसके दर्शनसे मनुष्यको नरक नहीं मिलता। सम्पूर्ण फूलोंको छोड़कर जो मुनिपुष्पों (अगस्त्य) से कार्त्तिक मासमें भक्तिसे कृष्णकी पूजा करता है उसको वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है । स्कंदपुराणके कार्त्तिकमाहात्म्यमें लिखा है कि, मालतीकी मालासे वा केतकीके फूलोंसे पूजे हुए मधुसूदन सहस्रवर्षतक प्रसन्न रहते हैं । पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका कथन है कि, कार्त्तिकमासमें जिन्होंने कमलोंसे कमलेक्षण विष्णुकी पूजा नहीं की उनके घर करोड़ जन्मोंतक लक्ष्मी नहीं आती। कार्त्तिकमासमें जिनके नामसे पुत्रोंने भगवानकी पूजा की है वे यमराजका तिरस्कार करके सदा वैकुण्ठमें निवास करते हैं । जो मनुष्य लक्ष तुलसीदलसे विष्णुकी पूजा करे हे मुनिश्रेष्ठ ! वह पत्तेपत्तेसे मोतियोंके चढानेके फलको प्राप्त होता

महात्म्ये-" धात्रीच्छाये तु यः कुर्यात्पिण्डदानं महामुने । मुक्तिं प्रयान्ति पितरः प्रसादान्माधवस्य तु ॥ धात्रीफलविलिप्तांगो धात्रीफलविभूषितः । धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ॥ धात्रीच्छायां समाश्रित्य योऽर्चयेच्चक्रधारिणम् । पुष्पेपुष्पेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३ ॥" तथा स्कान्दे-"कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र धात्रीवृक्षोपशोभिते । वने दामोदरं विष्णुं चित्रान्नैस्तोषयेद्विभुम् ॥ मूलेन पायसेनाथ होमं कुर्याद्विचक्षणः । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ॥ २ ॥" इति । तत्र द्विदलादिवर्जनम् । तथा कार्त्तिके द्विदलव्रतं प्रागुक्तम्-'कार्त्तिके द्विदलं त्यजेत्' इति । पाद्मेऽपि कार्त्तिकमाहात्म्ये-राजिकामादकं चैव नैवाद्यात्कार्त्तिकव्रती । द्विदलं तिलतैलं च तथान्यन्मतिदूषितम् ॥" स्कान्देऽपि-"कार्तिके वर्जयेत्तद्वद्द्विदलं बहुबीजकम् । माषमुद्गमसूराश्च चणकाश्च कुलित्थकाः ॥ निष्पावा राजमाषाश्च आढक्यो द्विदलं स्मृतम् । नूतनान्यपि जीर्णानि सर्वाण्येतानि वर्जयेत्" ॥ २ ॥ अत्र केचिदुत्पत्तिसमये दलद्वयं यस्य भवति तद्भूतपूर्वगत्या द्विदलमित्युच्यत इत्याहुः । उदाहरन्ति च-"बीजमेव समुद्भूतं द्विदलं चांकुरं विना । दृश्यते यत्र सस्येषु द्विदलं तन्निगद्यते ॥" इति । अन्ये तु लक्षणायां मानाभावाद्वचनस्य निर्मूलत्वाद्द्विदलात्मकं यस्य

है । स्कन्दपुराणके कार्तिकमहात्म्यमें कहाहै कि, हे महामुने ! जो आँवलेकी छायामें पिण्डदान करता है उसके पितरोंको भगवान्के प्रसादसे मुक्ति मिलती है, वह मनुष्य नारायणरूप होता है जिसने आँवलेके फलको लपेटा, पहना वा भोजन किया है, आँवलेकी छायामें जो भगवान्की पूजा करता है वह मनुष्य प्रतिफूलसे अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है । हे विप्रेन्द्र ! कार्तिकमासमें आँवलेके वृक्षोंसे शोभित वनमें जो दामोदर विष्णुभगवान्का पूजन और विचित्र अन्नोंसे भगवान्को प्रसन्न करते हैं और मूलमन्त्रसे खीरका हवन करते हैं वे भी उक्त फलको प्राप्त होते हैं । शक्तिसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे और बन्धुओंसहित स्वयं भोजन करे । इसी प्रकार कार्तिकमें द्विदलको वर्ज दे इस वाक्यसे द्विदलका व्रत पहले लिखा है, पद्मपुराणके कार्तिक माहात्म्यमें भी लिखा है कि, राई, मादकपदार्थ, दाल, तिल, तेल और जो मतिदूषक पदार्थ हों उनको कार्तिकका व्रती न खावे, स्कन्दपुराणमें भी कहा है कि, कार्तिकमें इसी प्रकार द्विदल तथा बहुत बीजवाला (बैंगन आदि) और उर्द, मूंग, मसूर, चना, कुलथी, निष्पाव, राजमाष (अरहर) यह भी द्विदल लिखे हैं, इससे ये नये हों वा पुराने हों इन सबको व्रतीको त्यागना चाहिये, यहां कोई यह कहते हैं कि, उत्पत्तिके समय जिस अन्नके दो दल हों उसे ही भूतपूर्वगति (उत्पत्तिसे पूर्व जिसके दो दल न हों) उसे द्विदल कहते हैं, कोई यह कहते हैं कि, अंकुरके विना उत्पन्न हुआ बीज ही जिन (खेतियोंमें) का द्विदल दीखे उन्हें द्विदल कहते हैं और किन्हींका यह कथन है, कि, इस वाक्यको निर्मूल और लक्षणमें कोई प्रमाण न होनेसे स्वरूपसे ही जिसमें दो दल हों उसे ही त्यागना चाहिये । ऐसेही नारदपुराणमें कहा है कि,

स्वरूपं तदेव वर्जयेदित्याहुः । तथा नारदीये–"कार्त्तिके वर्जयेत्तैलं कार्त्तिके वर्जयेन्मन्धु । कार्तिके वर्जयेत्कांस्यं कार्त्तिके शुक्तसन्धितम् " ॥ कांस्यं तत्पात्रभोजनम् । शुक्तं पर्युषितम् । सन्धितं लवणशाकः । दीपदानम् । तत्रैव–'कार्त्तिके विष्णुमूर्त्यग्रे दीपदानाद्दिवं व्रजेत् ॥" तथा–'कार्त्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मविमोचनी ।' तथा–" कार्त्तिके कृच्छ्रसेवी यः प्राजापत्यपरोऽथवा । एकान्तरोपवासी वा त्रिरात्रोपोषितोऽपि वा ॥ षड्डा द्वादश पक्षे वा मासं मा वरवर्णिनि । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ उपवासेन भैक्ष्येण व्रजेत परमं पदम् ॥ २ ॥" अन्येऽपि नियमाः प्रागुक्ताः । तत्र ग्राह्यधान्यनिर्णयः । ग्राह्यमुक्तं स्कान्दे–"व्रीहयो यवगोधूमाः प्रियंगुतिलशालयः । एते हि सात्त्विकाः प्रोक्ताः स्वर्गमोक्षफलप्रदाः ॥" काशीखण्डे–" ऊर्जे यवान्नमश्नीयाद्देवान्नमथवा पुनः । वृंताकं सूरणं चैव शुकशिंबीश्च वर्जयेत्" ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे–'नोर्जो वन्ध्यो विधातव्यो व्रतिना केनाचित्कचित्' ॥ तथा नारदीये–"अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम् । तिर्यग्योनिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥" अन्यान्यपि ताम्बूलतैलकेशकर्तनादिवर्जनसंकल्परूपाणि प्रागुक्तानि । आकाशदीपः । तथा कार्त्तिके आकाशदीप उक्तो निर्णयामृते पुष्करपुराणे–"तुलायां तिलतैलेन सायंकाले समागते । आकाश-

---

कार्तिकमासमें तैल, शहद, कांसेके बर्तनमें भोजन, पर्य्युषित (बासी) अन्न, लवणमिश्रित शाकको व्रती त्याग दे । वहां ही यह भी कहा है कि, कार्तिकमासमें विष्णुकी मूर्तिके आगे दीपक बालनेसे स्वर्ग मिलता है । इसी प्रकार कार्तिकमासमें कृच्छ्रव्रत वा प्राजापत्यव्रतमें तत्पर होकर वा एकान्तरोपवासी (मध्यमें एक दिन न खाना) वा तीन रात्रि जिसने व्रत किया हो वह और जो छः वा बारह दिन वा एक वा पक्ष महीनेतक एक वार भोजन नक्तव्रत करे और जो विना मांगे मिले वा भिक्षाके अन्नका खानेवाला हो और जो व्रत करे उसको परमगति प्राप्त होती है । और भी नियम पहले कह आये हैं । स्कन्दपुराणमें ग्रहण करने योग्य धान्य ये कहे हैं कि, व्रीहि, गोधूम (गेहूं), प्रियंगु (कांगनी), तिल, साठीके चावल ये स्वर्ग मोक्षके देनेवाले सात्त्विक अन्न हैं, काशीखण्डमें लिखा है कि, कार्तिकमें यवान्न और देवान्न (व्रीहि आदि) का भोजन करे और बैंगन और जिमीकन्दको जपी न खाय । पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका कथन है कि, किसी व्रतीको कार्तिकको कदाचित् भी न छोड़ना चाहिये, इसी प्रकार नारदपुराणमें लिखा है, कि, जो दामोदरके प्रीतम कार्तिकमासमें व्रत नहीं करता उसको तिर्य्यग्योनिकी प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं करना और भी तेल, ताम्बूल, क्षौर आदिके वर्जनका संकल्प करना, पूर्व लिख आये हैं । कार्तिकमें आकाशदीप निर्णयामृतग्रन्थमें पुष्करपुराणके वाक्यसे वर्णन किया है, तुलाकी संक्रांतिमें तिलके तेलसे सायंकालके

दीपं यो दद्यान्मासमेकं हरिं प्रति ॥ महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसम्पदम् ॥" इति । तद्विधिश्च हेमाद्रावादित्यपुराणे—"दिवाकरेऽस्ताचलमौलिभूते गृहाददूरे पुरुषप्रमाणम् । यूपाकृतिं यज्ञियवृक्षदारुमारोप्य भूमावथ तस्य मूर्ध्नि । यवांगुलच्छिद्रयुतास्तु मध्ये द्विहस्तदीर्घा अथ पट्टिकासु । कृत्वा चतस्रोऽष्टदलाकृतीस्तु याभिर्भवेदष्टदिशानुसारी ॥ तत्कर्णिकायां तु महाप्रकाशो दीपः प्रदेयो दलगास्तथाष्टौ । निवेद्य धर्माय हराय भूम्यै दामोदरायाप्यथ धर्मराज्ञे ॥ प्रजापतिभ्यस्त्वथ सत्पितृभ्यः प्रेतेभ्य एवाथ तमःस्थितेभ्यः ॥ ३ ॥" इति । अपरार्के त्वन्यो मन्त्र उक्तः । यथा—"दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह । प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनंताय वेधसे॥" इति । कार्तिककृष्णकरकचतुर्थी । कार्तिककृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी । सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या।दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा तत्रैव पूजाद्याम्नानात् । गोवत्सद्वादशी ॥ कार्तिककृष्णद्वादशी गोवत्ससंज्ञा । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा युग्मवाक्यात् । 'वत्सपूजा वटश्चैव कर्तव्या प्रथमेऽहनि ' इति निर्णयामृतेऽभिधानाच्च । अत्र विशेषो मदनरत्ने भविष्ये—"सवत्सां तुल्यवर्णां च शीलिनीं गां पयस्विनीम् । चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत् ॥ अर्घ्यं ताम्रमये पात्रे कृत्वा पुष्पाक्षतैस्तिलैः । पादमूले तु दद्याद्वै मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥

समय एक महीनेभर नारायणके निमित्त जो आकाशदीप देता है, वह श्रीमहालक्ष्मीरूप सौभाग्यसंपदाको प्राप्त होता है, उसकी विधि हेमाद्रिमें आदित्यपुराणके वाक्यसे कही है कि, जब सूर्य अस्ताचलको प्राप्त होते हों तब घरसे थोडी दूर पुरुषके प्रमाणसे यज्ञके काष्ठका यूप निर्माण कर गाड़े, उस यूपकी भूमि और मस्तकपर जौ भर अंगुलके छिद्रके बीचमें और दो हाथ लम्बी पट्टिकाओंमें चार दलकी आठ आकृति निर्माण करे, जिनसे आठ दिशा प्रतीत हों, उसकी कर्णिका (बीच) में बड़ा दीपक रक्खे, इसी प्रकार उसके आठ दलोंमें आठ दीपक धर्म, हर, भूमि, दामोदर, धर्मराज, प्रजापति, पितर, प्रेतको क्रमसे दे । अपरार्कमें तो और मन्त्र यह लिखे हैं कि, लक्ष्मीसहित दामोदरके निमित्त तुलाराशिमें आकाशदीपको देता हूं हे अनन्त ! जगत्के रचनेवाले तुम्हें नमस्कार है । कार्तिकवदी चतुर्थी करकचतुर्थी होती है, वह चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी चाहिये, दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो पहली ग्रहण करनी । कार्तिक वदी द्वादशीको गोवत्सनाम उत्पन्न है, वह तिथि प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी । दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो प्रथमकी लेनी; कारण कि, दो प्रकारके वचन मिलते हैं और निर्णयामृतमें लिखा है कि, वत्सपूजा वट ये दोनों प्रथम दिन करनी।इसमें विशेष मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, सवत्सा, एक वर्णकी, सुशील दूध देती गौको चन्दन आदिसे चर्चित कर पुष्पमालासे पूजे, हे पाण्डव ! तांबेके पात्रमें फूल अक्षत तिलोंसहित अर्घ्य बनाकर गौओंके खुरोंमें इस मन्त्रसे दे कि, हे

क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते। सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमो नमः॥ ततो माषादिसंसिद्धान्वटकान्विनिवेदयेत्। सुरभि त्वं जगन्मातर्देवि विष्णुपदे स्थिता॥ सर्वदेवमये ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस। ततः सर्वमये देवि सर्वदेवैरलंकृते॥ मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि॥ ६॥" इति प्रार्थयेत्॥ तथा-"तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं युधिष्ठिर। गोक्षीरं गोघृतं चैव दधि तक्रं च वर्जयेत्"॥ ज्योतिर्निबन्धे नारदः-"आश्विने कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु। तिथिषूक्तः सर्वरात्रे नृणां नीराजनो विधिः॥ नीराजयेयुर्देवांस्तु विप्रान्गाश्च तुरंगमान्। ज्येष्ठाञ्छ्रेष्ठाञ्जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः" इति। यमदीपः। निर्णयामृते स्कान्दे-'कार्तिकस्य सिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे। यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति॥" मन्त्रस्तु-"मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन श्यामया सह। त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतां मम॥" इति। अभ्यंगस्नानम्॥ कार्तिककृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते चन्द्रोदयेऽभ्यंगं कुर्यात्। तदुक्तं हेमाद्रौ निर्णयामृते च भविष्योत्तरे-कार्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यामिनोदये। अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः॥ इनश्चन्द्रः। मदनरत्ने-'विधूदये' इति पाठः 'दिनोदये' इति पाठात् सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्तं स्नानं वदतां गौडानां तदनुसारिणां चाज्ञतैव। "पूर्वविद्धचतुर्दश्यां

क्षीरसागरसे प्रगट हुई! हे देवता और राक्षसोंसे नमस्कृत! हे सर्वदेवरूप! हे मातः! इस अर्घ्यको ग्रहण करो, तुम्हें नमस्कार है। फिर उडद आदिके बडे बनाकर इस मन्त्रसे निवेदन करे कि, हे सुरभी! हे जगन्मातः! हे देवि! तुम विष्णुके चरणमें स्थित हो, हे सर्वदेवरूपे! मेरे दिये इस ग्रासका भोजन करो, फिर इस मन्त्रसे स्तुति करे कि, हे सर्वदेवरूपे! हे सर्वदेवोंसे शोभित! हे मातः! हे नन्दिनी! मेरे मनोरथोंको सफल करो। इसी प्रकार कहा है कि,हे युधिष्ठिर! उस दिन तेलका पका खाली टोकनीका पका गौ, दूध, दही, घृत,मट्ठा न खाय। ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहा है कि, आश्विनके कृष्णपक्षमें द्वादशी आदि पांच तिथियोंमें पूर्वरात्रको नीराजन (आरती) करना चाहिये। देवता, ब्राह्मण, गौ, घोड़े, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, छोटे, माताको आदि लेकर स्त्रीजनोंकी आरती करे। निर्णयामृतमें स्कन्द-पुराणका वाक्य है कि, कार्तिक वदी १३ को घरसे बाहर प्रदोषके समय यमदीपक दे तो अकालमृत्यु नष्ट होती है, उसका मन्त्र यह है कि-मृत्यु, पाश, दण्ड, काल, श्यामासहित यमराज त्रयोदशीके दीपदानसे मेरे ऊपर प्रसन्न हों। कार्तिक वदी १४ को सबेरे ही चन्द्रोदयके कालमें उबटन करे, सोई हेमाद्रि और निर्णयामृतमें भविष्योत्तरपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, कार्तिकके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको इन (चन्द्र) के उदयमें नरकसे डरते हुए मनुष्यको अवश्यस्नान करना चाहिये, मदनरत्नमें दिनोदयके स्थानमें 'विधूदय' पाठ कहा है और जो 'दिनोदये' इस पाठसे सूर्योदयके उपरान्त ३ मुहूर्तमें स्नान कहते हैं यह गौडोंकी और

कार्त्तिकस्य सितेतरे। पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः॥" इति। स्मृतिदर्पणेऽपि- "चतुर्दशी चाश्वयुजश्च कृष्णा स्वात्यर्थयुक्ता च भवेत्प्रभाते। स्नानं समभ्यज्य नरैस्तु कार्यं सुगन्धतैलेन विभूतिकामैः॥" इति। पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे- "आश्वयुक्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां विधूदये। तिलतैलेन कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुणा॥" इति। 'कर्तव्यं मङ्गलस्नानं नरैर्निरयभीरुभिः।' इति कालादर्शे पाठः। उभयत्राश्वयुगित्यमावास्यान्तमासमभिप्रेत्योक्तम्। तथा-'तैले लक्ष्मीर्जले गंगा दीपावल्याश्चतुर्दशीम्।' प्राप्येति शेषः। 'प्रातः स्नानं तु यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यति।' इति 'दिनद्वयेऽपि चन्द्रोदये चतुर्दशीसत्त्वे तदभावेऽप्यरुणोदये सम्पूर्णे खण्डे वा दिनद्वये चतुर्दशीसमत्वे च पूर्वदिनेऽभ्यंगं कुर्यात्। 'पूर्वविद्धचतुर्दश्याम्' इति वचनात्। पूर्वदिने परदिन एव वा सत्त्वे सैव ग्राह्या। दिनद्वयेऽप्यसत्त्वे अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या 'पक्षे प्रत्यूषसमये' इत्युक्तेः। वक्ष्यमाणवचनाच्च। तदभावे तु चतुर्दशीह्रासं पूर्वेद्युः प्रवेश्य पूर्वेऽह्नि त्रयोदशीमध्य एवाभ्यंगं कुर्यादिति दिवोदासः। केचिदत्र वचनमपि साधकत्वेन वदन्ति-'तिथ्यादौ तु भवेद्यावान् ह्रासो वृद्धिः परेऽहनि। तावान् ग्राह्यः स पूर्वेद्युरदृष्टोऽपि स्वकर्मणि' 'इति। तन्मन्दम्। न हीदं

उनके अनुयायियोंकी मूर्खता है। कारण कि, गौडोंका यह कथन है कि, कार्त्तिकके कृष्णपक्षकी पूर्वविद्धा चतुर्दशीमें प्रयत्नसे स्नान करना। स्मृतिदर्पणमें भी कहा है कि, आश्विन कृष्णपक्षमें स्वातिनक्षत्रसे युक्त चतुर्दशीको प्रभात समय विभूतिकी कामनावाले मनुष्य सुगन्धके तेलसे उबटन करके स्नान करें। पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका कथन है कि, आश्विन कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें नरकसे भय पाते हुए मनुष्य चन्द्रोदयमें तेलसे स्नान करें। कालादर्शमें यह लिखा है कि, नरकसे भय मानता मनुष्य मंगल स्नान करे, यहां दोनों वाक्योंमें आश्विनका समय लिखना अमावस्यान्त मासके अभिप्रायसे लिखा है। इसी प्रकार दिवालीकी चतुर्दशीको तेलमें लक्ष्मी, जलमें गंगा निवास करती है, जो मनुष्य प्रातःकाल स्नान करता है वह यमलोकको नहीं जाता। दोनों दिन चन्द्रोदयमें चतुर्दशी हो वा दोनों दिन न हो वा अरुणोदयमें पूर्ण वा किंचित् हो वा दोनों दिन चतुर्दशी हो तो प्रथम दिन अभ्यंग करे। कारण कि, पूर्वविद्धा चतुर्दशीमें करे ऐसा वाक्य है। पहले दिन हो तो वह ही लेनी और दोनों दिन न हो तो अरुणोदयकी ग्रहण करनी। कारण कि, पहले प्रातःकालके समय लिख आये हैं और आगे भी वाक्यसे लिखेंगे। प्रातःकालके समय भी न हो तो चतुर्दशीके घटनेको प्रथम दिन मानकर त्रयोदशीके बीचमें ही उबटन करे, यह दिवोदासका कथन है। कोई इसमें साधक भी कहते हैं कि, अगले दिन तिथि आदिकी जितनी हानि वा वृद्धि हो उतना समय बिना देखे भी अपने कर्ममें प्रथम दिन ग्रहण करना चाहिये, सो तुच्छ है। कारण कि, यह वाक्य पहले दिनके अपूर्व माननेको

वचनं पूर्वदिनस्यापूर्वं ग्राह्यत्वं विधत्ते । नक्तैकभक्तजन्माष्टम्यादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे सर्वत्र पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्वप्रसंगात् । किन्तु यत्रैकभक्तादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे वाक्यांतरेण न्यायेन वा पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्वमुक्तम्, तत्र मुख्यकाले तत्तिथेरभावेऽपि तत्रैवानुष्ठानबोधकमिदम् । न चात्र तदस्तीति यत्किंचिदेतत् । तेन चतुर्थयामगामिनी ग्राह्या । अत एव सर्वज्ञनारायणः–"तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयात्पुरा। यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यंगो विशिष्यते॥" इति । "मृगांकोदयवेलायां त्रयोदश्यां यदा भवेत् । दर्शे वा मंगलस्नानं दुःखशोकभयप्रदम् ॥" इति कालादर्शे त्रयोदशीनिषेधाच्च । तेनायमर्थः । यथाग्निहोत्रे यावज्जीवं सायंप्रातःकालेषु व्याप्यकालस्य गुरुत्वम् । तथात्र चतुर्दशीचतुर्थयामारुणोदयचन्द्रोदयानामुत्तरोत्तरस्य व्याप्यत्वाद्गुरुत्वमिति ॥ यदपि दिवोदासीये–"त्रयोदशी यदा प्रातः क्षयं याति चतुर्दशी । रात्रिशेषे त्वमावास्या तदाभ्यंगे त्रयोदशी॥" इति वचनं तद्धेमाद्रिनिर्णयामृताद्यलिखितत्वेन निर्मूलम् । समूलत्वेऽपि चतुर्दश्याः सूर्योदयद्वयासंबंधित्वरूपः क्षयोऽत्र विवक्षितः सूर्योदयात् प्राक् समाप्तौ चन्द्रोदयकालसत्त्वे च तथैवांगीकारात् । किंतु अभ्यंगकालात् प्राक् समाप्तिरूपोऽत्र ह्रासः क्षयशब्देन विवक्षितः । सचारुणोदयात् चतुर्थयामाद्वा प्राक् यदा

नहीं कहता । रात्रिके जन्माष्टमी व्रत आदिमें दोनों दिन कर्मकालतक व्यापिनी न हो तो और वाक्यसे प्रथम दिन मानना लिखा है वह मुख्य समयमें वह तिथि नहीं भी है, तथापि उसमें ही व्रत करनेका कहनेवाला वाक्य है सो बात यहां नहीं है, इसीसे यह कुछ भी नहीं, इससे रातके चौथे प्रहरगामिनी चतुर्दशी ग्रहण करनी । इसीसे सर्वज्ञनारायणने लिखा है कि, इसी प्रकार आश्विनकृष्ण चतुर्दशीको सूर्योदयसे प्रथम तैल मलना श्रेष्ठ है । कालादर्शमें इस वाक्यसे त्रयोदशीका निषेध भी कहा है कि, चन्द्रोदयके समयमें त्रयोदशी वा अमावस्याको मंगल स्नान करे तो यह स्नान दुःख, शोक, भयको देता है. इससे यह सिद्धान्त है कि जैसे अग्निहोत्रमें जीवनपर्यंत सन्ध्या समय और प्रभातकालमें व्याप्यकालका गुरुत्व है इसी प्रकार यहां चतुर्दशीका चौथा प्रहर अरुणोदय चन्द्रोदयमें भी पिछलेको व्यापक होनेसे श्रेष्ठतावाला है और जो दिवोदासियमें भी लिखा है कि, प्रभातकालके समय हो और चतुर्दशीकी हानि हो, रात्रिके शेषमें अमावस्या हो तो त्रयोदशीमें तेल मले, यह वाक्य हेमाद्रिनिर्णयामृत आदिमें लिखे न होनेसे निर्मूल हैं और समूल भी हो तो चतुर्दशी सूर्योदयपर दोनोंसे संबन्धवाली है यहां क्षय विवक्षित है। सूर्योदयसे समाप्तिपर्यन्त चन्द्रोदयकालमें होनेपर इसी प्रकार अंगीकार किया है। किन्तु अभ्यङ्गकालसे पहले समाप्तिरूपह्रास क्षयशब्दसे विवक्षित है । वह अरुणोदयसे और चौथे प्रहरसे हीन हो उस समयमें जानना, इसीसे सर्वज्ञनारायणने

हासस्तत्परमिदम्। अत एव सर्वज्ञनारायणेन चतुर्थयाममात्रे स्नानमुक्तम्। तथा चोदाहृतम्–'तथा कृष्णचतुर्दश्याम्' इति। ज्योतिर्निबन्धे नारदेऽपि–"इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि। ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावली भवेत्॥ कुर्यात्संलग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयम्"। ये तु त्रयोदशीमध्ये स्नानमाहुः तेषामाशयं न विद्म इत्यलं भूयसा। यदपि–"अरुणोदयतोऽन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः। तस्याब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः" इति। दिवोदासीये भविष्यवचनम्। तन्मुख्यकालेऽरुणोदये चतुर्दश्यभावेऽपि तत्रैव स्नातव्यमित्येवंपरमिति सर्वं सिद्धम्। 'चतुर्घटिकात्मकोऽरुणोदयः' इति तत्रैवोक्तम्। मदनरत्ने पाद्मे–"अपामार्गमथो तुंबीं प्रपुन्नाटमथापरम्। भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै॥" प्रपुन्नाटश्चक्रमर्दः। मन्त्रस्तु–"सितालोष्ठसमायुक्त सकण्टकदलान्वित। हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः"॥ इति। अस्यामेव प्रदोषे दीपान् दद्यादि-त्युक्तं हेमाद्रौ स्कांदे–"ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान्। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च"। इति। दिवोदासीये ब्राह्मे–"अमावास्याचतुर्दश्योः प्रदोषे दीपदानतः। यममार्गाधिकारेभ्यो मुच्यते कार्तिके नरः॥" खण्डतिथौ तु पूर्वेऽह्नि प्रदोषे दीपान् दत्त्वा परेद्युः स्नायादिति दिवोदासीये उक्तम्। तत्र चतुर्वर्तियुक्तं दीपदानम्। अत्र नरकोद्देशेन चतुर्वर्तियुक्तं दीपदानं कार्यम्। तत्र

कृष्णचतुर्दशीके चतुर्थप्रहरमें स्नान लिखा है. ज्योतिर्निबन्धमें नारदने भी लिखा है कि, आश्विनकृष्ण चतुर्दशीको और अमावस्याको और स्वातिनक्षत्रयुक्त कार्तिकमें दीपमालिका जो होती है उसमें निरन्तर तीन दिन दीपोत्सव करे। जो त्रयोदशीके बीचमें स्नान कहते हैं उनका आशय हमको विदित नहीं होता अर्थात् वे मन्द हैं, बहुत कहनेसे क्या है। दिवोदासीयमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, अरुणोदयको त्यागकर जो मनुष्य रिक्तातिथिमें स्नान करता है, उसका वर्षभरका किया हुआ धर्म नष्ट होजाता है। यह वाक्य मुख्यसमयमें चतुर्दशीका अभाव भी हो तो भी चतुर्दशीमें स्नान करना इस निमित्त है, इससे सम्पूर्ण सिद्ध हुआ, चार, घडीका अरुणोदय होता है, यह वहां ही लिखा है। मदनरत्नमें पद्मपुराणका कथन ह कि। (चिरचिठा) तुम्बी चक्रमर्दको स्नानके समय नरकके नाशके निमित्त चारों ओर भ्रमावे, उसका मन्त्र यह है कि, हे अपामार्ग! सिताके दलोंसे और कांटेवाले दलोंसे संयुक्त वारंवार भ्रमानेसे तुम मेरे पापको दूर करो, इसी चतुर्दशीको सायंकालके समय दीपदान करे, यह हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, फिर प्रदोषकालमें सुन्दर दीपक ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंके मन्दिरोंमें और मठोंमें बाले। दिवोदासीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, कार्त्तिककी अमावस्या और चतुर्दशीको दीपदान करनेसे मनुष्य यममार्गके अंधकारसे छूट जाता है, तिथि खंडित हो गयी हो तो प्रथम दिन प्रदोषमें दीपदान कर प्रथम दिन स्नान करे, यह दिवोदासीयमें कहा है। इस दिन नरक निवृत्तिके उद्देशसे चार वर्तियोंका दीपक देना चाहिये. उसका यह मंत्र है कि, नरकोंकी

मंत्रः—"दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां नरकप्रीतये मया। चतुर्वर्तिसमायुक्तः सर्वपापापनुत्तये" ॥ तत्रैव लिंगे— "माषपत्रस्य शाकेन भुक्त्वा तत्र दिने नरः। प्रेताख्यायां चतुर्दश्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते" ॥ अथ यमतर्पणम्। अत्र यमतर्पणमुक्तं मदनपारिजाते वृद्धमनुना—'दीपोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पणम्' ॥ मदरत्ने ब्राह्मे—"अपामार्गस्य पत्राणि भ्रामयेच्छिरसोपरि। ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः। यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चांतकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ औदुबंराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ॥ ३ ॥" इति। तर्पणप्रकारस्तु हेमाद्रौ—"एकैकेन तिलैर्मिश्रान्दद्याच्च त्रीञ्जलाञ्जलीन्। संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति" ॥ तथा मदनरत्ने स्कान्दे—"दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तिलैः सव्यं समाहितः। देवतीर्थेन देवत्वात्तिलैः प्रेताधिपो यतः" ॥ तथा-'यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिना तथा" इति। इदं जीवत्पितृकेणापि कार्यम्। 'जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः' इति पाद्मोक्तेः ॥ अत्र भीष्मतर्पणमप्युक्तं दिवोदासीये तत्प्रकारस्तु माघे वक्ष्यते। इति नरकचतुर्दशी। कार्तिकामावास्यानिर्णयः। कार्त्तिकामावास्यायां प्रातरभ्यंगं कुर्यात्। तदुक्तं कालादर्शे-"प्रत्यूष आश्वयुग्दर्शे कृताभ्यंगादिमंगलः। भक्त्या प्रपूजयेद्देवीमलक्ष्मीविनिवृत्तये" ॥

प्रसन्नता और सब पापोंके दूर करनेके निमित्त चार बत्तियोंका दीपक मैंने दिया है. वहां ही लिंगपुराणका यह वाक्य है कि, उस दिन मनुष्य उरदके पत्तोंके सागको भोजन करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है। इसमें यमका तर्पण भी मदनपारिजातमें वृद्धमनुने लिखा है कि, चतुर्दशीको दीपोत्सव और यमतर्पण करना चाहिये। मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, अपामार्गके पत्तोंको अपने शिरपर भ्रमण करावे, फिर यमराजके इन नामोंसे तर्पण करे कि—यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठि, चित्रगुप्त, वृकोदर, चित्रके निमित्त नमस्कार है. तर्पणका प्रकार तो हेमाद्रिमें यह लिखा है कि, एक एकको तिलोंसे मिली २ अञ्जली दे तो वर्षदिनका संचित किया पाप क्षणभरमें दूर होजाता है। इसी प्रकार मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, दक्षिणकी ओर मुख करके सव्य होकर सावधानीसे तिलोंसे तर्पण करना चाहिये। इस तर्पणमें यमराजको देव होनेसे देवतीर्थसे और प्रेतोंका राजा होनेसे तिलोंसे तर्पण करे, इसी प्रकारके वाक्य हैं कि—'यज्ञोपवीती' अथवा 'प्राचीनावीती' होकर तर्पण करना। यह जीवत्पितृकको भी करना चाहिये. कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि, जिसका पिता जीवित हो वह यम और भीष्मका तर्पण करे, यहां दिवोदासीयमें भीष्मका तर्पण लिखा है, उसका प्रकार माघके निर्णयमें लिखेंगे। इति नरकचतुर्दशी। कार्तिककी अमावस्याको प्रातःकाल तेल मले, यही कालादर्शमें लिखा है कि, आश्विनकी अमावस्याको प्रातःकालके समय तेल मलना आदि मंगलस्नानको संपादन करके भक्तिसे अलक्ष्मीकी निमित्त देवीकी पूजा करे,

अस्य व्याख्याने आदिशब्दात्पञ्चत्वगुदकस्नानादेरुपसंग्रहः । तदुक्तं पुष्करपुराणे-"स्वातीस्थिते रवाविन्दुर्यदि स्वातिगतो भवेत् । पञ्चत्वगुदकस्नायी कृताभ्यंगविधिर्नरः ॥ नीराजितो महालक्ष्मीमर्चयञ्छ्रियमश्नुते ।". आश्वयुग्दर्शे इति दर्शशब्दः प्रत्यूषस्वातियुक्ततिथिपरः। तदुक्तं ब्राह्मे-"ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां तिथिषु स्वातिऋक्षगे । मानवो मंगलस्नायी नैव लक्ष्म्या वियुज्यते ॥" तत्रैव-"इषभूते च दर्शे च कार्त्तिकप्रथमे दिने। यदा स्वाती तदाभ्यंगस्नानं कुर्याद्दिनोदये॥" कश्यपसंहितायां तु दीपावलिदर्शे प्रक्रम्य-"इन्दुक्षयेऽपि संक्रान्तौ रवौ पाते दिनक्षये। तत्राभ्यंगो न दोषाय प्रातः पापापनुत्तये॥" इति । स्वातीयोगं विनाऽप्यभ्यंग उक्तः । मात्स्ये-" दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता ॥" तत्र विशेषः। अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये-"दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराज्जनात्। प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात्॥ दीपवृक्षाश्च दातव्याः शक्त्या देवगृहेषु च ॥" तत्रैवाभ्यंगमभिधाय-" एवं प्रभातसमये त्वमावास्या नराधिप। कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः॥ दीपान्दत्त्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि। स्वलंकृतेन भोक्तव्यं सितवस्त्रोपशोभिना ॥ २ ॥" अयं प्रदोष-

---

इस कथनके व्याख्यानमें आदिशब्दसे पंचत्वचाके स्नानका ग्रहण करना चाहिये। यही पुष्करपुराणमें लिखा है कि, स्वातीके सूर्यमें स्वातिका चंद्रमा हो तो पंचत्वचाके जलमें स्नान करके और तेल मल करके मनुष्य आरती करे और महालक्ष्मीकी पूजा करे तो लक्ष्मीको भोगता है। (आश्वयुग्दर्शे) इस पदमें दर्शशब्द प्रातःकाल स्वाती नक्षत्रयुक्त तिथिका जतानेवाला है । यही ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, कार्त्तिकशुक्ल द्वितियाको स्वातिनक्षत्रमें मंगल स्नान करे तो मनुष्य लक्ष्मीसे हीन कभी नहीं होता। आश्विनकी चतुर्दशी और अमावस्याको और कार्त्तिकके प्रथम दिन जब स्वातीनक्षत्र युक्त हो तब सूर्योदयमें तेल मले, उबटन करे, फिर स्नान करे यह वहां ही लिखा है। कश्यपसंहितामें तो दिवालीकी अमावस्याके आरम्भ करके स्वातीनक्षत्र योग विना भी अभ्यंग करना लिखा है कि-अमावास्या, संक्रान्ति, आदित्यवार, व्यतीपात, दिनका क्षय इनमें प्रभात समय अभ्यंग करनेका दोष नहीं है किन्तु पाप नाश होता है। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, इसमें दीपकोंसे नीराजन (आरती) होती है, इससे इसे 'दीपावली' कहा है। इसमें विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, बालक और आतुर मनुष्योंके विना दिवालीको दिनमें किसीको भी भोजन न करना चाहिये। प्रदोषके समय लक्ष्मीका क्रमानुसार पूजन करके देवताओंके मन्दिरमें शक्तिपूर्वक दीपवृक्ष देने, फिर वहां ही अभ्यंगको लिखकर हे राजन्! इस प्रकार अमावस्याको प्रभात कालमें दधि, खीर, घृत आदिसे पार्वणश्राद्ध करके और दीप देकर प्रदोषमें लक्ष्मीका यथाविधि पूजन करके श्वेतवस्त्रोंको धारण कर और अलंकार धारण कर भोजन करे। यह पूजन भी प्रदोष समय करना। तुलाकी संक्रान्तिमें

व्यापी ग्राह्यः—"तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः । उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम् ॥" इति ज्योतिषोक्तेः । दिनद्वये सत्त्वे परः—' दण्डैकरजनीयोगे दर्शः स्यात्तु परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका॥" इति तिथितत्त्वे ज्योतिर्वचनात् । दिवोदासीये तु प्रदोषस्य कर्मकालत्वात् । "अर्धरात्रे भवत्येव लक्ष्मीराश्रयितुं गृहान् । अतः स्वलंकृता लिप्ता दीपैर्जाग्रज्जनोत्सवाः ॥ सुधाधवलिताः कार्याः पुष्पमालोपशोभिताः ॥" इति ब्राह्मोक्तेश्च । प्रदोषार्धरात्रव्यापिनी मुख्या एकैकव्याप्तौ परैव । प्रदोषस्य मुख्यत्वादर्धरात्रेऽनुष्ठेयाभावाच्च । यस्तु—" अपराह्णे प्रकर्तव्यं श्राद्धं पितृपरायणैः । प्रदोषसमये राजन्कर्तव्या दीपमालिका ॥" इति क्रमः । स संपूर्णतिथावेव प्राप्तेरनुवादो न विधिः । तत्तत्कर्मकालव्याप्तेर्बलवत्त्वात्संपूर्णतिथौ प्राप्त्या खण्डतिथावप्राप्त्या विध्यनुवादविरोधाच्चेत्युक्तम् । अत्राऽलक्ष्मीनिवारणम् । अत्रैव दर्शे पररात्रेऽलक्ष्मीनिःसारणमुक्तं मदनरत्ने भविष्ये- " एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्धलोचने । तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिंडिमवादनैः ॥ निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात् । " कार्त्तिकशुक्लप्रति-

---

चतुर्दशी और अमावस्याको प्रदोषमें उल्का हाथमें धारण कर मनुष्य पितरोंके मार्गको दिखावें, यह ज्योतिषका वाक्य उसमें प्रमाण है । यदि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो अगले दिन करना । कारण कि, तिथितत्त्वमें ज्योतिषका वाक्य है कि, एक घडी रात्रिका योग हो तो अमावस्या दूसरे दिन होती है, तब प्रथम दिन छोड़कर अगले दिन सुखरात्रि होती है । दिवोदासीयमें तो प्रदोषको कर्मका समय होनेसे और ब्रह्मपुराणके इस वाक्यसे कि, अर्द्धरात्रमें जानेके निमित्त लक्ष्मी घरोंमें घूमती है इससे मनुष्य भले प्रकार अलंकार और चंदन लगाकर दीपकके चांदनेमें उत्सवपूर्वक जागते रहें और श्वेततासे धवल और फलोंकी मालासे शोभित रहें, इससे प्रदोष और अर्द्धरात्रव्यापिनी मुख्य है (यदि प्रदोष वा अर्द्धरात्रमें एक एक व्यापिनी हो तो अगली लेनी चाहिये, प्रदोष मुख्य है) और आधीरातमें कर्म करने योग्य नहीं । जो किसीने यह क्रम कहा है कि, पितरोंके भक्त मनुष्योंको अपराह्णमें श्राद्ध करना चाहिये और हे राजन् ! प्रदोषके समय दीपमालिका करें, इस क्रमका सम्पूर्ण तिथिके बीचमें प्राप्तिका अनुवाद जानना, विधि नहीं जाननी । कारण कि, उस उस कर्म कालमें तिथिका होना बलिष्ठ है और सम्पूर्ण तिथिमें प्राप्त हो खण्डमें न प्राप्त हो, इससे विधि और अनुवादका परस्पर विरोध है, यह प्रथम कह आये हैं । दिवालीकी अमावस्याको पिछली रातको दरिद्रका घरसे निकालना । मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, इस प्रकार जब आधी रात बीत जाय और मनुष्योंके नेत्रमें आधी निद्रा रहे तब नगरके नरनारियोंको सूप और बाजोंको बजाकर आनन्दित होकर अपने घरके आँगनसे दरिद्रको निकालना चाहिये । कार्त्तिकशुक्ल प्रतिपदाको गौओंकी क्रीडा निर्णय-

पन्निर्णयः ॥ कार्त्तिकशुक्लप्रतिपदि गोक्रीडनमुक्तं निर्णयामृते। अस्यामेव रात्रौ बलेः पूजोक्ता हेमाद्रौ भविष्ये–"कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः। पूजां कुर्यान्नृपः साक्षाद्भूमौ मण्डलके शुभे ॥ बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरंगकैः। गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत्॥ लोकश्चापि गृहस्यांतः शय्यायां शुक्लतण्डुलैः। संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैस्तु पूजयेत् ॥ ३ ॥" मन्त्रास्तु पाद्मे–"बलिराज नमस्तुभ्यं दैत्यदानववन्दित। इन्द्रशत्रोऽमराराते विष्णुसान्निध्यदो भव" इति ॥ तथा–"बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानि कुरुनन्दन। यानि तान्यक्षयाण्याहुर्मयैव सम्प्रदर्शितम्" इति ॥ तदेतत्पूर्वविद्धप्रतिपदि कर्तव्यम्। "पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्' इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेः। माधवोऽपि-'बल्युत्सवं च पूर्वेद्युरुपवासवदाचरेत्' इति। निर्णयामृतेऽपि–"या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप। पूजनात्त्रीणि वर्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः" इति। तथा–'भद्रायां गोकुलक्रीडा स देशो वै विनश्यति' ॥ भद्रायां द्वितीयायाम्। तथा–"प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां तु गोऽर्चनम्। क्षेत्रच्छेदं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम्" इति। तथा–"प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम्। परविद्धेषु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः" इति देवलवचनाच्च। एते च विधिप्रति-

---

मृतमें लिखी है और इसमि बलिकी पूजा रात्रिको हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, रात्रिके विषे इस सम्पूर्णकृत्यको करके रात्रिको दैत्योंके प्रति बलिकी पूजा अपने घरकी भूमिमें राजाको करनी चाहिये। पांचरंगोंसे दैत्यपति बलिको लिखकर घरके मध्यकी उत्तम शालामें बलिकी पूजा करनी चाहिये, जगत् भी अपने घरके बीचमें शय्यापर श्वेत चावलोंके ऊपर बलिराजाको स्थापित करे, पुष्प और धूपसे बलिका पूजन करे, उसका मंत्र पद्मपुराणमें यह लिखा है कि, हे बलिराज! हे दैत्य दानवोंके प्रणाम योग्य! हे इन्द्र और देवताओंके शत्रु! मुझे विष्णुकी निकटता दीजिये. ऐसे ही यह लिखा है कि, हे कुरुनन्दन! बलिके निमित्त जो दान दिये जाते हैं वे अक्षय होते हैं यह मैंने दिखाया है सो यह व्रत, पूजा पूर्वविद्धा प्रतिपदामें करनी चाहिये. कारण कि, हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वचन है कि, शिवरात्रि और बलिदान पूर्व दिनमें करना. माधवमें भी लिखा है कि, प्रथम दिन बलिका उत्सव भी व्रतके तुल्य करे। निर्णयामृतमें भी कहा है कि, प्रतिपदासे मिली अमावस्यामें गौओंके पूजनेसे राजाके प्रजा गौ और राज्य तीनोंकी वृद्धि होती है. इसी प्रकार वाक्य है कि, जहां भद्रा (द्वितीया) को गौओंकी क्रीडा होती है वह देश नष्ट होता है. ऐसे ही लिखा है कि,प्रतिपदाको अग्निहोत्र करना, द्वितीयाको गौओंकी पूजा हो तो छत्रभंग, धननाश, कुलक्षय होता है। ऐसे ही देवलने यह कहा है कि, प्रतिपदा अमावस्याके योगमें गौओंकी क्रीडा करानी चाहिये;परविद्धातिथिमें जो क्रीडा करे उसके पुत्र, स्त्री,धनका क्षय होता है। ये पूर्वोक्त विधि

षेधाः । पूर्वदिने प्रतिपदः सायाह्नव्यापित्वे द्वितीयादिने चन्द्रदर्शनसंभवे च ज्ञेयाः । "गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः । सोमो राजा पशून्हन्ति सुरभिः पूजकांस्तथा" इति पुराणसमुच्चयात् । दिनद्वये सायाह्नव्यापित्वे तु परैव ग्राह्या । "वर्धमानातिथौ नन्दा यदा सार्धत्रियामिका । द्वितीयावृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्र चोच्यते" इति ॥ तथा–'त्रियामगा दर्शतिथिर्भवेच्चेत्सार्द्धत्रियामा प्रतिपद्विवृद्धौ । दीपोत्सवे ते मुनिभिः प्रादिष्टे अतोऽन्यथा पूर्वयुते विधेये" इति पुराणसमुच्चयादिति निर्णयामृतकारः । सार्द्धत्रियामिकेत्यनेन चन्द्रदर्शनाभाव उक्तः । द्वितीयाः पञ्चधाविभक्तादिनदतुर्थांशरूपापराह्णव्याप्तावेव चन्द्रदर्शनसम्भवात् । वयं त्वेतद्वचनद्वयं पूर्वविद्धासम्भवे वेदितव्यमिति ब्रूमः । दिनद्वये प्रतिपदः सायाह्नव्याप्त्यभावे तु पूर्वैव । रात्रौ बलिपूजाविधानेन कर्मकालव्यापित्वात् । परदिने चन्द्रोदये तन्निषेधादिति दिक् । मदनरत्ने तु पूर्वविद्धायां गोक्रीडा । नीराजनमङ्गलमालिके तूत्तरत्र कार्ये–"कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु विधानद्वितयं भवेत् । नारीनीराजनं प्रातः सायं मंगलमालिका ॥ यदा च प्रतिपत्स्वल्पा नारीनीराजनं भवेत् । द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मंगलमालिकाम् ॥ २ ॥

और निषेध पूर्वदिनमें प्रतिपदा सायाह्नव्यापिनी हो और दूसरे दिन चन्द्रमाके दर्शनका संभव हो तो जाननी चाहिये । कारण कि, पुराणसमुच्चयमें यह लिखा है कि, जिस दिन रात्रिमें चन्द्रमाका दर्शन हो उस दिन गौओंकी क्रीडा करे तो सोमराजा गौओंके पूजन करनेवालेको और पशुओंको हनते हैं । दोनों दिन संध्याव्यापिनी हो तो अगले दिन करनी; कारण कि, पुराणसमुच्चयमें लिखा है कि, बढ़नेवाली तिथिमें यदि साढ़े तीन प्रहर नन्द हो तो द्वितीयाकी वृद्धि होनेवाली हैं, इससे वहां उत्तरतिथि ग्रहण की है. इसी प्रकार वाक्य है कि, अमावस्या तीन प्रहर हो और साढ़े तीन प्रहर पतिपदा हो तो ये दोनों तिथि मुनियोंने दीपोत्सवमें लिखी है, ये दो ऐसी न हों तो दोनों तिथि पूर्वविद्धा करनी, यह पुराणसमुच्चयसे निर्णयामृतमें लिखा है । साढे तीन प्रहर प्रतिपदा कहनेसे चन्द्रमाके दर्शनका अभाव वर्णन किया, द्वितीयाके पांच भाग करनेपर जब चतुर्थ भाग प्रतिपदाके अपराह्नका पूरा आजाय तो पडवामें चन्द्रदर्शन हो सकता है । हम तो ये दोनों वाक्य पूर्वविद्धाके असम्भवमें जानने चाहिये ऐसा कहते हैं । दोनों दिन प्रतिपदा प्रदोषव्यापिनी न हो तो प्रथमकी लेनी; कारण कि, रात्रिमें बलिपूजाकी विधिसे कर्मकालव्यापिनी लिखी है और परदिनमें चन्द्रोदय हो तो बलिपूजाका निषेध है । इति दिक् । मदनरत्नमें तो पूर्वविद्धामें गोक्रीडा, नीराजन और मंगलकी माला ये सब उत्तरतिथिमें करने चाहिये, ऐसा कहा है । कारण कि, ब्रह्मपुराणमें यह लिखा है कि, कार्त्तिकके शुक्लपक्षमें दो विधि होती हैं, प्रातःकाल नीराजन और सायंकालको मंगलमालिका करनी । जिस दिन प्रतिपदा थोड़ी हो तो भी द्वितीयाको प्रातःकाल नीराजन और सायंकालको

इति ब्राह्मोक्तेः । " लभ्यते यदि वा प्रातः प्रतिपद्घटिकाद्वयम् । तस्यां नीराजनं कार्यं सायं मङ्गलमालिका ॥" इति भविष्योक्तेः । " प्रातर्वा यदि लभ्येत प्रतिपद्घटिका शुभा । द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मंगलमालिकाम् । कार्त्तिके शुक्लपक्षादौ त्वमावास्याघटीद्वयम् । देशभंगभयान्नैव कुर्यान्मंगलमालिकाम् ॥ २ ॥" इति देवीपुराणाच्चेत्युक्तम् । तत्र विशेषः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे बलिप्रतिपदं प्रक्रम्य–"तस्मिन्द्यूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः । तस्मिन्द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः ॥ पराजयो विरुद्धश्च लाभनाशकरो भवेत् । दयिताभिश्च सहितैर्नेया सा च भवेन्निशा ॥ २ ॥" इति । गोवर्धनपूजननिर्णयः । अत्र गोवर्धनपूजादि चोक्तं हेमाद्रौ निर्णयामृते च स्कांदे–"प्रातर्गोवर्धनं पूज्य द्यूतं चापि समाचरेत् । भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चावाहदोहनाः" ॥ गोवर्धनश्च गोमयेन कार्यश्चित्रेण वा । मन्त्रस्तु–"गोवर्धनधराधार गोकुलत्राणकारण । बहुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव ॥" गोमन्त्रस्तु–"लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता । घृतं वहति यज्ञार्थं मम पापं व्यपोहतु ॥" तत्रैव स्कांदे––"ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत । मार्गपालीं प्रबध्नीयात्तुंगे स्तंभेऽथ पादपे ॥ कुशकाशमयीं दिव्यां लंबकैर्बहुभिर्मुने । दर्शयित्वा गजानश्वान्सायमस्यास्तले नयेत् ॥

मंगल मालिका करे । भविष्यपुराणमें लिखा है कि, जो प्रातःकाल दो घड़ी प्रतिपदा भी मिले तो उसमें नीराजन और सायंकालको मंगलमालिका कर लेनी । देवीपुराणमें लिखा है कि, प्रातःकाल शुद्धप्रतिपदा घडीभर भी मिले तो द्वितीयाको सायंकालमें मंगलमालिका करनी चाहिये । कार्तिकके शुक्लपक्षके आदिमें अमावस्या दो घड़ी मात्र हो तो उस दिन देशभंगके भयसे मंगलमालिका न करनी । इसमें विशेष हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे बलिप्रतिपत्प्रकरणमें लिखा है कि, दिवालीके दिन मनुष्योंको प्रभातके समय जुआ खेलना उचित है, उसमें जिसका जय हो उसका वर्षदिनतक जय होता है और जिसका विरोध वा पराजय होता है उसके लाभका नाश होता है, इससे मनुष्य उस रात्रिको स्त्रियोंके साथ द्यूतक्रीडामें बितावें । उसमें गोवर्द्धनपूजा आदि और देवमार्गपालीकी पूजा आदि हेमाद्रिमें निर्णयामृतमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, प्रातःकाल गोवर्धनकी पूजा करके जुआ खेले और गौओंको सज्जित करे और यान तथा गोदोहनकी पूजा करनी और गोमय वा चित्रामका गोवर्द्धन रचे, उसका मंत्र यह है कि, हे गोवर्द्धन ! हे गोकुलके रक्षक ! हे बहुत भुजाओंसे छाया करनेवाले कोटि गौओंके दाता ! आपको प्रणाम है । गौओंका मंत्र यह है कि, जो सम्पूर्ण लोकपालोंकी लक्ष्मी गोरूपसे स्थित है और यज्ञके निमित्त घृतको धारण करती है वह मेरे पापको दूर करे । वहां ही स्कन्दपुराणमें कहा है कि, इससे अपराह्नके समय पूर्वदिशामें ऊंचे खंभोंपर वा वृक्षपर कुशा वा काशोंके लम्बे लम्बे सूतोंसे मार्गपालीको बांधे, हाथी और घोडेको दिखाकर संध्याके समय उसके नीचेको ले जायँ और ब्राह्मण जब हवन

कृते होमे द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम् । नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ मार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्वलोकसुखप्रदे । विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे ॥ नीराजनं च तत्रैव कार्यं राष्ट्रजयप्रदम् । राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः । मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः स्युः सुखान्विताः ॥ ९ ॥" तत्रैवादित्यपुराणे—"कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम् । तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथान्यतः ॥ गृहीत्वा कर्षयेयुस्तां यथासारं मुहुर्मुहुः । जयोऽत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम् ॥ २ ॥" इति । यमद्वितीयानिर्णयः । यमद्वितीया तु प्रतिपद्युता ग्राह्येत्युक्तं निर्णयामृतादौ । यमद्वितीया मध्याह्नव्यापिनी पूर्वविद्धा चेति हेमाद्रिः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कान्दे—"ऊर्जशुक्लद्वितीयायामपराह्णेऽर्चयेद्यमम् । स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति" ॥ इति । "ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यमः । वेष्टितः किन्नरैर्हृष्टैस्तस्मै यच्छति वांछितम् ॥" यथा भविष्ये—"प्रथमा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदेतरा । तृतीयाश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्त्तिके भवेत् ॥ श्रावणे कलुषा नाम तथा भाद्रे च गीर्मला । आश्विने प्रेतसंचारा कार्त्तिके याम्यका मता ॥ २ ॥" इत्युक्त्वा प्रथमायां व्रतं द्वितीयायां सरस्वतीपूजा तृतीयायां श्राद्धमुक्त्वा चतुर्थ्यामुक्तम्—'कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य

कर ले तब मार्गपाली बांधे । हे सुव्रत ! इस मन्त्रसे नमस्कार करे कि, हे मार्गपालि ! हे सर्वलोकसुखदायिनी ! तुमको प्रणाम है, पुत्र और स्त्रियोंके और मेरे व्रतकी पूर्णताके निमित्त फिर आना और वहां ही राज्यके जय देनेवाला नीराजन करे, राजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, शूद्रजाति मार्गपालीको लंघकर प्रसन्न होते हैं । वहां ही आदित्यपुराणमें कहा है कि, कुश और काशकी दृढ रस्सी निर्माण करे, उसको एक ओर राजाके पुत्र और एक ओर हीनजाति अपने बलके अनुसार बारम्बार खैंचें, खींचनेमें हीन जातियोंकी जय हो जाय तो वर्षदिन तक राजाको जय प्राप्त होती है । अथ यमद्वितीया । यह प्रतिपदासे युक्त ग्रहण करनी, यह निर्णयामृतमें लिखा है । कारण कि, हेमाद्रिने यह कहा है कि, यमद्वितीया पूर्वविद्धा और मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी । इसमें विशेष हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, कार्तिकशुक्ल द्वितीयाको अपराह्णमें यमराजका पूजन करना चाहिये । और यमुनामें स्नान करनेसे यमलोकको देखना नहीं पड़ता । कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको पूजा और तर्पण करनेसे प्रसन्न हुए किन्नरों सहित यमराज मनुष्यके सम्पूर्ण मनइच्छित फलको देते हैं । इसी प्रकार भविष्यपुराणका कथन है कि, श्रावण मासकी प्रथमा और भाद्रपदकी अपरा (२) और आश्विनकी तृतीया और कार्तिककी चतुर्थी इन चार महीनोंकी द्वितीयाओंको क्रमसे कलुषा गीर्मला, प्रेतसंचारा, याम्यका नामवाली कहा है। यह कहकर पहलीमें व्रत दूसरीमें सरस्वती पूजा, तीसरीमें श्राद्ध कहकर चौथी कार्तिकशुक्ल द्वितीयामें लिखा है कि हे युधिष्ठिर !

द्वितीयायां युधिष्ठिर। यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः॥ अतो यमद्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता। अस्यां निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो नरैः॥ स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम्। दानानि च प्रदेयानि भागिनीभ्यो विधानतः॥ स्वर्णालंकारवस्त्रान्नपूजासत्कारभोजनैः। सर्वा भगिन्यः संपूज्या अभावे प्रतिपन्नकाः॥ ४॥" प्रतिपन्नाः मातृभगिन्य इति हेमाद्रिः। "पितृव्यभगिनीहस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिर। मातुलस्य सुताहस्ताद्द्वितीयायां तथा नृप॥ पितुर्मातुः स्वसुः कन्ये तृतीयायां तयोः करात्। भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परम्॥ सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्धनम्॥ यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः संभोजितः प्रतिजगत्स्वसृसौहृदेन। तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति रत्नसुखधान्यमनुत्तमं सः॥ ४॥" गौडास्तु— "यमं च चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत्। अर्घ्यश्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः॥" मन्त्रः—" एह्येहि मार्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश। भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते॥ भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम्। प्रीतये यमराजस्य यमुनायां विशेषतः॥ २॥" ज्येष्ठाग्रजातेति वदेदिति स्मार्ताः। इत्यन्नदानमित्यप्याहुः। ब्रह्माण्डपुराणेऽपि—" या तु

यमुनाने अपने घरमें पूजन करके यमराजको सत्कारसे भोजन कराया, इससे यह तीनों लोकोमें यमद्वितीया नामसे प्रसिद्ध है। हे विप्र! इसमें मनुष्यको अपने घरमें भोजन न करना किन्तु अपनी पुष्टि बढ़ानेवाले मनुष्यको स्नेहसे भगिनीके हाथसे भोजन करना और विधिसे भगिनियोंको दक्षिणा देनी और स्वर्ण, अलंकार, वस्त्र, अन्न, पूजा, सत्कार, भोजनसे भगिनियोंकी पूजा करनी चाहिये, भगिनी न हो तो प्रतिपन्नोंकी पूजा करनी, माताकी भगिनियोंको प्रतिपन्न कहते हैं। यह हेमाद्रिमें वर्णन किया है, पिताकी बहिनीके हाथसे श्रावण शुक्ल द्वितीयाको और मामाकी लड़कीके हाथसे भादौ शुक्ल २ को, मौसी और फूफीकी लड़कीके हाथसे आश्विन शुक्ल २ को और सगी बहिनके हाथसे कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको भोजन करना चाहिये, सब द्वितीयाओंको बल बढ़ानेवाले बहिनीके हाथसे भोजन करे। जिस तिथिको यमुनाने यमराजदेवका सब जगत्की भगिनियोंके प्यारसे भोजन कराया है उस तिथिको जो बहिनीके हाथसे भोजन करता है वह श्रेष्ठ रत्न धान्यको प्राप्त होता है। गौड तो यह कथन करते हैं कि, यम और चित्रगुप्त और यमके दूतोंकी पूजा करनी और दोनों पुत्रोंके सहित यमराजको अर्घ्य दे। मंत्र तो यह है कि, हे सूर्यपुत्र! हे हाथमें पाश धारण किये! हे यम! हे अंतक! हे लोकधर! हे अमरेश! भैया दोयजमें की हुई देवपूजा और अर्घ्यको स्वीकार करो, हे भगवन्! आपको नमस्कार है, हे भ्राता! मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूं, तुम इस सुन्दर भोजनको यमराज और विशेषकर यमुनाकी प्रसन्नताके निमित्त भक्षण करो। स्मार्त यह कहते हैं कि, हे ज्येष्ठ! हे अग्रजात! इस प्रकार कहे और अन्नदान भी करे। ब्रह्माण्डपुराणमें भी यह कहा है कि, जो स्त्री द्वितीया में भ्राता (भाई)

भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ । अर्चयेच्चापि तांबूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ भ्रातुरायुःक्षयो राजन्न भवेत्तत्र कर्हिचित् ॥" इति । कार्त्तिकशुक्लनवमीनिर्णयः । कार्तिकशुक्लनवमी युगादिः सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । शुक्लपक्षस्थत्वात् । अत्रापि पिण्डरहितं श्राद्धं कर्तव्यम् । अन्यत्प्रागुक्तम् । विष्णुत्रिरात्रम् । अत्रैव विष्णुत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे-"कार्त्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः । हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं विभुम् ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् । एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम् ॥ २ ॥" इति । कार्त्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपंचकम् । कार्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपंचकव्रतमुक्तं नारदीये-"अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपंचकम् । कार्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः । एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥" इति । तद्विधिस्तु गोमयेन स्नात्वा मौनी पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्विष्णुं संस्नाप्य संपूज्य पायसं निवेद्य द्वादशाक्षरमष्टोत्तरशतं जप्त्वा । 'ॐ नमो विष्णवे' इति षडक्षरेण घृताक्तान् यवान् व्रीहींश्चाष्टोत्तरशतं हुत्वा भूमौ स्वपेत् । एवं पंचदिनेषु कुर्यात् । विशेषतो वाद्येऽह्नि हरेः पादौ कमलैः संपूज्य त्रिर्गोमयं प्राश्यम् । द्वितीयेऽह्नि बिल्वपत्रैर्जानुनी संपूज्य गोमूत्रम् । त्रयोदश्यां भृंगराजेन नाभिं संपूज्य क्षीरम् । चतुर्दश्यां करवीरैः स्कंधं संपूज्य दधि । पौर्णमास्यां होमान्ते लौहीं पापप्रतिमां खड्गचक्र-

---

का भोजन कराती है और पानोंसे पूजन करती है, वह कभी विधवा नहीं होती, हे राजन्! भाईकी अवस्थाका कभी नाश नहीं होता। कार्तिक शुक्ल ९ युगादि है, वह शुक्लपक्षकी होनेसे पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये । इसमें पिंडरहित श्राद्ध करना और निर्णय तो प्रथम कह आये हैं । इसमें ही विष्णुका व्रत त्रिरात्रके हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, कार्तिक शुक्ल ९ नवमीको जितेंद्रिय होकर हरि और तुलसी बनाकर तीन दिन व्रत करक विधिपूर्वक पूजन करे, फिर विवाहके शास्त्रोक्त विधानसे तुलसीके संग विष्णुका विवाह करे । कार्तिक शुक्ल ११ को भीष्मपंचक व्रत नारदीयपुराणमें लिखा है कि, इसमें मनुष्य प्रयत्नसे भीष्मपञ्चक करे, कार्तिकके शुक्लपक्षमें अच्छे प्रकार व्रतमें स्थित होकर मनुष्य स्नान करके ११ को पांच दिनका व्रत ग्रहण करे । उसकी विधि इस प्रकार है कि, गोबरसे स्नान करके मौन होकर पंचगव्य और पंचामृतसे स्नान कराय पूजा करके और खीरको निवेदन करके अष्टोत्तरशत द्वादशाक्षर[1] मंत्र जपसे (ॐ नमो विष्णवे) इस षडक्षर मंत्रसे घृतमें मिले हुए यव और व्रीहियोंसे १०८ आहुति देकर भूमिपर शयन करे. इस प्रकार पांच दिन करे, विशेष तो यह है कि, प्रथम दिन विष्णुके चरणोंकी पूजा करके तीन बार गोबरका भक्षण करे, दूसरे दिन बेलपत्रोंसे जानुओंकी पूजा करके गोमूत्र पान करे, त्रयोदशीको भँगरेसे नाभिकी पूजा करके दूधका पान करे, चतुर्दशीमें कनेरसे स्कन्धकी पूजा करके दहीका भक्षण करे, पूर्णिमाको होमके पीछे

---

१ "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" यह द्वादशाक्षर मन्त्र है ।

हस्तां कृष्णवस्त्रेण वेष्टितां प्रस्थतिलोपरिस्थां कृत्वा धर्मराजनामभिः करवीरैः संपूज्य । "यदन्यजन्मनि कृतमिहजन्मनि वा पुनः । तत्सर्वं प्रशमं यातु मत्पापं तव पूजनात्॥" इति पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा, कृष्णप्रतिमां च संपूज्य, विप्राय दत्त्वा, विप्रान् संभोज्य, दक्षिणां दत्त्वा, पञ्चगव्यं प्राश्य, पौर्णमास्यां नक्तं भुंजीतेति लघुनारदीये। पञ्चगव्यप्राशनं षडक्षरेणेति हेमाद्रिः । हेमाद्रौ भविष्ये तु शाकैर्मुन्यन्नैर्वा पञ्चाहं वर्तनमुक्तम्। अन्तेऽप्युक्तम्–"यद्भीष्मपंचकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धम्॥ मुन्यन्नभोजनपरस्य नरस्य तस्मिन्निष्टं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा॥" इति । तथा पाद्मे–'पञ्चाहं पञ्चगव्याशी भीष्मायार्घ्यं च पंचसु । अहःस्वपि तथा दद्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत॥ सत्यव्रताय शुचये गांगेयाय महात्मने । भीष्मायैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥ वैय्याघ्रपद्यगोत्राय ॥ २॥" इति च । सव्येनानेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् । ' इति । कार्त्तिकशुक्लद्वादशीनिर्णयः । कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यां रेवतीनक्षत्रयोगरहितायां पारणं कार्यम्' । तदुक्तम्–" आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । संगमे न हि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशीर्हरेत् ।" इति । यदा तु रेवतीयोगरहिता द्वादशी सर्वथा न लभ्यते तदा रेवत्याश्चतुर्थपादं

लोहेकी पापकी प्रतिमा निर्माण करे जिसके खड्ग चक्र हाथमें हो, काला वस्त्र लिपटा हो, प्रस्थभर तिलोंके ऊपर रक्खी हो, धर्मराजके नामोंसे कनेरके फूलोंसे उसका पूजन करके इस मन्त्रसे पुष्पांजलि देकर कि, और जन्म वा इस जन्ममें जो पाप किये हैं वे सब तुम्हारे पूजनेसे दूर हों, कृष्णकी प्रतिमाका पूजन करके ब्राह्मणोंको देकर भोजन कराय दक्षिणा दे, पंचगव्यको भोजन कर पूर्णिमाको रात्रिमें भोजन करे, यह लघुनारदीयपुराणमें कहा है। पंचगव्यका भक्षण षडक्षर मंत्रसे करे, यह हेमाद्रिमें लिखा है। हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे तो शाक वा मुनियोंके अन्नसे पांच दिन बर्तना लिखा है और अन्तमें भी लिखा है कि, ११ से पूर्णिमातक जो पृथ्वीपर भीष्मपंचक प्रसिद्ध है उसमें जो मनुष्य मुनियोंके भोजनमें तत्पर रहता है उसको हे पांडव ! शार्ङ्गधन्वा भगवान् वांछित फल देते हैं। इसी प्रकार पद्मपुराणमें लिखा है कि, पांच दिन पंचगव्यका भोजन और पांचो दिन भीष्मको इस मंत्रसे अर्घ्य दे कि, सत्यव्रत पवित्र गंगाके पुत्र परममहात्मा जन्मसे ब्रह्मचारी वैयाघ्रपद गोत्री भीष्मको अर्घ्य देता हूं। और सम्पूर्ण वर्णोंको इसी मंत्रसे तर्पण करना चाहिये। कार्त्तिक शुक्ल १२ रेवती नक्षत्रके योगसे रहित हो तो पारणा करना, यही हेमाद्रिमें लिखा है कि, आषाढ भाद्रपद कार्त्तिकके शुक्लपक्षमें क्रमसे अनुराधा, श्रवण, रेवती नक्षत्र हों तो इनके संगममें भोजन न करे और करे तो १२ एकादशीका फल व्यर्थ होता है। जब रेवतीयोगसे रहित द्वादशी सर्वप्रकार न मिले तो तब रेवतीके चौथे पदको त्याग दे, इसका वाक्य पहले लिख आये हैं। लघुनारदीयमें लिखा है

वर्जयेत् । वचनं तु प्रागुक्तम् । लघुनारदीये-" कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य कृत्वा चैकादशीं नरः । प्रातर्दत्त्वा शुभान्कुम्भान्प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥" मदनरत्ने वाराहे-" एकादशी सोमयुक्ता कार्त्तिके मासि भामिनि । उत्तराषाढसंयोगे अनन्ता सा प्रकीर्तिता ॥ तस्यां यत्क्रियते भद्रे सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥" तत्र देवोत्थापनम् । अस्यामेव रात्रौ देवोत्थापनमुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे- " एकादश्यां च शुक्लायां कार्त्तिके मासि केशवम् । प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥" इति । मदनरत्ने भविष्ये-" कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु एकादश्यां पृथासुत । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवमुत्थापयेद्द्विजः ॥" रामार्चनचन्द्रिकादौ तु द्वादश्यामुक्तं ' पारणाहे पूर्वरात्रे घण्टादीन्वादयेन्मुहुः । ' इति । अत्र देशाचारतो व्यवस्था । " तत्रैव देवदेवस्य स्नानं पूर्वं महद्भवेत् । महापूजां ततः कृत्वा देवमुत्थापयेत्सुधीः ॥ " मन्त्रास्तु वाराहपुराणे उक्ताः-"ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्यसोमादिभिर्वन्दित वन्दनीय । बुद्ध्यस्व देवेश जगन्निवास मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव ॥ इयं तु द्वादशी देव प्रबोधार्थं विनिर्मिता । त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते । त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् ॥ उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव । गता मेघा वियच्चैव निर्मलं निर्मला दिशः ॥ शारदानि च

कि, कार्त्तिकशुक्लपक्षकी एकादशीको करके मनुष्य प्रातःकाल घटका दान करे तो हरिके मंदिरको जाता है । मदनरत्नमें वाराहपुराणका लेख है कि, हे भामिनी ! कार्त्तिक महीनेमें ११ सोमवारकी और उत्तराषाढ नक्षत्र हो तो अनन्ता नाम कथन की है, हे कल्याणी ! उसमें जो कर्म किया जाता है वह सब अनन्तफलदायक होता है । इसी रात्रिमें देवोत्थापन हेमाद्रिमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, कार्त्तिकशुक्ल एकादशीकी रात्रिको श्रद्धा और भक्तिसे युक्त मनुष्य केशवको जगावे । मदनरत्नमें भी भविष्यपुराणका लेख है कि, हे कुन्तीके पुत्र ! कार्तिकशुक्ल ११ को हे राजेन्द्र ! इस मंत्रसे ब्राह्मण परमदेवका उत्थापन करे । रामार्चनचंद्रिकामें तो द्वादशीको देवोत्थापन लिखा है कि, पारणाके दिन पूर्वरात्रिमें घंटे आदि बारंबार बजाकर देवोत्थापन करे, इसमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी उचित है । उसीमें देवको प्रथम महान् स्नान करावे और फिर महापूजा करके देवदेवको उठावे । मन्त्र तो वाराहपुराणमें ये लिखे हैं कि, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, कुबेर, इंद्र, सूर्य, सोम आदिके नमस्कार करने योग्योंको भी प्रणाम करने योग्य है । हे देवेश ! हे जगत्के निवास ! हे देव ! मंत्रके प्रभावसे सुखपूर्वक उठो । हे देव ! यह द्वादशी सब जगत्के मंगलके निमित्त शेषके ऊपर सोनेवाले आपने ही निर्मित की है, हे गोविंद ! उठो उठो, हे जगत्पते ! निद्राको छोड़ो त्यागो, हे जगत्पते ! आपके शयनसे यह जगत् शयन करजाता है और तुम्हारे उठनेसे चेष्टा करने लगता है; इससे हे माधव ! उठो उठो, मेघ जाते रहे, आकाश और दिशा निर्मल हुई, हे केशव ! मेरे दिये शरदृतुके फूलोंको स्वीकार करो ।

१ चार महीने देवशक्ति शयन कर जाती है, जो पालनाधार कहाती है; यही देवशयन है ।

पुष्पाणि गृहाण मम केशव । इदं विष्णुरिति प्रोक्तो मन्त्र उत्थापने हरेः ॥ ९ ॥" इति ॥ एवं देवमुत्थाप्य तदग्रे चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिं कुर्यात् ॥ चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिः । तदुक्तं भारते-"चतुर्थो गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः । कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत् ॥ " लघुनारदीये-"चातुर्मास्यव्रतानां च समाप्तिः कार्त्तिके स्मृता " ॥ मन्त्रश्च निर्णयामृते सनत्कुमारेणोक्तः-"इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो । न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन" ॥ इति । बोधिनीविधिः । अथ वाराहोक्तो बोधिनीविधिः-एकादश्यां रात्रौ कुंभे घृतपात्रोपरि हैमं माषमितं मत्स्यं पञ्चामृतेन संस्नाप्य, कुंकुमपीतवस्त्रयुगपद्माद्यैः संपूज्य, मत्स्यादिदशावतारान् संपूज्य, जागरं कृत्वा, प्रातर्देवमाचार्यं च वस्त्राद्यैः सम्पूज्य, "जगदादिर्जगद्रूपो जगदादिरनादिमान् । जगदाद्यो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दनः" इति नत्वा, दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति ॥ तथा ब्राह्मे-"महातूर्यरवै रात्रौ भ्रामयेत्स्यन्दने स्थितम् । उत्थितं देवदेवेशं नगरे पार्थिवः स्वयम् ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमं यस्य यत्कृतम् । कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्दद्याद्भक्त्या सदक्षिणम्" ॥ २ ॥ यस्य भक्ष्यस्य नियमः कृतस्तद्द्रव्यं दद्यादित्यर्थः । इदं शुक्रास्तादावपि कार्यम् । आशौचे तु पूजामन्येन कारयेत् ॥ कार्त्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च मन्वादिः सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । अन्यत् प्रागुक्तम् ॥ कार्त्तिकशुक्ल-

---

विष्णुके उठानेका ' इदं विष्णु ' यह मंत्र लिखा है, इस प्रकार देवको उठाकर उनके आगे चातुर्मास्य व्रतकी पूर्ति करे । यही भारतमें लिखा है कि, मनुष्य पुराने और किये हुए चातुर्मास्य व्रतको कार्तिकशुक्ल द्वादशीको सम्पूर्ण करे । लघुनारदीयमें कहा है कि, चातुर्मास्य व्रतोंकी पूर्ति कार्तिकमें लिखी है । मंत्र तो निर्णयामृतमें सनत्कुमारने लिखा है कि, हे देव ! आपकी प्रसन्नताके निमित्त यह व्रत मैंने किया, हे जनार्दन ! आपके प्रसादसे पूर्ण हो । अब वाराहपुराणमें लिखी बोधिनीका वर्णन करते हैं कि, एकादशीकी रात्रिको घटभर घीके पात्रके ऊपर मासेभर सुवर्णका मत्स्य बनाकर रक्खे और स्नान कराकर और कुंकुम दो पीले वस्त्र पद्म आदिसे पूजन कर और मत्स्य आदि दश अवतारोंकी अर्चा कर और जागरण करके और प्रातःकाल वस्त्र आदिसे देव आचार्यकी पूजा करके जगत्के आदि जगत्‌रूप जगत्के कारण अनादि जगत्के योनि जनार्दन मेरे ऊपर प्रसन्न हों, इस मंत्रसे प्रणाम करके दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे । यही ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, उठे हुए देवदेवेशको बड़े बाजोंके शब्दोंसे रथमें स्थित कराके राजा स्वयं नगरमें भ्रमावे । चार वर्षाऋतुके महीनोंमें जिसका जो नियम किया हो उसे ब्राह्मणोंको कहकर भक्तिसे दक्षिणासहित देना चाहिये, अर्थात् जिस भक्ष्यका नियम किया हो वह दे । यह शुक्रास्त आदिमें भी करना चाहिये, आशौचमें तो औरसे पूजा करावे । कार्तिककी द्वादशी और पौर्णमासी मन्वादि कही है, वह पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये, अन्य निर्णय प्रथम कह आये हैं । कार्तिकशुक्ल चतुर्दशी वैकुण्ठचतुर्दशी

चतुर्दशीनिर्णयः । कार्त्तिकशुक्लचतुर्दशी वैकुण्ठसंज्ञा । सा विष्णुपूजायां रात्रिव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तौ निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये—"कार्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप । सोपवासस्तु संपूज्य हरिं रात्रौ जितेन्द्रियः ॥" इति । तत्र विश्वेश्वरयात्रा । अस्यामेव विश्वेश्वरप्रतिष्ठादिनत्वात्तत्प्रीत्यर्थं यदोपवासादि क्रियते तदारुणोदयव्यापिनी ग्राह्या ॥ तदुक्तं त्रिस्थलीसेतौ सनत्कुमारसंहितायाम्—"वर्षे च हेमलम्बाख्ये मासे श्रीमति कार्तिके । शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति ॥ महादेवतिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके । स्नात्वा विश्वेश्वरो देव्या विश्वेश्वरमपूजयत् ॥२॥" इति । तत्पूर्वदिने चोपवासः कार्यः । "ततः प्रभाते विमले कृत्वा पूजां महाद्भुताम् । दण्डपाणेर्महाधाम्नि नवेऽस्मिन्कृतपारणः ॥" इति तत्रैवोक्तेः। शिवरहस्येऽपि पूजाजागराद्युक्तम्—"ततोऽरुणोदये जाते स्नात्वा स्नात्वा च भस्मना । संध्यां समाप्य विश्वेशं मामभ्यर्च्य यथाविधि । मद्भक्तान्भोजयामासुर्ऋषयो बुभुजुस्ततः ॥" इति । कार्तिकव्रतोद्यापनम् । अत्र कार्तिकव्रतोद्यापनं पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये उक्तम्—"अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं शृणु । ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां

है, वह विष्णुपूजामें रात्रिव्यापिनी ग्रहण करनी, दोनों दिन हो तो निशीथ और प्रदोषव्यापिनी लेनी । सोई हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, हे राजन् ! कार्तिकशुक्लचतुर्दशीको व्रतके पीछे जितेन्द्रिय होकर रात्रिमें भगवान्‌की पूजा करे, यही विश्वेश्वरकी प्रतिष्ठाका दिन है, इससे जब विश्वेश्वरकी प्रीतिके निमित्त व्रत आदि किया जाय तब अरुणोदयव्यापिनी लेनी चाहिये । यह त्रिस्थलीसेतुमें सनत्कुमारसंहिताके वाक्यसे लिखा है कि, हेमलम्ब नामके वर्षमें और लक्ष्मीवाले कार्तिकशुक्लचतुर्दशीके अरुणोदयके समय महादेवकी तिथिके ब्राह्ममुहूर्तमें मणिकर्णिकामें स्नान करके पार्वतीसहित विश्वेश्वरने देवीसहित विश्वेश्वरकी पूजा की थी । इससे प्रथम दिन व्रत करना चाहिये । सोई वहां लिखा है कि, प्रभातके समय महान् अद्भुत पूजाको विमल तीर्थपर करके दण्डपाणिके बड़े धामरूप इस वन (काशीमें) फिर पारण करे। शिवरहस्यमें भी पूजा और जागरण आदि कथन कर यह लिखा है कि, फिर अरुणोदयके समय भस्मसे स्नान करके और सन्ध्याको समाप्त कर मुझ विश्वेश्वरका विधिपूर्वक पूजन करके ऋषियोंने मेरे भक्तोंको भोजन कराया था, फिर आप भोजन किया । इसीमें कार्तिक व्रतका उद्यापन पद्मपुराणके कार्तिकमाहात्म्यमें लिखा है कि, इसके उपरान्त कार्तिकव्रतवाले उद्यापन विधिको सुनो कि, व्रतवाला कार्तिकशुक्ल चतुर्दशीको उद्यापन करे, तुलसीके ऊपर छोटासा मंडल और तुलसीकी जड़में सर्वतोभद्र निर्माण करे, उसके ऊपर

---

१ मर्यादा दिखानेको अपभी पूजा आपहीने की है ।

शुभम् । तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च ॥ तस्योपरिष्टात्कलशं पञ्चरत्नसमन्वितम् । पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादि मङ्गलैः । ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् ॥ त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत् । अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम् ॥ ततो गां कपिलां दद्यात्पूजयेद्विधिवद्गुरुम् ॥" इति । कार्त्तिकी पौर्णमासी परा ग्राह्या 'अमापौर्णमास्यौ परे' इति दीपिकोक्तेः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे–'पुण्या महाकार्त्तिकी स्याज्जीवेन्द्वोः कृत्तिकासु च ।' तथा–"आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्त्तिक्यां भवति क्वचित् । महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नानदानेषु चोत्तमा ॥ यदा तु याम्यं भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित् । तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप । सा महाकार्त्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ॥ ३ ॥" इति ॥ पाद्मे–"विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः । स योगः पद्मको नाम पुष्करेष्वपि दुर्लभः ॥ पद्मकं पुष्करे प्राप्य कपिलां यः प्रयच्छति । स हित्वा सर्वपापानि वैष्णवं लभते पदम् ॥ २ ॥" यमः–"कार्त्तिक्यां पुष्करे स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते । माघ्यां स्नातः प्रयागे तु मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥" मत्स्यावतारनिर्णयः । अस्यामेव सायंकाले मत्स्यावतारो

पञ्चरत्नसहित स्थापित किये हुए कलशपर सुवर्णकी पूजा गुरुकी आज्ञासे करे, गीत और बाजे आदि मङ्गलोंसे रात्रिको जागरण करे, फिर पौर्णमासीको स्त्रीसहित तीस ३० वा एक ब्राह्मणको निमंत्रण दे, 'अतोदेवा' इन दो मन्त्रोंसे तिल पायसकी आहुति देनी, फिर कपिला गौका दान और विधिसे गुरुकी पूजा करे । कार्त्तिककी पूर्णिमा परली लेनी चाहिये । कारण कि, दीपिकामें यह लिखा है कि, अमावस्या और पूर्णिमा परली लेनी चाहिये । यहां विशेष हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे वर्णन किया है कि, बृहस्पति चन्द्रवार कृत्तिका नक्षत्र हो तो कार्तिकी महापुण्यदायक होती है, इसी प्रकार जो कदाचित् कार्तिकीपूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्र हो वह तिथि स्नान और दानमें उत्तम और महती जाननी चाहिये । यदि उसमें याम्य नक्षत्र हो तो मुनियोंने वह तिथि बड़ी पुण्यवाली कही है । हे नराधिप ! यदि उसमें रोहिणी हो तो देवताओंको भी दुर्लभ वह महाकार्त्तिकी लिखी है । पद्मपुराणमें लिखा है कि, विशाखापर सूर्य और कृत्तिकापर चन्द्रमा हो तो यह पद्मक नामका योग पुष्करमें तो अत्यन्त दुर्लभ है । जो मनुष्य पद्मकयोगमें पुष्करमें गमन कर कपिला गौ देते हैं वे सब पापोंसे छूटकर विष्णुके पदको प्राप्त होते हैं । यमराजने कहा है कि, कार्त्तिकीको पुष्करमें और माघकी पूर्णिमाको प्रयागमें स्नान करनेसे सब पाप छूटते हैं । इसी कार्त्तिकीको ही सन्ध्याके समय मत्स्य-

---

१ "अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्तधामभिः । ऋ० १ । २ । ७ ॥"

जात इत्युक्तं पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये—"वरान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपी भवेत्ततः । तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम् ॥" इति । त्रिपुरोत्सवनिर्णयः । अत्र त्रिपुरोत्सव उक्तो भार्गवार्चनदीपिकायां—"पौर्णमास्याम् तु संध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः । दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये ॥ कीटाः पतंगा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः । दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्ति नित्यं श्वपचा हि विप्राः ॥ २ ॥" तत्र वृषोत्सर्गनिर्णयः । अत्र वृषोत्सर्गोऽतिप्रशस्तः । तदुक्तं मात्स्ये—"कार्त्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् ॥" इति । कार्त्तिकेयदर्शनम् । अत्र कार्त्तिकेयदर्शनमुक्तं काशीखण्डे—"कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम् । सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥" इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे कार्त्तिकमासः । अथ मार्गशीर्षमासः । तत्र वृश्चिकसंक्रांतिनिर्णयः । वृश्चिके पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्याः । शेषं प्राग्वत् । कालाष्टमीनिर्णयः । मार्गशीर्षसिताष्टमी कालाष्टमी, सा च रात्रिव्यापिनी ग्राह्या । "मार्गशीर्षसिताष्टम्यां कालभैरवसंनिधौ । उपोष्य जागरं कुर्वन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥" इति काशीखण्डात् रात्रिव्रतत्वावगतेः । 'रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्तव्याः संमुखी तिथिः ।' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च ।

अवतार हुआ है । यह पद्मपुराणके कार्तिकमाहात्म्यमें लिखा है कि, जिससे वरोंको देकर विष्णु मत्स्यरूपी हुए इससे उस तिथिमें दिया हुआ दान, होम, जप अक्षय फलको देता है । इसमें ही त्रिपुरोत्सव भार्गवार्चनदीपिकामें लिखा है कि, पूर्णिमाको सन्ध्याके समय त्रिपुरोत्सव करना चाहिये और इस मंत्रसे देवताओंके मन्दिरमें दीप देने कि, कीट, पतंग, मच्छर, वृक्ष और जल और स्थलमें जो जीव विचरते हैं वे और श्वपच और ब्राह्मण जो इस दीपकको देखते हैं उनको फिर जन्म लेना नहीं पड़ता । इसमें वृषोत्सर्ग करना अत्यन्त श्रेष्ठ है । सोई मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, जो मनुष्य कार्तिकको नक्तव्रत करके वृषोत्सर्ग करता है उसे शिवजीका परमपद प्राप्त होता है । इसमें ही स्वामिकार्त्तिकका दर्शन काशीखण्डमें लिखा है कि, कार्त्तिकमें कृत्तिकानक्षत्रके योगमें जो स्वामिकार्तिकका दर्शन करता है वह पुरुष सात जन्मतक महाधनी और वेदका पारगामी ब्राह्मण होता है ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां कार्त्तिकमासः समाप्तः ॥ वृश्चिकसंक्रान्तिमें सोलह घड़ी पुण्यकाल है, शेष निर्णय पूर्वके समान जानना । मार्गशिर कृष्ण अष्टमीको कालाष्टमी होती है, वह रात्रिव्यापिनी लेनी । कारण कि, इस काशीखण्डके कथनसे वह रात्रिका ही व्रत प्रतीत होता है कि, मार्गशिर कृष्ण अष्टमीको कालभैरवके निकट व्रत और जागरण करके सब पापोंसे रहित होता है और ब्रह्मवैवर्तके इस वाक्यसे रुद्रके सम्पूर्ण व्रतोंमें सम्मुखी (पहली) तिथि लेनी कही है । दोनों दिन किसी अंशमें रात्रिव्यापिनी हो तो पिछली

दिनद्वयेंऽशतो रात्रिव्याप्तावुत्तरैव । भैरवोत्पत्तेः प्रदोषकालीनत्वादिति केचित् । तन्न । शिवरहस्ये मध्याह्ने भैरवोत्पत्तेः श्रवणात् । तथा च तत्रैव-'नित्ययात्रादिकं कृत्वा मध्याह्ने संस्थिते रवौ ' इत्युपक्रम्य ब्रह्मणा रुद्रेऽवज्ञाते उक्तम्-" तदोग्ररूपादनघान्मत्तः श्रीकालभैरवः । आविरासीत्तदा लोकान्भीषयन्नखिलानपि ॥" इति । तत्रोपवासनिर्णयः । अत्रोपवास एव प्रधानमित्युक्तं तत्रैव-"उपोषणस्यांगभूतमर्घ्यदानमिह स्मृतम् । तथा जागरणं रात्रौ पूजा यामचतुष्टये ॥" सन्ध्यायामपि पूजैवोक्ता, तेन मध्याह्नव्यापिनी युक्ता। दिनद्वयेंऽशतः सम्पूर्णायां वा तद्व्याप्तौ पूर्वैव, पूर्वोक्तवचनात् । पारणा तु प्रातरेव-'यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा' इति वचनात् । कालभैरवपूजानिर्णयः । अत्र च कालभैरवपूजोक्ता त्रिस्थलीसेतौ-"कृत्वा च विविधां पूजां महासंभारविस्तरैः । नरो मार्गासिताष्टम्यां वार्षिकं विघ्नमुत्सृजेत्" ॥ तथा-"तीर्थे कालोदके स्नात्वा कृत्वा तर्पणमत्वरः । विलोक्य कालराजानं निरयादुद्धरेत्पितॄन्"इति। इयं च कार्त्तिक्यनन्तरागौडचान्द्राभिप्रायेण। मार्गशीर्षशुद्धपञ्चमी (नागपञ्चमी) निर्णयः। मार्गशीर्षशुक्लपञ्चम्यां नागपूजोक्ता हेमाद्रौ स्कांदे-"शुक्ला मार्गशिरे पुण्या श्रावणे या च पञ्चमी। स्नानदानैर्बहुफलानागलोकप्रदायिनी ॥" इति। इयं नागपूजायां षष्ठीयुतैव ग्राह्या-"पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका ॥" इति मदनरत्ने

लेनी; कारण कि, भैरवकी उत्पत्तिका समय प्रदोष है, यह किन्हींका कथन है सो ठीक नहीं है; कारण कि, शिवरहस्यमें मध्याह्नमें भैरवोत्पत्ति लिखी है, इसी प्रकार वहां भी लिखा है कि, नित्य यात्रा आदि करके जब सूर्य मध्याह्नमें प्राप्त हो यह प्रारम्भ करके ब्रह्माने रुद्रके समान जाना यह लिखा है, तब निष्पाप उग्ररूपसे उन्मत्तरूप कालभैरव मानो सब संसारको भय देते प्रगट हुए। इस तिथिमें व्रत ही प्रधान है वहां ही लिखा है कि, उपवासका अंग अर्घ्यदान, जागरण, चार प्रहरकी पूजा इसमें लिखी है, सन्ध्यामें भी पूजा लिखी है, इससे मध्याह्नव्यापिनी लेनी युक्त है, दोनों दिन किसी भागमें संपूर्ण व्यापिनी हो तो पूर्वोक्तवाक्यसे प्रथमकी ही लेनी, पारणा तो तीन प्रहरसे अधिक तिथि हो तो प्रातःकाल करनी चाहिये, इस वाक्यसे प्रातःकाल ही करे। इसमें ही त्रिस्थलीसेतुग्रन्थमें कालभैरवकी पूजा लिखी है कि, बड़ी सामग्रियोंके विस्तारसे मार्गशिरशुक्ल अष्टमीको पूजन करके मनुष्यके वर्षदिनके विघ्नको भैरव दूर करदेता है। ऐसे ही लिखा है कि, कालोदक तीर्थमें स्नान और शनैः २ तर्पण करके और कालराजा (भैरव) का दर्शन करके नरकसे पितरोंका छुटकारा करता है। यहां मार्गशिरसुदि अष्टमी कार्तिकीके उपरान्त गौण चांद्रमाससे लेनी चाहिये। मार्गशिरशुक्लपञ्चमीको हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे नागपूजा लिखी है कि, मार्गशिरशुक्ल वा श्रावणशुक्ल पञ्चमी स्नान और दानसे अनेक फल और नागलोक देनेवाली है, यह नागपूजामें षष्ठीसे युक्त चाहिये; कारण कि, मदनरत्नमें यह लिखा है कि, नागपूजामें पञ्चमी षष्ठीयुक्त लेनी

वचनात् । मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी (चम्पाषष्ठी) निर्णयः । मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी चम्पाषष्ठीति महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धा । सोत्तरयुता ग्राह्या 'षण्मुन्योः' इति युग्मवाक्यात् । 'पूर्वाह्णे दैविकं कुर्यात्' इति वचनादस्य च देवकर्मत्वात् । इयमेव योगविशेषेण चम्पेत्युच्यते । तदुक्तं ब्रह्माण्डपुराणे मल्लारिमाहात्म्ये—"मार्गे भाद्रपदे शुक्ला षष्ठी वैधृतिसंयुता । रविवारेण संयुक्ता सा चम्पेतीह कीर्तिता" इति । 'विशाखाभौमयोगेन सा चम्पेतीह कीर्तिता' इति मदनरत्ने पाठः । "मार्गशीर्षेऽमले पक्षे षष्ठ्यां वारेंऽशुमालिनः । शततारागते चन्द्रे लिंगं स्याद्दृष्टिगोचरम्" इति । इयं च योगवशेन पूर्वा परा वा कार्या । चम्पाषष्ठी सप्तमीयुतेति दिवोदासः । स्कन्दषष्ठीनिर्णयः । इयमेव स्कन्दषष्ठी । "कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥" इति भृगूक्तेः परेऽह्नि रात्राबाद्ययाममध्ये पारणासम्भवे इदम् । अन्यथोत्तरैवेति दिवोदासः ॥ अब्दपर्यन्तषष्ठीषु—"सेनाविदारक स्कन्द महासेन महाबल । रुद्रोमाग्निज षड्वक्र गंगागर्भ नमोऽस्तु ते ॥" इति राजतं स्कन्दं पूज्य विप्राय दद्यादिति दिवोदासः ॥ मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः । मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पिशाचविमोचनीतीर्थे श्राद्धं त्रिस्थलीसेतौ भट्टचरणैरुक्तम् । तस्य प्राप्तपैशाच्यस्वपित्राद्युद्देश्यकपार्वणत्वादपराह्णव्यापिनी ग्राह्या ।

चाहिये और सब पंचमी चतुर्थीयुक्त लेनी चाहिये । मार्गशिरशुक्लषष्ठी महाराष्ट्रोंमें "चम्पाषष्ठी" नामसे प्रसिद्ध है । वह उत्तरातिथिसे युक्त लेनी चाहिये; कारण कि, (षण्मुन्योः) षष्ठी और सप्तमीका द्विवाक्य है, पूर्वाह्णमें देवकर्म करना चाहिये, इससे यह भी देवकर्म है इसे ही योगविशेषसे चंपा वर्णन करते हैं । यही ब्रह्माण्डपुराणमें मल्लारिमाहात्म्यमें लिखा है कि, मार्गशिर और भाद्रपद शुक्लषष्ठी वैधृति रविवारसे युक्त हो तो चम्पा जाननी । मदनरत्नमें यह पाठ है कि, विशाखा मंगलके योगसे युक्त षष्ठी चंपा कही है । मार्गशिरशुक्ल षष्ठीको रविवार और विशाखापर चंद्रमा हो तो शिवजीके लिंगका उस दिन दर्शन होसकता है, यही योगके वशसे प्रथम वा पिछली करनी चाहिये । चंपाषष्ठी सप्तमीसे युक्त लेनी चाहिये, यह दिवोदासका मत है । यही स्कंदषष्ठी यह पूर्व तिथिसे युक्त लेनी चाहिये; कारण कि, भृगुजीने यह लिखा है कि, कृष्णाष्टमी, स्कंदषष्ठी, शिवरात्रि चतुर्दशी ये पूर्व तिथियोंसे युक्त लेनी चाहिये और तिथिके अंतमें पारणा करनी यह तब जानना चाहिये जब अर्द्धरात्रिसे प्रथम पारणा हो सके अन्यथा पिछली ग्रहण करनी । यहां दिवोदासका कथन है कि, वर्षदिनतक षष्ठियोंमें इस मंत्रसे चांदीके स्कंदकी पूजा करके ब्राह्मणको दे दे कि, हे सेनाविदारक ! हे स्कंद ! हे महासेन ! हे महाबल ! हे रुद्र ! हे पार्वतीपुत्र ! हे अग्निके पुत्र ! हे षण्मुख ! हे गंगाके गर्भसे उत्पन्न ! आपको प्रणाम है । मार्गशिरशुक्ल चतुर्दशीको पिशाचमोचन तीर्थपर श्राद्धत्रिस्थलीसेतु ग्रन्थमें भट्टोंने लिखा है, वह श्राद्ध पिशाच हुए अपने पिता आदिके निमित्त किया जाय तो पार्वण होगा, इससे अपराह्णव्यापिनी लेनी

अज्ञातनामपिशाचाद्युद्देश्यकत्वे त्वेकोद्दिष्टत्वात् मध्याह्नव्यापिनीति । कुलधर्मव्रतादौ तूत्तरैव–'चैत्रनभोगतेतरसिता स्यादूर्ध्वा' इति दीपिकोक्तेः । दत्तजयन्ती । मार्गशीर्षपौर्णमास्यां दत्तात्रेयोत्पत्तिः । तदुक्तं स्कान्दे सह्याद्रिखण्डे–"मार्गशीर्षे तथा मासि दशमेऽह्नि सुनिर्मले । मृगशीर्षयुते पौर्णमास्यां यज्ञस्य वासरे ॥ जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम् । तं विष्णुमागतं ज्ञात्वा अत्रिर्नामाकरोत्स्वयम् ॥ दत्तवान्स्वस्य पुत्रत्वाद्दत्तात्रेय इतीश्वरः॥२॥"इति। इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येति वृद्धाः। अष्टकानिर्णयः ॥ मार्गशीर्षपौर्णिमानन्तराष्टमी अष्टका । एवं पौषादिमासत्रयेऽपि । 'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा ' इत्याश्वलायनोक्तेः । 'एकस्यामष्टम्यां वै कार्या ' इति हरदत्तः । क्वचित् पंचम्यप्युक्ता–"प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यति ' इति पाद्मवचनात् । तत्पूर्वसप्तमीषु पूर्वेद्युः तत्पर नवमीऽन्वष्टकासु च श्राद्धमुक्तं कालादर्शे–" मार्गशीर्षे च पौषे च माघे प्रौष्ठे च फाल्गुने । कृष्णपक्षे च पूर्वेद्युरन्वष्टक्यं तथाष्टका ॥ " इति । यत्तु विष्णुः–'अमावास्यास्तिस्रोऽष्टकास्तिस्रोऽन्वष्टका' इति । यच्च कौर्मे–"अमावास्याष्टकास्तिस्रः पौषमासादिषु त्रिषु " इति । तच्चतुर्थ्यामनावश्यकत्वार्थम् । "या चाप्यन्या चतुर्थी

चाहिये. यदि जिसका नाम ज्ञात न हो ऐसे पिशाचके निमित्त किया जाय तो एकोद्दिष्ट होगा, इसमें मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिये, कुलधर्म व्रत आदिमें तो पिछली लेनी चाहिये। चैत्र नभोगतमें सिता ऊर्ध्वा होती है, यह दीपिकामें लिखा है । मार्गशीर्षशुक्ला पूर्णिमामें दत्तात्रेयकी उत्पत्ति है सोई स्कन्दके सह्याद्रिखण्डमें लिखा है–मार्गशिर मासके दशवें निर्मल दिनमें मृगशिर मासके दशवें मृगशिर नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा और बुधवारको देदीप्यमान पुत्रको सतीने उत्पन्न किया, उस आये हुए विष्णुको जानकर अत्रिने स्वयं उनका नामकरण किया कि, अपने पुत्रके निमित्त देनेसे आपका नाम दत्तात्रेय ईश्वर है, यह प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये, यह वृद्ध कहते हैं। मार्गशिरकी पूर्णिमाके अनन्तर अष्टमी अष्टका लिखी है, इसी प्रकार पौष आदि तीन महीनोंकी अष्टमी अष्टका जाननी चाहिये, कारण कि, आश्वलायनने यह लिखा है कि, हेमंत शिशिरके चार वा एक महीनेकी महीनोंकी कृष्णाष्टमी अष्टका होती है, एक अष्टमीको एक अष्टका करनी चाहिये यह हरदत्तने कही है. कहीं पांचवीं अष्टका लिखी है, कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि, भाद्रपदकी अष्टका फिर पितृलोकमें होगी, उनसे पहिली सप्तमी और अगली नवमी अन्वष्टका कहाती हैं, उनमें भी कालादर्शमें श्राद्ध लिखा है कि, मार्गशिर, पौष, माघ, भाद्रपद, फाल्गुन इनके अष्टमीसे प्रथम और पिछले दिन अन्वष्टका होती है। जो विष्णुने यह लिखा है कि, अमावास्या और तीन अष्टका और तीन अन्वष्टका और जो कूर्मपुराणमें यह लिखा है कि, अमावास्या और पौष आदि तीन महीनोंमें तीन अष्टका और तीन अन्वष्टका होती है, वे उस निमित्त हैं कि, चौथी अष्टकाकी आवश्यकता नहीं; कारण कि,

स्यात्तां च कुर्यात्प्रयत्नतः" इति वायुब्रह्माण्डपुराणात्। 'श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते' इति विष्णूक्तेरिति शूलपाणिः। शाखाभेदाद्व्यवस्थेति तत्त्वम्। वायुब्रह्माण्डयोः-"आद्यापूपैः सदा कार्या मांसैरन्या सदा भवेत्। शाकैः कार्या तृतीया स्यादेष द्रव्यगतो विधिः॥" पौषादिः क्रमः। अन्वष्टका तु प्रागेव निर्णीता। तत्राष्टम्यपराह्णव्यापिनी ग्राह्या। 'अथाच्छादनपर्यन्तं श्राद्धं पार्वणवद्भवेत्' इत्याश्वलायनकारिकोक्तेरपराह्णकालत्वाच्च पार्वणस्य। पूर्वेद्युरष्टका श्राद्धयोस्तु अष्टम्यनुरोधेन निर्णयः। अत एव सूत्रम्-'पूर्वेद्युः पितृभ्यो दद्यात् अपरेद्युरन्वष्टक्यम्' इति च। अत्र कामकालौ विश्वेदेवौ। इष्टिश्राद्धे ऋतुदक्षावष्टम्यां कामकालौ' इति सायणीये शंखोक्तेः। श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तनिर्णयः। अत्र श्राद्धाकरणप्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने-"एभिर्द्युभिर्जपेन्मन्त्रं शतवारं तु तद्दिने। अन्वष्टक्यं यदा न्यूनं संपूर्णं याति सर्वथा॥" इति। अशक्तौ त्वाश्वलायनः-'अथ श्वोभूतेऽष्टकाः। पशुना स्थालीपाकेन चाप्यनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेषामष्टकेति न त्वेवानष्टकः स्यात्' इति। मार्गशीर्षादिषु मलमासे सति तत्राष्टका

वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि, जो चौथी अष्टका है उसको भी प्रयत्नसे करे। विष्णुने भी लिखा है कि, इनमें जो श्राद्ध नहीं करता वह नरकमें जाता है, यह शूलपाणिने लिखा है, इसमें तत्त्व यह है कि, शाखोभेदसे व्यवस्था समझनी चाहिये। वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि, पहली अष्टका पूओंसे, दूसरी मांसोंसे, तीसरी शाकोंसे यही पौषआदि क्रमसे द्रव्यकी विधि कही है। अन्वष्टकाका निर्णय तो प्रथम कह आये, उसमें अपराह्णव्यापिनी अष्टमी लेनी चाहिये, कारण कि, अष्टकामें आच्छादन पर्यंत पार्वणके समान श्राद्ध होता है, इस आश्वलायनके कथनसे पार्वणका अहराह्णकाल है, प्रथम दिन अन्वष्टका श्राद्धमें तो अष्टमीके अनुरोधसे निर्णय जानना चाहिये, इसीसे यह सूत्र है, प्रथम दिन पितरोंको दे, पिछले दिन अन्वष्टका करे। इसमें काम और काल विश्वेदेवा होते हैं, कारण कि, सायनीय ग्रंथमें शंखका कथन है कि, इष्टिश्राद्धमें ऋतुदक्ष और अष्टमीमें कामकाल विश्वेदेवा होते हैं। इसमें श्राद्ध न करे तो ऋग्विधानमें भी प्रायश्चित्त कथन किया है कि, अन्वष्टका श्राद्धसे शून्य होजाय तो (एभिर्द्युभिः) इस मंत्रको सौ वार जपना चाहिये, उससे सर्वथा सम्पूर्ण हो जाता है, अशक्तिमें तो आश्वलायनने यह लिखा है कि, अगले दिन पशु वा स्थालीपाकसे अन्वष्टका करे, वा वृषके निमित्त यवोंको लावे, अथवा जंगलकी सूखी घासको अग्निसे जला देना, इस प्रकार अष्टका नष्ट नहीं होती। मार्गशिर आदि चारोंमें मलमास आपड़े तो अष्टका न करनी, यह नारायणवृत्तिमें

---

१ इस प्रकार आश्वलायनसे भिन्नोंका फाल्गुन अष्टमी और सब सप्तमियोंमें श्राद्ध न करनेपर भी दोष नहीं है। अपनी शाखाको त्यागकर जो परशाखामें वर्तता है उसकी वह चेष्टा भित हो जाती है अर्थात् अधिक फलवती नहीं होती॥ १९२॥

न कार्या। चतुर्णामिति ग्रहणादित्युक्तं नारायणवृत्तौ तथा। काठकगृह्येऽपि–"महालयाष्टकश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत्। स्पष्टमासविशेषाख्या विहितं वर्जयेन्मले॥" इति। मार्गशिरसि रविवारव्रतम्। मार्गादिरविवारेषु काम्यं व्रतमुक्तं हेमाद्रौ। तत्र भक्ष्याण्युक्तानि हंसे सौरधर्मे–पत्रत्रित्वं तुलस्यास्त्रिपलमथ घृतं मार्गशीर्षादि भक्ष्यं मुष्टीनां त्रिस्तिलानां त्रिपलदधि तथा दुग्धकं गोमयं च। त्रित्वं तोयाञ्जलीनां त्रिमरिचकमथो त्रिःपलाः सक्तवः स्युर्गोमूत्रं शर्करासद्धविरितिविधिना भानुवारे क्रमेण॥" इति।
इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे मार्गशीर्षमासः समाप्तः॥
अथ पौषमासः (धनुःसंक्रांतिः)। धनुस्संक्रमे पराः षोडश घटिकाः पुण्याः। अन्यत्प्राग्वत्। अत्रोत्सर्जननिर्णयो वक्तव्योपाकर्मप्रसङ्गात् प्रागेवोक्तः। पौषाष्टमी। कल्पतरौ भविष्ये–"पौषे मासे यदा देवि शुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत्। तस्यां स्नानं जपो होमस्तर्पणं विप्रभोजनम्। मत्प्रीतये कृतं देवि शतसाहस्रिकं भवेत्॥" अत्रैव रोहिण्याद्रार्योगे पुण्यतमत्वं तत्रैव ज्ञेयम्। पौषैकादशी। पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः। सा चोक्ता प्राक्। पौषपूर्णिमानन्तराः सप्तम्यष्टमीनवम्योऽष्टकाद्याः प्रागुक्ताः॥ अर्धोदयनिर्णयः। पौषामावास्यामर्धोदयो योगविशेषः। तदुक्तं मदनरत्ने महाभारते–"अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः। अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः॥" इति। पौषमाघयोर्मध्यवर्तिनी पौर्णमास्युत्तरामावास्ये-

---

लिखा है। काठकगृह्यमें भी लिखा है कि, महालय अष्टकाके श्राद्ध उपाकर्म आदि जो कर्म प्रसिद्ध नामके मासमें लिखे हैं उन्हें मलमासमें न करना। हेमाद्रिमें मार्गशिर आदिके रविवारोंमें काम्यव्रत लिखा है और उसमें भक्षणके योग्य पदार्थ संग्रहके सौरधर्ममें लिखे हैं कि, तुलसीके तीन पत्ते, घी तीन पल, तीन मुट्ठी तिल, तीन पल दही, तीन पल दूध, तीन पल गोबर, तीन अंजली जल, तीन मिर्च, तीन पल सत्तू, तीन पल गोमूत्र, तीन पल शक्कर, तीन पल श्रेष्ठ हवि ये मार्गशिर आदि महीनेके रविवारोंमें क्रमसे भक्षण करने चाहिये॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां मार्गशीर्षनिर्णयः समाप्तः॥ धनकी संक्रान्तिमें अगली सोलह घड़ी पवित्र काल है; शेष निर्णय पूर्वके तुल्य जानना चाहिये। यहां उत्सर्जनका निर्णय कहना था सो उपाकर्मके प्रसंगसे पहिले कथन कर आये हैं। कल्पतरुग्रन्थमें भविष्यका कथन है कि, हे देवि! पौष शुक्ल अष्टमीको जब बुधवार हो उसमें स्नान, जप, होम, तर्पण, ब्राह्मणभोजन मेरी प्रसन्नताके निमित्त कराया जाय तो लक्षगुना फल होता है। उसमें यदि रोहिणी वा आर्द्रा नक्षत्रका योग हो तो महापुण्य होता है, सो कल्पतरु ग्रन्थसे ही जानना चाहिये। पौषशुक्ल एकादशी मन्वादि है, उसे प्रथम कह आये हैं। पौषकी पूर्णिमाके उपरान्त सप्तमी, अष्टमी, नवमी, अष्टका आदि प्रथम कह आये हैं। पौषकी अमावस्याको अर्धोदय नामका विशेष योग होता है, वही मदनरत्नमें महाभारतके वाक्यसे लिखा है कि, रविवार, व्यतीपात, श्रवणसे युक्त पौष और माघकी अमावस्या हो सो

स्यर्थ इति भट्टाः। मदनरत्ने पौषस्य च माघस्य वेत्यर्थ उक्तः। तन्न। हेमाद्रिविरोधात्। तत्र हि माघ एवोक्तः। तथा–'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन' इति। इदमर्थमन्यनिबन्धेष्वभावान्निर्णयामृतमात्रोक्तेर्निर्मूलमेव। तेन हेमाद्र्यादिमते रात्रावर्धोदयो भवत्येव। केचित्तु–'किंचिदूनो महोदयः' इत्याहुस्तन्निर्मूलम्। हेमाद्रौ मदनरत्ने च स्कान्दे–"माघामायां व्यतीपाते आदित्ये विष्णुदैवते। अर्धोदयं तदित्याहुः सहस्रार्कग्रहैः समम्॥" तत्रैव–"माघमासे कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां रवेर्दिने। वैष्णवेन तु ऋक्षेण व्यतीपाते सुदुर्लभे॥" व्रतं कुर्यादित्यग्रेऽन्वयः। तत्रैव–"ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णीः पलसंख्यया। प्रतिमास्तु प्रकर्तव्यास्तदर्धेन द्विजोत्तम॥ सार्धं शतत्रयं शंभोर्द्रोणानां तिलपर्वतः। कर्तव्यौ पर्वतौ विष्णुरुद्रयोः पूर्वसंख्यया॥ २॥" शंभुरत्र ब्रह्मा। 'शय्यात्रयं ततः कुर्यादुपस्करसमन्वितम्।' तिलैर्होमं कृत्वा प्रतिमां दद्यादित्युक्तं स्कान्दे–"अर्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम्। शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसंमिताः। यत्किंचिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम्॥" इति। तत्र दानविशेषः। अत्र दान-

अर्धोदय योग जानना, वह कोटि सूर्यके ग्रहणोंके तुल्य होता है। भट्ट यह कहते हैं कि, पौष और माघके बीचकी पौषकी पूर्णिमा और उससे अगली अमावस्या लेनी चाहिये। मदनरत्नमें यह कहा है कि, पौष और माघ दोनोंकी लेनी चाहिये, सो ठीक नहीं है; क्योंकि, हेमाद्रिका विरोध है उसमें माघ ही लिखा है। ऐसे ही दिनमें यह योग उत्तम है, रात्रिमें किसी प्रकार यह ठीक नहीं। यह अर्थ और ग्रन्थोंमें न होनेसे और केवल निर्णयामृतमें ही लिखा होनेसे निर्मूल है, इससे हेमाद्रिके मतमें रात्रिमें अर्धोदय होता ही है। कोई तो कुछ न्यून महोदय कहते हैं, सो निर्मूल है। हेमाद्रि और मदनरत्नमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, माघकी अमावस्याको व्यतीपात, रविवार, श्रवण नक्षत्र हो तो सहस्र सूर्य ग्रहणोंके तुल्य उसको अर्द्धोदय कहते हैं। वहां ही लिखा है कि, माघमासके कृष्णपक्षकी पञ्चदशीको रविवार, श्रवण नक्षत्र, व्यतीपात हो तो इस दुर्लभ दिनमें व्रत करना चाहिये। वहां ही लिखा है कि, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! ब्रह्मा विष्णु शिवकी एक वा आधेपल सुवर्णकी उत्तम प्रतिमा निर्माण करनी, साढ़े तीनसौ द्रोणभर तिलोंका पर्वत ब्रह्माका और इतने ही पर्वत विष्णु और शिवके लिये निर्माण करे। इस वाक्यमें शम्भुसे ब्रह्माका ग्रहण है। फिर सामग्री सहित तीन शय्या निर्माण करे, तिलोंसे हवन करके प्रतिमाका दान करे, यह स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, अर्द्धोदयके प्राप्त होनेपर सब जल गंगाके समान हैं और सब ब्राह्मण शुद्धात्मा ब्रह्माके समान होते हैं, इसमें जो कुछ दान दिया जाता है वह मेरुके समान है। इसमें

१ यह योग दिनमें ही उत्तम है वा आपत्तिमें उषःकालमें भी उत्तम है परन्तु धर्मपरायण पुरुष रात्रिमें इसकी प्रशंसा नहीं करते हैं। इस प्रकार नव्य नागरखण्डसे रात्रिमें योग निर्मूल कहते हैं॥ १९४॥

विशेषो निर्णयामृते स्कान्दे–"चतुःषष्टिपलं मुख्यममत्रं तत्र कारयेत् । चत्वारिंशत्पलं वाथ पंचविंशतिरेव वा ॥" अमत्रं पात्रम् । तच्च कांस्यमयमित्युक्तं तत्रैव–'एवं सुघटितं कार्यं कांस्यभाजनमुत्तमम्' इति । तथा–"निधाय पायसं तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत् । पद्मस्य कर्णिकायां तु कर्षमात्रं सुवर्णकम् ॥ तदभावे तदर्धं वा तदर्धं वापि कारयेत् । भूमौ तु तण्डुलैः शुद्धैः कृत्वाष्टदलमुत्तमम् ॥ अमत्रं स्थापयेत्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । तेषां पूजा ततः कार्या श्वेतमाल्यैस्तु शोभनैः॥ वस्त्रादिभिरलंकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ४ ॥" मन्त्रस्तु–"सुवर्णपायसामत्रं यस्मादेतत्त्रयीमयम् । आपत्तेस्तारकं यस्मात्तद्गृहाण द्विजोत्तम ॥ समुद्रमेखलां पृथ्वीं सम्यग्दातुश्च यत्फलम् । तत्फलं लभते मर्त्यः कृत्वेदं दानमुत्तमम् ॥ २ ॥" इति । इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पौषमासः समाप्तः ॥ अथ माघमासः । माघस्नानम् । तत्र विष्णुः–"तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भवेत् । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघस्नाने महाफलम् ॥" इति सौरमास उक्तः । ब्राह्मे तु सावन उक्तः–"एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषमासे समारभेत् । द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा शुक्लपक्षे समापनम् ॥" इति । पाद्मेऽपि–"पौषस्यैकादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः। मासमात्रंनिराहारस्त्रिकालं स्नानमाचरेत्॥ त्रिकालमर्चयेद्विष्णुं त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः।

दान विशेष भी निर्णयामृतमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, ६४ वा चालीस वा पच्चीस पल भरका काँसेका पात्र निर्माण करे। सो भी इस वाक्यसे कांसेका लिखा है कि, इस प्रकार कांसेके पात्रको भले प्रकार गढ़वावे । इसी प्रकार उसमें खीर रखकर ८ दलका पद्म लिखे, उस पद्मकी कर्णिकामें १ कर्षभर वा उससे आधा वा उससे भी आधा सुवर्णका पात्र करावे। पृथ्वीमें चावलोंसे श्रेष्ठ अष्टदल निर्माण करे; उसपर ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप उस पात्रको स्थापित करे, शोभन श्वेत पुष्पोंसे तीनों देवताओंकी अर्चा करे और वस्त्र आदिसे अलंकृत करक ब्राह्मणको निवेदन करे। मन्त्र यह है कि, जिससे यह सुवर्ण सहित पायसका पात्र ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप और आपत्तिका निवारक है, इस कारण हे द्विजोत्तम ! तुम इसे ग्रहण करो। समुद्रपर्यन्त पृथ्वी भले प्रकार दान करनेसे जो फल मिलता है मनुष्योंको इस दान करनेसे वही फल प्राप्त होता है। इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां पौषमासः समाप्तः ॥ वहां विष्णुका यह वाक्य है कि, तुला, मकर और मेषकी संक्रांतिमें प्रातःस्नान, हविष्यका भोजन, ब्रह्मचर्य सदा करे, माघके स्नानका बड़ा फल है। यहां सौरमास लिखा है, ब्रह्मपुराणमें तो सावनमास लिखा है कि, पौषशुक्ल ११ को आरम्भ करे; द्वादशी वा पूर्णिमाको शुक्लपक्षमें सम्पूर्ण करे। पद्मपुराणमें भी लिखा है कि, पौषशुक्ल ११ से भूमिपर शयन करे, निराहार रहे, त्रिकाल स्नान करे, त्रिकाल विष्णुकी अर्चा करे, भोगोंको त्याग दे, जितेन्द्रिय रहे। हे विद्याधरोत्तम ! ये सब माघशुक्ला एकादशीतक करे।

माघस्यैकादशीं शुक्लां यावद्विद्याधरोत्तम ॥ २ ॥" इति त्रिकालस्नानं मासोपवासविषयम् । निराहार इत्युक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदये त्वन्यथोक्तम् । विष्णुः-"दर्शं वा पौर्णमासीं वा प्रारभ्य स्नानमाचरेत् । पुण्यान्यहानि त्रिंशत्तु मकरस्थे दिवाकरे ॥" अत्र दर्शमिति शुक्लादिमुख्यचान्द्राभिप्रायेण । अयं तु पक्षो नेदानीं प्रचरति स्नाने अधिकारिनिर्णयः । अत्राधिकारिणो भविष्ये-"ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः ॥ स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलम् ॥" पाद्मे-'सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ यथा नृप । ' ब्राह्मे-"उष्णोदकेन वा स्नानमशक्ते सति कुर्वते । दृढेषु सर्वगात्रेषु उष्णोदं न विशिष्यते ॥" वैष्णवामृते गौडनिबन्धे स्कान्दे-"पौष्यां तु समतीतायां यावद्भवति पूर्णिमा । माघमासस्य तावद्धि पूजा विष्णोर्विधीयते ॥ पितॄणां देवतानां च मूलकं नैव दापयेत् । ब्राह्मणो मूलकं भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ अन्यथा याति नरकं क्षत्रविट्शूद्र एव च । वर्जनीयं प्रयत्नेन मूलकं मदिरोपमम्॥" अथ माघे मलमासे सति निर्णयः । यदा तु माघो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वये स्नानं तन्नियमाश्च कार्याः । मासोपवासचान्द्रायणादि तु मलमास एव समापयेत् । तदुक्तं दीपिकायाम्-'नियतत्रिंशद्दिन-

---

यह वाक्य त्रिकाल स्नान मासोपवासके निमित्त है । कारण कि, निराहार रहना लिखा है । पृथ्वीचन्द्रोदयमें तो दूसरा प्रकार लिखा है, विष्णुका वाक्य है कि, अमावास्या वा पूर्णिमासे आरम्भ करके मकरके सूर्यमें तीस दिनतक स्नान करे, इस वाक्यमें अमावास्याका कहना शुक्ला आदि मुख्य चन्द्रमासके अभिप्रायसे है, परन्तु इस पक्षका आजकल प्रचार नहीं है । इसके अधिकारी भी भविष्यपुराणमें लिखे ह कि, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, भिक्षुक, बालक, वृद्ध, युवा, नर, नारी, नपुंसक माघमासमें शुभतीर्थमें स्नान करके मनोवाञ्छित फलको प्राप्त होते हैं। पद्मपुराणमें लिखा है कि, हे राजन् ! विष्णुकी भक्तिके तुल्य इसके सब अधिकारी हैं । ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, शीतलजलसे स्नान न हो सके तो गरम जलसे स्नान करे, उनके दृढ सब गात्रोंको उष्णजल भेदन नहीं करता । वैष्णवामृत गौडनिबंधमें स्कंदने यह कहा है कि, पौषकी पूर्णिमा बीतनेपर माघकी पूर्णिमा आ जावे तबतक विष्णुका पूजन करे, पितर और देवताओंके निमित्त मूली न दे और ब्राह्मण मूलीको खाकर चान्द्रायण व्रत करे, न करे तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नरकमें जाते हैं, इससे मदिराके तुल्य (सलगम) मूलीको प्रयत्नसे त्याग दे । जब माघ मलमास हो जाय तब काम्य कर्मोंकी पूर्तिका उसमें निषेध है, इससे दोनों महीनोंमें स्नान और उसके नियम करने और चान्द्रायण आदि मासोपवासको तो मलमासमें ही पूर्ण करना । वही दीपिकामें लिखा है कि, तीस

त्वाच्छुभे मास्यारभ्य समापयेत्। 'मलिने मासोपवासव्रतम्' इति। मासोपवास-पदं चान्द्रायणादेरुपलक्षणम्। स्नानारंभे च मन्त्रो विष्णुनोक्तः-"तत्र चोत्थाय नियमं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम्। माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येऽहं देव माधव॥ तीर्थस्यास्य जले नित्यमिति संकल्प्य चेतसि।" इति। प्रत्यहं मन्त्रश्च पाद्मे-'दुःख-दारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च। प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाश-नम्॥ मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव। स्नानेनानेन मे देव यथोक्त-फलदो भव। इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनसमन्वितः॥ २॥" इति। प्रत्यहं सूर्यायार्घ्यम्। मन्त्रस्तु पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे-"सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम। त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा॥" इति। स्नानकालश्च सूर्योदयः। त्रिस्थलीसेतौ-"मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यभ्युदिते रवौ।" इति। 'माघमासे रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ।' इति च पाद्मवचनात्। "संप्राप्ते माघमासे तु तपस्विजनवल्लभे! क्रोशन्ति सर्ववारीणि समुद्गच्छति भास्करे॥ पुनीमः सर्वपा-पानि त्रिविधानि न संशयः।" इति नारदीयोक्तेः। "यो माघमास्युषसि सूर्य-कराभितप्ते स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे। उद्धृत्य सप्तपुरुषान्पितृमातृवंश्यान् स्वर्गं

दिनका नियम होनेसे शुभमासमें आरम्भ करके मासोपवासको मलमासमें ही पूर्ण कर दे। यहां मासोपवास पद चान्द्रायण आदिका उपलक्षण जानना। स्नानारंभके मंत्र विष्णुने लिखे हैं कि, उठकर विधिपूर्वक नियमको स्वीकार करे। हे माधव! इस सम्पूर्ण माघमासमें इस तीर्थके जलमें नित्यस्नान करूंगा, यह संकल्प करे। प्रतिदिनका मंत्र पद्मपुराणमें लिखा है कि, दुःखदारिद्र्यनाशक और लक्ष्मीसहित विष्णुकी प्रसन्नताके निमित्त आज माघमासमें पापोंका विनाश करनेवाला स्नान करता हूं, मकरके सूर्य और माघमासमें हे गोविंद! हे अच्युत! हे माधव! इस स्नानसे मुझे शास्त्रोक्त फल दो, इस मंत्रको पढ़कर मौनको धारण करके स्नान करे। प्रतिदिन सूर्यके अर्घ्यका मन्त्र पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, हे सूर्य! हे परमधाम! तुम सबकी रचना और पालना करनेवाले हो, तुम्हारे तेजसे भ्रष्ट हुआ मेरा पाप सहस्र प्रकारसे नष्ट हो। स्नानका काल सूर्योदय त्रिस्थलीसेतुमें लिखा है कि, जो मकरके सूर्यके उदयमें नहीं नहाता और सूर्यके किंचित् उदयमें जल शब्द करते हैं कि, हममें कोई स्नान करे, यह पद्मका बचन है। नारदीयमें कहा है कि, तपस्वीजनोंका प्रिय जब माघमास आता है तब सूर्योदयके समय सब जल शब्द करते हैं कि, हम तीन प्रकारके सब पापोंको पवित्र(शान्त)करते हैं, इसमें संशय नहीं करना चाहिये। भविष्यपुराणमें भी लिखा है कि, जो माघमासमें प्रातःकाल सूर्यकी किरणोंसे तपे हुए सुन्दर नदीके प्रवाहमें स्नान करता है वह माता और पिताके कुलके सात पुरुषोंका उद्धार करके देवरूपको धारण कर स्वर्गको

प्रयात्यमरदेहधरो नरोऽसौ ॥ " इति भविष्योत्तरवचनाच्च । ब्राह्मे त्वरुणोदय उक्तः–"अरुणोदये तु संप्राप्ते स्नानकाले विचक्षणः । माधवांघ्रियुगं ध्यायन्यः स्नाति सुरपूजितः ॥" इति । तथा–"अरुणोदयमारभ्य प्रातःकालावधि प्रभो । माघस्नानवतां पुण्यं क्रमात्तत्रावधारणा ॥ उत्तमं तु सनक्षत्रं मध्यमं लुप्ततारकम् । सवितर्युदिते भूप ततो हीनं प्रकीर्तितम् ॥ " इति । तेनात्र शक्त्यपेक्षया व्यवस्था । इदं च स्नानं प्रयागेऽतिप्रशस्तम् । "काश्याः शतगुणं प्रोक्तं गङ्गायमुनसंगमे । सहस्रगुणिता सापि भवेत्पश्चिमवाहिनी ॥ पश्चिमाभिमुखी गङ्गा कालिंद्या सह संगता । हंति कल्पकृतं पापं सा माघे नृप दुर्लभा ॥" इत्यादिपाद्मादिवचोभ्यः । विस्तरस्तु मत्पितामहकृतप्रयागसेतौ ज्ञेयः । ब्राह्मे–"यत्र कुत्रापि यो माघे प्रयागस्मरणान्वितः । करोति मज्जनं तीर्थे स लभेद्गाङ्गमज्जनम् ॥ " तथा समुद्रेऽप्यतिप्रशस्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे–"माघे मासि च यः स्नायान्नैरन्तर्येण भावतः । पौण्डरीकफलं तस्य दिवसे दिवसे भवेत् ॥" माघस्नानं काम्यमेवेति भट्टाः । विष्ण्वादिवाक्ये सदावश्यशब्दान्नित्यत्वावगते-

---

गमन करता है । ब्रह्मपुराणमें तो अरुणोदयके समय स्नान लिखा है, स्नानका समय अरुणोदय जब हो तब है, उस समय बुद्धिमान् मनुष्य जो कृष्णके चरणोंका स्मरण करता हुआ स्नान करता है वह देवताओंसे पूजित होता ह । इसी प्रकार अरुणोदयसे प्रारम्भ कर और प्रातःकाल पर्यंत जो माघके स्नान करनेवाले हैं ह स्वामिन् ! उनका पुण्य क्रमसे इस प्रकार जानना चाहिये कि, जिस समय तारे हों उस समयका स्नान उत्तम और तारे अस्त हो गये हों उस समयका मध्यम और सूर्योदयमें उससे हीन लिखा है, इससे यहां शक्तिके अनुसार व्यवस्था है । यह स्नान इस पद्मपुराणके वाक्योंसे प्रयागमें उत्तम लिखा है कि, गंगाके और यमुनाके संगममें स्नानका काशीसे सौगुणा पुण्य लिखा है, यदि वह भी पश्चिमको बहनेवाली हो तो सहस्रगुणा पुण्य हाता ह, पश्चिमकी ओर बहनेवाली गंगा यदि कालिंदीके संग मिले तो वह माघमासमें स्नान करनेसे कल्पोंके किये हुए भी पापोंको नष्ट करती है, हे राजन् ! वह माघमासमें बड़ी दुर्लभ है । इसका विस्तार तो हमारे पितामहके किये हुए प्रयागसेतु ग्रन्थसे जानना चाहिये । ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, माघमासमें जिस किसी दिन प्रयागका स्मरण करता हुआ जो तीर्थमें स्नान करता है वह गंगाके स्नानके फलको प्राप्त होता है, ऐसे ही समुद्रमें भी अतिश्रेष्ठ है, वही पृथ्वीचन्द्रोदयके प्रभासखण्डमें लिखा है कि, जो माघमासमें निरन्तर प्रीतिसे स्नान करता है उस पुरुषको दिन-दिनमें पौण्डरीक यज्ञका फल मिलता है । किन्हीं भट्टोंका तो यह कथन है कि, माघका स्नान काम्य ही है नित्य नहीं है और विष्णु आदिके वाक्योंमें तो सदा और अवश्य शब्दसे

नित्यकाम्यमिति तु युक्तम् । मासपर्यन्तं स्नानासम्भवे तु त्र्यहमेकाहं वा स्नायात् । 'महामाघीं पुरस्कृत्य सन्नौ तत्र दिनत्रयम्' इति लिङ्गात् । "अस्मिन्योगे त्वशक्तोऽपि स्नायादपि दिनत्रयम् । प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य यत्फलम् ॥ नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते भुवि ॥" इति पाद्मादिवचनात् । अत्र मकरसंक्रमो रथसप्तमी माघी त्र्यहमित्येके । माघशुक्लदशम्यादीत्यन्ये । मकराद्यत्र्यह इत्यपरे । माघमासाद्यत्र्यह इति केचित् । त्रयोदश्यादीति बहवः । 'महामाघी पुरस्कृत्य सन्नौ तत्र दिनत्रयम्' इति पाद्मोक्तेः ॥ एतस्यार्थवादत्वाद्यत्किंचिद्दिनत्रयमिति भट्टाः । तत्त्वं तु–'संदिग्धेषु वाक्यशेषात्' इति न्यायात्त्रयोदश्याद्येवेति । प्रयागं विनापि पाद्मे–'अस्मिन्योगे त्वशक्तोऽपि स्नायादपि दिनत्रयम्' इति । माघस्नाने नियमाः । माघस्नाने नियमास्तु नारदीये–"न वह्निं सेवयेत्स्नातो ह्यस्नातोऽपि वरानने । होमार्थं सेवयेद्वह्निं शीतार्थं न कदाचन ॥ अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः । त्रिभागस्तु तिलानां हि चतुर्थः शर्करान्वितः ॥ अनभ्यंगी वरारोहे सर्वमासं नयेद्व्रती" ॥

नित्य और काम्य प्रतीत होता है और यही युक्त भी है । यदि माघमासपर्यन्त स्नान न होसके तो तीन वा एक दिन अवश्य स्नान करे, कारण कि, यहां वाक्य प्रमाण है कि, महामाघीसे प्रारम्भ कर तीन दिन उसमें स्नान करते हुए श्रेष्ठ हैं । इस योगमें तो अशक्तको भी तीन दिन स्नान करना चाहिये, कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि, माघमासमें प्रयाग तीर्थपर तीन दिन नहाये हुएको जो फल है वह सहस्र अश्वमेधोंसे भी पृथ्वीपर नहीं मिल सकता । यहां कोई यह लिखते हैं कि, मकरकी संक्रांतिकी सप्तमीको माघी कहते हैं, उससे लेकर तीन दिन स्नान करे और दूसरोंका यह कथन है कि, माघकी शुक्ल दशमीसे लेकर तीन दिन स्नान करे और मकरसे लेकर तीन दिन करे, यह और कहते ह और कोई यह कहते हैं कि, माघके प्रथमके तीन दिन स्नान करे और बहुतसे यह कहते हैं कि, त्रयोदशीसे लेकर तीन दिन स्नान करे । महामाघीसे लेकर तीन दिन स्नान किया इस पद्मपुराणके वाक्यको अर्थवाद (कहे हुएका कहना) होनेसे चाहे किसी तीन दिनका ग्रहण है यह भट्टोंका कथन है । सिद्धान्त तो यह है कि, संदिग्ध वाक्योंमें वाक्यशेषसे निर्णय करे, इस न्यायसे त्रयोदशी आदि तीन दिन लेने चाहिये । प्रयागके विना भी पद्मपुराणके वाक्यसे स्नान लिखा है कि, इस योगमें असमर्थ भी मनुष्य तीन दिन स्नान करे । माघस्नानके नियम तो नारदपुराणमें इस प्रकार लिखे हैं कि, हे वरानने ! स्नान किया हुआ वा विना स्नान किया हुआ भी मनुष्य अग्नि न तापे, होमके निमित्त वह्निका सेवन करे और शीतापनयनके निमित्त तो कभी भी न करे और दिन दिन शर्करासहित तिलोंका दान करे, तीन भाग तिलोंके और चौथा भाग शर्करा चाहिये । इसमें हे वरारोहे ! अभ्यंग जिसने न किया हो ऐसा मनुष्य सब महीनेको

तथा-"अप्रावृतशरीरस्तु यः कष्टं स्नानमाचरेत् । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ तथा-"शंखचक्रधरं देवं माधवं नाम पूजयेत् । वह्निं हुत्वा विधानेन ततस्त्वेकाशनो भवेत् ॥ भूशय्या ब्रह्मचर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् । अशक्तो ब्रह्मचर्यादौ स्वेच्छा सर्वत्र कथ्यते. ॥ २ ॥" तथा-"तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी । तिलभुक् तिलदाता च षट् तिलाः पापनाशनाः" ॥ इति । प्रयागासंभवे काश्यां दशाश्वमेधोत्तरस्थप्रयागतीर्थे स्नानमुक्तं काशीखण्डे- "काश्युद्भवे प्रयागे ये तपसि स्नान्ति मानवाः । दशाश्वमेधजनितं फलं तेषां भवेद्ध्रुवम् ॥" इति । स्नानोत्तरं मदनपारिजाते विष्णुः-"काष्ठमौनान्नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् । अवश्यमेव कर्तव्यं माघस्नानमिति श्रुतिः ॥" भविष्ये-"तैलमामलकाश्चैव तीर्थे देयास्तु नित्यशः । ततः प्रज्वालयेद्वह्निं सेवनार्थं द्विजन्मनाम् ॥ एवं स्नानावसाने तु भोज्यं देयमवारितम् । भोजयेद्द्विजदाम्पत्यं भूषयेद्वस्त्रभूषणैः ॥ कम्बलाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि च । चोलकानि च देयानि प्रच्छादनपटास्तथा ॥ उपानहौ तथा गुप्तमोचकौ पापमोचकौ । अनेन विधिना दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ॥ ४ ॥" पाद्मे-'भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलसमन्वितम् ।' तथा-"अन्नं चैव यथाशक्ति देयं माघे नराधिप ।

बितावे । ऐसे ही जो शरीरपर कपड़ेको न ओढ़कर कष्टसे स्नानको जाता है, उसको पदपदपर अश्वमेधका फल प्राप्त होता है, ऐसे ही शंखचक्रधारी माधवका पूजन करे, फिर विधिसे अग्निमें होम करे, एक वार भोजन करे, भूमिपर सोवे; इस प्रकार समर्थ मनुष्य ब्रह्मचर्यसे स्नान करे । यदि ब्रह्मचर्य आदिके करनेमें शक्ति न हो तो सर्वत्र अपनी इच्छा लिखी है । तिलसे स्नान, तिलोंसे उद्वर्तन (उबटना), तिलोंसे होम, तिलोंसे तर्पण, तिलका भोजन और तिलका दान करे; कारण कि, ये छः तिल पापके नाश करनेवाले कहे हैं । काशीखण्डमें लिखा है कि, प्रयाग न मिले तो काशीमें दशाश्वमेधोत्तरस्थ प्रयाग तीर्थमें स्नान करनेसे दश अश्वमेधका फल निश्चय प्राप्त होता है । स्नानके बाद मदनपारिजातमें विष्णुका वाक्य है कि, काष्ठमौनियोंको नमस्कार कर विष्णुका पूजन करे और अवश्य माघका स्नान करना यह श्रुतिका वाक्य है । भविष्यपुराणमें कहा है कि, तिल, आमले ये तीर्थपर नित्य प्रदान करने चाहिये, फिर ब्राह्मणोंको तपानेके निमित्त अग्निको जलावे, इसी प्रकार स्नानके पीछे अवारित (मने न करना) भोज्यान्न दे, सपत्नीक ब्राह्मणोंको भोजन करावे, वस्त्रभूषणोंसे भूषित करे, कंबल, रत्न, नानाप्रकारके वस्त्र, चोलक, ओढनेके वस्त्र, उपानह (जूते), गुप्तमोचक दान तथा पापमोचक ये माधवकी प्रीतिके निमित्त इस विधिसे देने चाहिये । पद्मपुराणमें भी लिखा है कि, भूमिपर शयन करे, तिलोंसहित घीसे होम करे । ऐसे ही हे राजन् ! माघमें यथाशक्ति अन्न दे और वेदके

सुवर्णं रक्तिकामात्रं दद्याद्वेदविदे तथा ॥" माघान्ते विशेषः। माघान्ते तु विशेषो नारदीये-"माघावसाने सुभगे षड्रसं भोजनं स्मृतम्। सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरञ्जनः ॥ दम्पत्योर्वाससी सूक्ष्मे सप्तधान्यसमन्विते। त्रिंशत्तु मोदका देयाः शर्करातिलसंयुताः ॥ २ ॥" इति। अत्र-'एकादशीविधानेन व्रतस्योद्यापनं तथा' इति। पूर्वेऽह्नि उपवासपूजनादि कृत्वा परेऽह्नि तिलचर्वाज्यैरष्टोत्तरशतं होमं कृत्वा, 'सवित्रे प्रसवित्रे च' इति पूर्वोक्तं मन्त्रमुक्त्वा-"दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते। परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते ॥" इति। समापयेदिति संक्षेपः। मकरसंक्रान्तिः। मकरसंक्रान्तौ हेमाद्रिमते परतः चत्वारिंशद्घटिकाः पुण्याः-'त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे तु दशाधिकाः-' इति ब्रह्मवैवर्तात्। माधवमते तु विंशतिः-'त्रिंशत्कर्कटके पूर्वं मकरे विंशतिः परा' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः। यदा तु सूर्यास्तात्पूर्वं संक्रांतिर्भवति तदोभयमते पूर्वमेव पुण्यकालः। रात्रौ तु प्रदोषे निशीथे वा मकरसंक्रमे माधवमते द्वितीयदिन एव पुण्यम्। "यद्यस्तमयवेलायां मकरं याति भास्करः। प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि ॥" इति वृद्धगार्ग्यवचनात्। अस्तमयं प्रदोषः। प्रदोषे पूर्वरात्रे। "कार्मुकं

ज्ञाताको रत्ती भर सोना दे। माघके अन्तमें विशेष नारदीयमें लिखा है कि,हे सुभगे! माघके उपरान्त षड्रस भोजन लिखा है, विष्णुकी मूर्त्ति, सूर्य निरञ्जन मेरेपर प्रसन्न हो ऐसे कहे। स्त्री और पुरुषकी प्रीतिके निमित्त सूक्ष्म वस्त्रोंका और सप्तधान्योंका दान करे और शक्कर और तिलसहित तीस लड्डू दे। यहां एकादशीकी विधिसे इस व्रतका उद्यापन करे, इस पद्मपुराणके वाक्यसे प्रथम दिन व्रत पूजन आदि करके परले दिन तिल चरु आज्यसे १०८ एकसौ आठ आहुति देकर और (सवित्रे प्रसवित्रे) इस पूर्वोक्तमन्त्रको कहकर इस मन्त्रसे क्षमा मांगे कि, हे सूर्य! हे जगन्नाथ! हे प्रभाकर! आपको प्रणाम है। हे स्वामी! प्रातःकालके मघाके स्नानको पूर्ण करो। इति संक्षेपः। मकरकी संक्रान्तिमें हेमाद्रिके मतसे परली चालीस घड़ी पवित्रकाल है। कारण कि, ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि, कर्ककी संक्रान्तिमें तीस घड़ी और मकरमें दश अधिक अर्थात् ४० घड़ी पुण्य काल है, माधवके मतमें तो बीस घड़ी पुण्यकाल है; कारण कि, वृद्धवसिष्ठने यह लिखा है कि, कर्कमें प्रथम तीस और मकरमें पिछली बीस घड़ी पुण्य काल है। जब सूर्यास्तसे प्रथम संक्रान्ति हो तब दोनोंके मतसे प्रथम ही पुण्यकाल है। रात्रिमें तो प्रदोष वा अर्धरात्रमें मकरकी संक्रान्ति हो तो माधवके मतसे दूसरे दिन पुण्यकाल है, कारण कि, वृद्धगर्गने कहा है कि, सूर्यास्तकालमें प्रदोष वा अर्धरात्रमें मकर राशिपर सूर्य आवे तो परले दिन स्नान दान करना, इस वाक्यमें सूर्यास्तसे प्रदोष और प्रदोषसे पूर्वरात्र लेनी, कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखा है कि, धनराशिको त्यागकर जब मकरपर सूर्य प्रदोष वा अर्द्धरात्रके समय

तु परित्यज्य झषं संक्रमते रविः । प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि॥" इति भविष्योक्तेश्च । 'तदा भोगः परेऽहनि' इति हेमाद्रौ पाठः कालादर्शनिर्णयामृतमदनपारिजातादयोऽप्येवमूचुः । दाक्षिणात्याश्चैतदेवाद्रियन्ते । यत्तु हेमाद्रिणाद्यो वाशब्दो यथार्थे द्वितीयस्तथार्थे । यथा प्रदोषे पूर्वेद्युस्तथार्धरात्रे परेऽहनीत्युक्तम् तस्मै नमोऽस्तु । तेन परेऽह्नि पुण्यं वक्तुं प्रदोषे इति दिनद्वये पुण्यनिरासार्थमर्धरात्रग्रहणम् । हेमाद्रिस्मृत्यर्थसारानन्तभट्टादिमते तु निशीथात् पूर्वं पश्चाच्च संक्रांतौ पूर्वदिने परदिने वा पुण्यम् । "धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा। पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमणं यदा ॥ दिनान्ते पञ्चनाडयस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः। उदयेऽपि तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ २ ॥" इति स्कान्दवचनात् । पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कभिन्नविषयम् । पूर्वोक्तवचोविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम् । 'षडशीतिमुखेऽतीते अतीते चोत्तरायणे' इत्यादिविरोधाच्च । तेन पूर्वैकवाक्यतयायमर्थः । रात्रौ पूर्वभागे मकरसंक्रमे परेऽह्नि उदये पञ्च नाडयः पुण्याः, रात्रावपरभागे कर्कसंक्रमे पूर्वदिनान्ते पंच नाडय इति । एवं सर्वेषामविरोधः । मकरे सामान्येन

आवे तब स्नान, दान परले दिन होते हैं । हेमाद्रिमें यह पाठ है कि, तब भोग परले दिन होता है, कालादर्श, निर्णयामृत, मदनरत्न, पारिजातमें भी इसी प्रकार लिखते हैं और दाक्षिणात्य भी इसीको मानते हैं । जो हेमाद्रिने यह लिखा है,कि प्रथम वाशब्दका यथा और दूसरे वाशब्दका तथा अर्थ है जैसे प्रदोषमें पहले दिन ऐसे अर्द्धरात्रमें परले दिन पवित्र काल है, ऐसे स्थलमें हेमाद्रिका प्रमाण है, अर्थात् हेमाद्रिका कहना ठीक नहीं, इससे परले दिन पुण्य कहनेको (प्रदोषे) इस पदका और दोनों दिन पुण्यनिरासके निमित्त (अर्द्धरात्रे) इस पदका ग्रहण है । हेमाद्रि स्मृत्यर्थसार अनंन्तभट्ट आदिके मतमें तो आधीरातसे प्रथम और पीछे संक्रान्ति हो तो पूर्वदिन और परादिनमें क्रमसे पुण्यकाल है; कारण कि, स्कंदपुराणमें लिखा है कि, धन, मीन, कन्या, मिथुनके अनन्तर रात्रिके पूर्व वा परभागमें संक्रान्ति हो तो दिनके अन्तकी पांच घड़ी पुण्यतम लिखी है और उदयकी भी पांच ही घडी, देव और पितरोंके कर्ममें भी पांच घड़ी पुण्य लिखी हैं, यह स्कंदका वचन है। पूर्व और परभाग मकर और कर्कसंक्रान्तिसे पृथक्में समझना चाहिये; कारण कि, पूर्वोक्त वाक्यका विरोध है, यह मदनरत्नमें लिखा है। और इस वाक्यका भी विरोध है कि षडशीतिमुख नामकी संक्रान्ति और उत्तरायणके बीतने पर । इससे पूर्ववाक्यकी एकवाक्यतासे यह अर्थ है कि, रात्रिके पहले भागमें मकरकी संक्रान्ति हो तो पहले दिन उदयकी पांच घडी पवित्र काल है, रात्रिके पिछले भागमें कर्ककी संक्रान्ति हो तो पूर्व दिनके अन्तमें पांच घडी पवित्रकाल हैं, इस प्रकार सब वाक्योंका परस्पर अविरोध है । मकरमें सामान्यसे

परदिने पुण्यत्वेऽपि पुण्यातिशयार्थमिदम् । यत्तु देवलयज्ञपार्श्वौ—"आसन्ने संक्रमं पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः । रात्रौ संक्रमणे भानोर्विषुवत्यथ नो दिवा ॥" इति । अत्र माधवः । अयने दिवा जाते तदर्धं पुण्यम् । कर्के पूर्वं मकरेऽन्त्यम् । एतन्मध्यंदिनायनपरमिति । हेमाद्रिस्तु रात्रौ विषुवत्यासन्नादिनार्धं पुण्यम् । अयने त्वासन्नदिनं पुण्यम् । 'दिने' इति पाठे उभयत्र दिनार्धं पुण्यमित्याह । एतदेवोक्तं दीपिकायाम्—"अथायनमधः पश्चान्निशीथाद्वेद्यथासन्नमहस्तदर्धमथवा पुण्यम्" इति । तत्त्वं तु आसन्नसंक्रममित्यस्य विषुवत्येवान्वयः । अयने रात्रौ सति दिने पुण्यम् । कस्मिन्नित्यपेक्षायां कर्के पूर्वेऽह्नि मकरे परेऽह्नि इति वाक्यान्तरवशादर्थे उच्यमाने न कोऽपि विरोधः । यत्त्वनन्तभट्टः—"अथ संक्रमणं भानोर्निशीथात्प्राक् यदा भवेत् । अयनं विषुवं तत्र प्राग्दिनान्तिमनाडिकाः ॥ पञ्च पुण्यतमाः पश्चान्निशीथाच्चेद्भवेत्तथा । आद्याः परादिनस्यापि तद्वदित्येष निर्णयः ॥ २ ॥" इति । अपरार्केऽप्येवम्—"अस्तं गते यदा सूर्ये झषं याति दिवाकरः । प्रदोषे वार्धरात्रे वा तदा पुण्यं दिनद्वयम् ॥" इति बौधायनवचनाद्दिनद्वयं वा पुण्यकालः । 'तदा पुण्यं दिनान्तरम्' इति मदनरत्ने पाठः । गुर्जरप्राच्योदीच्यास्त्विदमेवाद्रियंते । अत्रापि पूर्ववद्व्याख्येयम् । तिथितत्त्वादयो

परदिनमें पुण्य है तो भी यह वाक्य अधिक पुण्यके निमित्त कथन किया गया है । देवल और यज्ञपार्श्वने तो यह लिखा है कि, संक्रांतिके समयका आधा दिवस स्नान और दानमें पुण्य है। रात्रिमें सूर्यकी संक्रांतिमें यह कहा है कि, विषुव और अयनमें दिनमें पवित्रकाल है। इसमें माधव तो यह कहते हैं कि, अयन दिनमें हो तो उसके उपरन्ति पुण्य है, कर्कमें प्रथम, मकरमें पीछे यह मध्याह्नके अयनमें समझना चाहिये । हेमाद्रिका तो यह कथन है कि, रात्रिकी विषुवत् संक्रान्तिमें निकटका आधा दिन पवित्र है और अयनमें तो निकटका सम्पूर्ण दिन पुण्य है, (दिने) यह पाठ हो तो दोनोंमें आधा दिन पुण्य कहा है। यही दीपिकामें लिखा है कि, आधी रातसे प्रथम वा पीछे अयन हो तो जो निकटका दिन हो उसका आधा पवित्र काल है। सिद्धान्त तो यह है कि, संक्रांतिके निकटका इसका अन्वय विषुवत्में होता है, अयन रात्रिमें हो तो दिनमें पुण्यकाल है। किसमें ? यह जब अपेक्षा हुई कर्कमें पूर्वदिन और मकरमें इस वाक्यांतरके वशसे अर्थ लिखा जाय तो किसी प्रकार विरोध नहीं आता । जो अनन्तभट्ट लिखते हैं कि, जो सूर्यकी संक्रांति आधी रातसे प्रथम हो और विषुव वा अयन हो तो प्रथम दिनके अन्तकी पांच घडी अत्यन्त पवित्रकाल लिखा है। ऐसे ही आधी रातसे पीछे हो तो दूसरे दिनके आदिकी पांच घड़ी पवित्र कही है, यह निर्णय है। अपरार्कमें भी इस प्रकार लिखा है कि, सूर्यास्तमें यदि मकरपर सूर्य हो वा प्रदोष आधीरातमें आवे तो दोनों दिन भी पवित्रकाल कहा है, बौधायनके मतसे दोनों दिन पुण्यकाल है। मदनरत्नमें यह पाठ है कि, तब दिनमें पुण्यकाल है। गुर्जर प्राच्य

गौडग्रन्थास्तु प्रदोषार्धरात्राभिन्ने रात्रेः पूर्वभागे पूर्वदिने परभागे च परदिने पुण्यमन्यसंक्रांतिवत्, विशिष्य तयोर्निर्देशात् । प्रदोषश्च-'प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते' इति वत्सोक्त इत्याहुः तन्न । 'अस्तं गते' इति त्रितयवैयर्थ्यापत्तेः । अतः प्रदोषपदेन तद्भिन्नैव रात्रिरुच्यते । अत एव 'यावन्नोदयते रविः' इति वृद्धगार्ग्यादिभिर्दक्षिणायने पूर्वरात्रौ संक्रमे पूर्वदिनमुक्तम् । वत्सोक्तिरप्यध्ययनादिपरा । इह तु त्रिमुहूर्त एव प्रदोषः । तत्र दाननिर्णयः । मकरे दानविशेषो हेमाद्रौ स्कांदे-"धेनुं तिलमयीं राजन्दद्याद्यश्चोत्तरायणे । सर्वान्कामानवाप्नोति विंदते परमं सुखम् ॥" विष्णुधर्मे-"उत्तरे त्वयने. विप्रा वस्त्रदानं महत्फलम् । तिलपूर्णमनड्वाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते ॥" इति । शिवरहस्येऽपि-"तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं कार्यं चोद्वर्तनं शुभैः । तिला देयाश्च विप्रेभ्यः सर्वदैवोत्तरायणे ॥ तिलतैलेन दीपाश्च देयाः शिवगृहे शुभाः ॥" कल्पतरौ कालिकापुराणे-"होमं तिलैः प्रकुर्वीत सर्वदैवोत्तरायणे । तान्यो देवाय विप्रेभ्यो हाटकेन समं ददेत् ॥ उत्तरायणमासाद्य नरः कस्मात्स शोचति ।" तथा मकरे

उदीच्य भी इसका ही सम्मान करते हैं । इसमें भी पूर्वके समान व्याख्या करनी चाहिये । तिथितत्त्व आदि गौडग्रन्थोंमें तो यह लिखा है कि, प्रदोष और आधीरातसे भिन्न रात्रिके पूर्वभागमें अयन संक्रांति हो तो पहले दिनमें, पिछले भागमें हो तो अगले दिनमें अन्य संक्रांतियोंके तुल्य पुण्यकाल होता है; कारण कि, उन दोनोंका पृथक् २ नाम ग्रहण कर उपादान (ग्रहण) है और प्रदोष तो यह वत्सऋषिका कहा जानना चाहिये कि, अस्तके पीछे दो घड़ीतक प्रदोष होता है, सो उचित नहीं है; कारण कि, 'अस्तं गते' इत्यादि पूर्वोक्त तीन वाक्य वृथा होजायँगे, इससे प्रदोषपदसे प्रदोषसे भिन्न रात्रि लिखी है, इससे वृद्धगार्ग्य आदिने दाक्षिणायनमें पूर्व रात्रिमें संक्रांति हो तो प्रथम दिन ही पुण्य इस वाक्यसे लिखा है कि, जबतक सूर्यका उदय न हो इत्यादि वत्सका कहना भी अध्ययन आदिमें जानना चाहिये, यहां तो तीन मुहूर्तका ही प्रदोष है । मकरमें दान विशेष हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, हे राजन् ! जो मनुष्य उत्तरायणमें तिलकी धेनु देते हैं वे उन सब कामनाओंको प्राप्त होते हैं और परम सुख मिलता है । विष्णुधर्ममें लिखा है कि, हे ब्राह्मणो ! उत्तरायणमें वस्त्रदानका महाफल है और तिलसे भरे बैलका दान करके रोगोंसे छूटता है । शिवरहस्यमें भी कहा है कि, इसमें श्रेष्ठ काले तिलोंसे उबटना करे और उत्तरायणमें ब्राह्मणोंको सदैव तिल देने और तिलके तेलके श्रेष्ठ दीपक मन्दिरमें जलाने चाहिये । कल्पतरुमें कालिकापुराणका लेख है कि, उत्तरायणमें सदा तिलोंसे हवन करे । तिलोंको जो देवता और ब्राह्मणोंको सुवर्णसहित देता है, वह उत्तरायणमें किसी प्रकार भी सोच नहीं करता । इसी प्रकार मकरमें श्राद्ध आदि रात्रिमें भी होते हैं, यह प्रथम कह आये हैं ।

रात्रावपि श्राद्धादि भवतीत्युक्तं प्राक् । माघामायां योगविशेषोऽर्धोदयः प्रागेवोक्तः॥ माघकृष्णचतुर्दशीनिर्णयः। माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणमुक्तं हेमाद्रौ यमेन-"अनर्काभ्युदिते काले माघकृष्णचतुर्दशीम् । स्नातः संतर्प्य तु यमं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥" इति । माघशुक्लचतुर्थीनिर्णयः । माघशुक्लचतुर्थी तिलचतुर्थी । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ।"माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणः। ये त्वां ढुंढेऽर्चयिष्यन्ति तेऽर्च्याः स्युरसुरद्रुहाम् ॥" इति काशीखण्डात् । "माघमासे चतुर्थ्यां तु तस्मिन्काल उपोषितः। अर्चयित्वा तु यो देवि जागरं तत्र कारयेत् ॥" इति त्रिस्थलीसेतौ लैंगाच्च । तत्र कुन्दचतुर्थी । इयमेव कुन्दचतुर्थी । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या-"माघशुक्लचतुर्थ्यां तु कुन्दपुष्पैः सदाशिवम् । सम्पूज्य यो हि नक्ताशी समाप्नोति श्रियं नरः ॥" इति कालादर्शे कौर्मोक्तेः। श्रीपंचमी । माघशुक्लपंचमी श्रीपंचमी । तदुक्तं हेमाद्रौ वाराहे-"माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्य च श्रियः । पंचम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कुर्यात्समृद्धये ॥" इयं माधवमते पूर्वा, हेमाद्रिमते परा । चैत्रशुक्ले श्रीपञ्चमीति दिवोदासः। माघशुक्लसप्तमी (रथसप्तमी) निर्णयः । माघशुक्लसप्तमी रथसप्तमी। सा अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या-"सूर्यग्रहणतुल्या तु

माघकृष्ण चतुर्दशीको यमका तर्पण हेमाद्रिमें यमने लिखा है कि, माघकृष्ण चतुर्दशीको सूर्योदयसे प्रथम स्नान और यमराजका तर्पण करके सब पापोंसे छूट जाता है। माघशुक्ल चतुर्थीका तिलचतुर्थीनाम है वह प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये; कारण कि,काशी-खण्डमें कहा है कि, माघशुक्लचतुर्थीको रात्रिव्रतमें तत्पर हो जो मनुष्य ढुंढिराजका पूजन करते हैं वे देवताओंके भी पूजने योग्य होते हैं और त्रिस्थलीसेतुमें लिंगपुराणका कथन है कि, माघमासकी चतुर्थीको उस कालमें व्रत और पूजन करके हे देवि ! जागरण करना चाहिये। यही कुन्दचतुर्थी है वह प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये । कारण कि, कालादर्शमें कूर्मपुराणका कथन है कि, माघशुक्ल चतुर्थीको सदा कुन्दके फूलोंसे जो शिवपूजन करके रात्रिमें भोजन करता है उस मनुष्यको लक्ष्मी प्राप्त होती है । माघकी शुक्ल पंचमीको श्रीपंचमी कहते हैं । यही हेमाद्रिमें वाराहपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, माघकी शुक्ल चतुर्थीको भले प्रकार श्रीकी आराधना करके पंचमीके दिन समृद्धिके निमित्त कुन्दके फूलोंसे पूजन करना चाहिये, माधवके मतसे यह प्रथमकी लेनी और हेमाद्रिके मतसे दूसरी लेनी, चैत्रशुक्लमें श्रीपंचमी होती है यह दिवोदासका कथन है। माघशुक्ल सप्तमी रथसप्तमी कहाती है, वह अरुणोदयव्यापिनी लेनी चाहिये;

१"माघमासे सुरश्रेष्ठ शुक्लायां पञ्चमीतिथौ । रतिकामौ तु सम्पूज्य कर्तव्यः सुमहोत्सवः ॥ दानानि च प्रदेयानि तेन तुष्यति माधवः॥"इति पुराणसमुच्चयात् । मध्याह्नः कर्मकालः पूजाव्रतत्वादिति टीका । अर्थात्-इस प्रकार माघशुक्लपञ्चमीको रति कामका पूजादि वसन्तोत्सव करना चाहिये. हे सुरश्रेष्ठ ! माघशुक्लपञ्चमीको रति और कामकी पूजादि करके वसन्तोत्सव करे और दान देने चाहिये जिससे भगवान् प्रसन्न हों । यह पुराणसमुच्चयमें लिखा है । पूजाव्रतादिमें कर्मकाल मध्याह्न लेना ।

शुक्ला माघस्य सप्तमी । अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ॥" इति चन्द्रिकायां विष्णुवचनात् । "अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी । प्रयागे यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥" इति वचनाच्च । यत्तु दिवोदासीये-"अचला सप्तमी दुर्गा शिवरात्रिर्महाभरः । द्वादशी वत्सपूजायां सुखदा प्राग्युता सदा ॥" इति षष्ठीयुतत्वमुक्तम् । तद्यदा पूर्वेऽह्नि घटिकाद्वयं षष्ठी सप्तमी च परेद्युः क्षयवशादरुणोदयात्पूर्वं समाप्यते तत्परं ज्ञेयम् । तत्र षष्ठ्यां सप्तमीक्षयं प्रवेश्यारुणोदये स्नानं कार्यम् । मदनरत्ने भविष्योत्तरे स्नानम्-"माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा । कुर्यात्स्नानार्घ्यदानाभ्यामायुरारोग्यसंपदः ॥" अत्र विधिर्भविष्ये-"स्नात्वा षष्ठ्यामेकभुक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम् । रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपकम् ॥" तथा जलं प्रक्रम्य-"न केन चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समाचरेत् । सौवर्णे राजते पात्रे भक्त्यालाबुमयेऽथवा ॥ तैलेन वर्तिर्दातव्या महारजनरञ्जिता ॥" महारजनं कुसुम्भम् । "समाहितमना भूत्वा दत्त्वा शिरसि दीपकम् । भास्करं हृदये ध्यात्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः । वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते ॥ जले परिहरेद्दीपं ध्यात्वा सन्तर्प्य देवताः ॥ २ ॥" इति । "चन्दनेन लिखेत्पद्ममष्ट-

---

कारण कि, चन्द्रिकामें विष्णुने लिखा है-कि माघशुक्ल सप्तमी सूर्यग्रहणके तुल्य होती है, सूर्योदयके समय इसमें स्नानका महाफल होता है और यह भी कथन है कि, माघशुक्ल सप्तमी यदि अरुणोदयके समय प्रयागमें प्राप्त हो जाय तो कोटि सूर्य ग्रहणोंके तुल्य होती है। जो दिवोदासीयमें षष्ठीसे युक्त लेनी लिखी है कि, हे भारत ! अचला सप्तमी दुर्गा शिवरात्रि वत्सपूजामें द्वादशी ये सब पूर्वतिथिसे युक्त ही सदा सुखदायक होती है, वह उस समय जानना जब प्रथम दिन षष्ठी दो घड़ी हो और अगले दिन सप्तमी क्षयके वश अरुणोदयसे प्रथम ही सम्पूर्ण हो जाय, वहां षष्ठीमें सप्तमीके क्षयका प्रवेश करके अरुणोदयमें स्नान करना चाहिये। मदनरत्नमें भविष्योत्तरपुराणका कथन है कि माघमासकी शुक्लसप्तमी कोटिसूर्योंके तुल्य है, उसमें सूर्य स्नान दान अर्घ्यसे आयुः आरोग्य सम्पदा करते हैं। इसकी विधि भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, षष्ठीको एकभुक्त करके सप्तमीको निश्चलजलके शिरके ऊपर दीपक देकर तुम चलाओ ऐसे हो जलकी परिक्रमा करके जबतक उसे कोई न चलावे तबतक स्नान करे। सोने वा चांदीके पात्र वा तुम्बीके पात्रमें तेलमें बत्तीको कुसुम्भके रंगमें रंगकर रक्खे, सावधान मन होकर शिरपर दीपक रखकर और सूर्यका हृदयमें ध्यान कर इस मंत्रका जप करना चाहिये कि, रुद्ररूप रसोंके पति वरुण हरिके निवास आपको प्रणाम है। दीपकको जलमें छोड़ देना चाहिये। ध्यान और देवताओंका तर्पण करके फिर चंदनसे कर्णिकासहित पद्मका अष्टदल चक्र लिखे। उसके बीचमें पार्वती

पत्रं सकर्णिकम् । मध्ये शिवं सपत्नीकं प्रणवेन च संयुतम् ॥ " पूर्वादिदलेषु रविभानुविवस्वद्भास्करसवित्रर्कसहस्रकिरणसर्वात्मकान् संपूज्य गृहं गच्छेदिति । स्नानमन्त्रश्च काशीखण्डे–"यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु । तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ॥ एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम् । मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताऽज्ञाते च ये पुनः ॥ इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके । सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमि ॥ एतन्मन्त्रत्रयं जप्त्वा स्नात्वा पादोदके नरः । केशवादित्यमालोक्य क्षणान्निष्कलुषो भवेत् ॥ ४ ॥ " दिवोदासीये मदनरत्ने च–इक्षुदण्डेन जलं चालयित्वा सप्तार्कपत्राणि बदरीपत्राणि च शिरसि निधाय पूर्वोक्तैर्मन्त्रैः स्नात्वा तिलपिष्टमयापूपैः हैमं सूर्यं सम्पूज्य विप्राय दद्यात् । अर्घ्यमंत्रो मदनरत्ने–"सप्तसप्तिवहप्रीत सप्तलोकप्रदीपन । सप्तमीसहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥ " ततः–"जननी सर्वलोकानां सप्तमी सप्तसप्तिके । सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते सूर्यमण्डले ॥" इति प्रार्थयेत् । सौरागमे–"अर्कपत्रैः सबदरैर्दूर्वाक्षतसचन्दनैः । अष्टाङ्गविधिना चार्घ्यं दद्यादादित्यतुष्टये ॥ " अत्र दानविशेषो मदनरत्ने भविष्ये–"ताम्रपात्रे यथाशक्ति मृन्मये वाथ भक्तिमान् । स्थापयेत्तिलपिष्टं च सघृतं

और ॐकारसहित महादेवको लिखे । पूर्व आदि दलोंपर क्रमसे रवि भानु विवस्वान् भास्कर सविता अर्क सहस्रकिरण सर्वात्मकको लिखे और पूजकर घरको चला जाय । स्नानका मंत्र काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है कि, जो जो सात जन्मोंमें मैंने पाप किया है उस मेरे पापको रोग और शोकको मकरकी सप्तमी दूर करे. इस जन्मके और दूसरे जन्मके मन, वाणी और कायाके ज्ञात और अज्ञात पापको इस प्रकार सात प्रकारके पापोंका सात व्याधियों सहित मकरकी सप्तमी मेरे स्नानसे नष्ट करो. इस मंत्रका जप करके और सप्तसप्तिकचरणोदकमें स्नान करके और केशवादित्यको देखकर क्षणमें पापरहित होता है।दिवोदासीय और मदनरत्नमें भी कहा है कि, ईखके दंडेसे जलको चलाकर और सात आकके पत्तोंको शिरपर रखकर पूर्वोक्त मन्त्रोंसे स्नान कर तिलकी पिट्ठीके पूयेपर सोनेके सूर्यकी पूजा कर ब्राह्मणको देदेना चाहिये । अर्घ्यका मन्त्र मदनरत्नमें यह कहा है कि, हे सात घोड़ोंके वाहनसे प्रसन्न ! हे सप्तलोकदीपन ! हे देव ! हे दिवाकर ! सप्तमीसहित अर्घ्यको स्वीकार करो । फिर सबलोकोंकी माता सप्तव्याहृतियों सहित सूर्यमण्डलमें तुझको प्रणाम है, इस मन्त्रसे प्रार्थना करे । सौरागममें कहा है कि, आक, बेरके पत्ते, दूर्वा, अक्षत, चन्दन इनकी अष्टांग विधिसे सूर्यकी प्रसन्नताके निमित्त अर्घ्य दे । इसमें दानविशेष भी मदनरत्नमें भविष्यके इस वाक्यसे लिखा है कि, तांबेके अथवा मृत्तिकाके पात्रमें भक्तिमान् मनुष्य घी और गुड़

सगुडं तथा ॥ काञ्चनं तालकं कृत्वा अशक्तस्तिलपिष्टजम् । संछाद्य रक्तवस्त्रेण पुष्पैर्धूपैरथार्चयेत् ॥ २ ॥ ” दानमन्त्रस्तु—“आदित्यस्य प्रसादेन प्रातःस्नानफलेन च । दुष्टदौर्भाग्यदुःखघ्नं मया दत्तं तु तालकम् ॥ ” तालकं कर्णाभरणमिति तत्रैवोक्तम् । दीपमात्रमिति हेमाद्रौ तत्रैव भविष्योत्तरे—“एवंविधं रथवरं रथवाजियुक्तं हैमं च हेमशतदीधितिना समेतम् । दद्याच्च माघसितसप्तमिवासरे यः सोऽसङ्गचक्रगतिरेव महीं भुनक्ति ॥ ” इयं मन्वादिरपि । इयं च शुक्लपक्षस्यत्वात् पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । यदा माघो मलमासो भवति तदा मासद्वये मन्वादिश्राद्धं कुर्यात् । ‘मन्वादिकं पैतृकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च । ’ इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः । माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी । तदुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे—‘माघे मासि सिताष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम् । श्राद्धं च ये नराः कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः ॥ ” इति । भारतेऽपि—“शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ” इति । धवलनिबन्धे स्मृतिः—“अष्टम्यां तु सिते पक्षे भीष्माय तु तिलोदकम् । अन्नं च विधिवद्द्युः सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥ ” सर्ववर्णोक्तेः ‘द्विजातयः’ इति संबोधनम् । तर्पणमन्त्रस्तत्रैव—

सहित तिलको रक्खे, तालक (कर्णफूल) अथवा असमर्थ मनुष्यको तिलकी पिट्ठी निर्माण कर पुष्प और धूपसे पूजन करना चाहिये । दानका मन्त्र यह है कि, सूर्यके प्रसाद और प्रातःकाल स्नानके फलसे दुष्ट दौर्भाग्य और दुःखका नाशक यह ताल मैंने दिया है । हेमाद्रिने तो तालदीपकमात्र लिखा है,वहां ही भविष्योत्तरपुराणका लेख है कि, सूर्य और घोड़ोंसे युक्त हो, और सुवर्णकी सौ किरण जिसमें स्फुरित हो रही हों इसी प्रकार सुवर्णके सुन्दर रथको माघशुक्ला सप्तमीके दिन इस प्रकार जो मनुष्य प्रदान करता है, वह चक्रवर्ती होकर पृथ्वीको भोगता है । यह मन्वादि भी लिखी है, यह शुक्लपक्षकी होनेसे पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये । यदि माघ मलमास हो तो दोनों महीनोंमें मन्वादि श्राद्ध करे; कारण कि, स्मृतिचन्द्रिकामें लिखा है कि, मन्वादि और तीर्थश्राद्ध ये दोनों महीनोंमें करे । माघके शुक्लपक्षकी अष्टमीको भीष्माष्टमी लिखते हैं, सोई हेमाद्रिमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, माघकी शुक्ला अष्टमीको जो मनुष्य तिलोंसे भीष्मका तर्पण और श्राद्ध करते हैं, वे सन्तातिवाले होते हैं । भारतमें भी कहा है कि, माघकी शुक्ल अष्टमीको जो भीष्मको जल और अन्न विधिसे प्रदान करते हैं उनके वर्ष दिनके किये हुए पाप क्षणमें ही नष्ट हो जाते हैं । धवलनिबन्धमें स्मृतिका लेख है कि, हे द्विजातियो ! शुक्लपक्षकी अष्टमीको भीष्मके निमित्त सब वर्ण तिलोदक और विधिसे अन्न दें । यहां(सर्वे वर्णाः) यह कहनेसे (द्विजातयः) यह सम्बोधन समझना चाहिये।

"भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः। आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रो-चितां क्रियाम्॥ वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च। अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मणे॥ वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च। अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे॥ ३॥" इति। एतज्जीवत्पितृकस्यापि भवति। 'जीव-त्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः।' इति पाद्मोक्तेरिति जीवत्पितृकनिर्णये पितृचरणैरुक्तम्। एतच्चापसव्येन कार्यमिति दिवोदासीये। अत्र श्राद्धं काम्यं तर्पणं च नित्यम्। "ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दद्युर्भीष्माय नो जलम्। संवत्सर-कृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम" इति मदनरत्ने वचनात्। भीष्मद्वादशी। माघशुक्ला द्वादशी भीष्मद्वादशी। "त्वया कृतमिदं वीर तव नाम्ना भविष्यति। सा भीष्मद्वाद-शीत्येषा सर्वपापहरा शुभा॥" इति हेमाद्रौ पाद्मवचनात्। इयं पूर्वयुता युग्मवाक्यात्। माघीपूर्णिमानिर्णयः। माघी पूर्णिमा परेत्युक्तं प्राक्। तथा हेमाद्रौ ब्राह्मे-'माघस्थयोश्च जीवेन्द्वोर्महामाघीति कथ्यते।' तत्रैव ज्योतिषे-"मेष-पृष्ठे तथा सौरिः सिंहे च गुरुचन्द्रमाः। भास्करः श्रवणर्क्षे च महामाघीति सा स्मृता॥" तथा भविष्ये-"वैशाखी कार्त्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः। स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन॥" तथा-"तिलपात्राणि देयानि

वहां ही तर्पण मंत्र भी लिखा है कि, शन्तनुके पुत्र और वीर, सत्यवाक्, जितेंद्रिय, भीष्म इन जलोंसे पुत्र और पौत्रको करने योग्य जो क्रिया है उसे प्राप्त हो। वैयाघ्रपद्यगोत्र सांकृत्यप्रवर पुत्रहीन भीष्म वर्माके निमित्त यह जल देता हूं, वसुओंका अवतार शन्तनुके पुत्र बालब्रह्मचारी भीष्मके निमित्त ये अर्घ्य देता हूं, यह जीवितपितावालेको भी करना। कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि, जीवितपितावाला भी भीष्म और यमका तर्पण करे, यह जीवत्पितृकनिर्णयग्रन्थमें पिताजीने लिखा है। यह अपसव्यसे करे, यह दिवोदासका मत है, इसमें श्राद्ध काम्य है और तर्पण नित्य है। कारण कि, मदनरत्नमें यह लिखा है कि, हे श्रेष्ठ! ब्राह्मण आदि चारों वर्ण जो भीष्मके निमित्त जल नहीं देते उनका वर्ष दिनका किया हुआ पुण्य नष्ट होजाता है। माघके शुक्लपक्षकी द्वादशीको भीष्मद्वादशी कहते हैं, कारण कि, हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वाक्य है कि, हे वीर! तुम्हारा किया हुआ यह व्रत तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा, इससे यह "भीष्मद्वादशी" सब पापोंके दूर करनेवाली शुभरूप है। यह युग्मवाक्यसे पहली विद्धा लेनी। माघकी पूर्णिमा दूसरी लेनी यह पहले कथन कर आये हैं, सोई हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, जिस माघकी पूर्णि-माको बृहस्पति और चन्द्रमा मघानक्षत्रपर प्राप्त हों उसे महामाघी कहते हैं, वहां ही ज्योतिषमें भी लिखा है कि, जब मेषराशिपर शनि और सिंहराशिपर बृहस्पति चन्द्रमा और श्रवण नक्षत्रपर सूर्य हो तो वह माघकी पूर्णिमा अत्यन्त पूजनीय है। भविष्यमें कहा है, कि, वैशाखी कार्तिकी माघी ये तिथियें अति पूजनीय हैं, इससे हे पाण्डुनन्दन! स्नान

कंचुकाः कम्बलास्तथा ।" इति । माघीअष्टकानिर्णयः । माघपूर्णिमानन्तरा अष्टमी माघी अष्टका तन्निर्णयः। पूर्वेद्युरन्वष्टकानिर्णयश्च पूर्वमुक्तः । मलमासे चैता न भवन्तीत्येतत्सर्वं मार्गशीर्षप्रकरणेऽभिहितम् । तथा चतसृष्वष्टकास्वशक्तावेषा आवश्यकी । 'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा' इत्याश्वलायनोक्तेः । तथा-'माघाष्टकां प्रक्रम्य तामेकाष्टकेत्याचक्षते' इत्यापस्तम्बवचनाच्चेत्यादि प्रयोगपारिजाते ज्ञेयम् । इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ द्वितीयपरिच्छेदे माघमासः समाप्तः ॥ अथ फाल्गुनमासः । कुम्भसंक्रांतिनिर्णयः। कुम्भे षोडश घटिकाः पुण्याः । शेषं प्राग्वत् । फाल्गुनकृष्णाष्टमी सीताष्टमी । 'फाल्गुनस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां महीपते ।' इत्युपक्रम्य । " जाता दाशरथेः पत्नी तस्मिन्नहनि जानकी । उपोषितो रघुपतिः समुद्रस्य तटे तदा ॥ रामपत्नी च संपूज्या सीता जनकनन्दिनी ।" फाल्गुनकृष्णचतुर्दशीनिर्णयः । फाल्गुनकृष्णचतुर्दशी शिवरात्रिः । सा च केषुचिद्वचनेषु प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येत्युक्तम्, केषुचिन्निशीथव्यापिनी । तत्राद्या माधवीये-"त्रयोदश्यस्तगे सूर्ये चतसृष्वेव नाडिषु । भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतं चरेत् ॥ " स्मृत्यन्तरेऽपि-"प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिश्चतुर्दशी । रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपो-

---

दानसे रहित उसको न जाने दे, ऐसे ही तिलसे भरे हुए पात्र कंचुक (संजोआ), कम्बलको देना चाहिये। माघकी पूर्णिमाके उपरान्त माघकी अष्टमी 'अष्टका' कहाती है, उसका निर्णय पूर्वदिन अन्वष्टका निर्णयमें पहले कहा है, मलमासमें यह नहीं होती। यह सब मार्गशीर्षक प्रकरणमें कहा है कि, चार अष्टकाओंमें असमर्थ हो तो यह अवश्य करे. हेमन्तशिशिरमें यह विचार इस आश्वलायनके और इस आपस्तम्बके वाक्यसे प्रयोगपारिजातमें लिखा है कि, प्रथम दिन अन्वष्टका और चारों महीनोंकी कृष्णाष्टमियोंमें वा एक महीनेकी अष्टमीको अष्टका होती है, इसी प्रकार माघकी अष्टकाके प्रकरणमें उसीको अष्टका वर्णन किया है ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां माघमासः समाप्तः ॥ कुंभकी संक्रांतिमें प्रथम सोलह घड़ी पवित्र काल है, शेष निर्णय पूर्वके तुल्य जानना। हे राजन् ! फाल्गुनकृष्ण अष्टमीको कल्पतरुग्रन्थमें फाल्गुनकी कृष्णअष्टमीको यह विशेष लिखा है कि, उस दिन रामचन्द्रकी प्रिया श्रीजानकीजी प्रगट हुई और उसी दिन समुद्रके किनारेपर श्रीरामचन्द्रजीने व्रत किया, इससे उसमें जनकनन्दिनी सीताका पूजन करना चाहिये। फाल्गुनकी चतुर्दशीको शिवरात्रि कहते हैं, यह किन्हीं वाक्योंमें प्रदोषव्यापिनी और किन्हीं वाक्योंमें अर्द्धरात्रव्यापिनी लेनी चाहिये, यदि त्रयोदशीके दिन सूर्यास्तके समयपर चार घड़ीतक चतुर्दशी आगयी हो तो उसमें शिवरात्रि व्रत करे। स्मृत्यन्तरमें भी लिखा है कि, शिवरात्रिकी चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी लेनी और रात्रिमें जागरण करे । इससे उसमें ही व्रत

षयेत् ॥ " अत्र प्रदोषो रात्रिः । उत्तरार्धे तस्या हेतुत्वोक्तेः । कामिकेऽपि—"आदित्यास्तमये काले अस्ति द्वेधा चतुर्दशी । तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात्सा भवेदुत्तमोत्तमा ॥" इति । द्वितीयापि तत्रैव नारदसंहितायाम्—"अर्धरात्रियुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी । शिवरात्रिव्रतं तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥" स्मृत्यन्तरेऽपि—"भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता महानिशा । शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा ॥" ईशानसंहितायाम्—"माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि । शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः ॥" इति । "अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । तत्तिथावेव कुर्वीत शिवरात्रिव्रतं व्रती ॥ नार्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । नैव तत्र व्रतं कुर्यादायुरैश्वर्यहानितः ॥" अर्धरात्रश्च द्वितीययामान्त्यतृतीययामाद्यघटीद्वयरूप इति माधवः । वचनं तूक्तं प्राक् । एवं सति पूर्वेद्युरेवोभयव्याप्तौ पूर्वैव । "त्रयोदशी यदा देवि दिनभुक्तिप्रमाणतः । जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी॥" इति स्कान्दोक्तः । दिनभुक्तिः अस्तमयः । "जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते ।" इति स्कान्दाच्च दिनद्वये निशीथव्याप्तौ हेमाद्रिमते पूर्वा ।

करना चाहिये, यहां श्लोकके पिछले दो पादोंसे रात्रिको कारण लिखा है, इससे प्रदोष शब्दसे यहां रात्रिका ग्रहण करते हैं, कामिकमें भी कहा है कि, फाल्गुनकी चतुर्दशी जिस सूर्यास्तमय (रात्रि) कालमें हो वह रात्रि सबमें श्रेष्ठ शिवरात्रि होती है । दूसरी भी इस नारदसंहिताके कथनसे वहां ही लिखी है कि, जिस तिथिमें अर्द्धरात्रके समय माघके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी हो, उसमें जो शिवरात्रि व्रत करे उसको अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है । स्मृत्यन्तरमें भी कहा है कि, जिस त्रयोदशीमें आधी रात पर चतुर्दशी हो उसमें शिवरात्रि व्रत तथा रात्रिको जागरण करे, ईशानसंहितामें कहा है कि, माघके कृष्ण पक्षकी चौदशको आधी रातमें कोटिसूर्योंकीसी कान्तीवाले आदिदेव शिवलिंग रूपसे प्रगट हुए, इसमें चतुर्दशी उस समयतक व्याप्त लेनी चाहिये, उसमें व्रती मनुष्य शिवरात्रिव्रत करे । जिस तिथिमें आधी रातसे पीछे वा प्रथम चतुर्दशी नहीं उसमें व्रतीको व्रत न करना चाहिये; कारण कि, उसमें व्रत करनेसे अवस्था और ऐश्वर्यकी हानि होती है । यहां आधी रातसे दूसरे प्रहरके अन्तकी घड़ीका ग्रहण है, तीसरे प्रहरकी आदिकी घड़ी तो दूसरे प्रहरके तुल्य है यह माधवका कथन है, वाक्य तो पूर्व लिख आये, इस प्रकारकी यदि प्रथम दिन चतुर्दशी उभय (प्रदोष निशीथ) व्यापिनी हो तो पहली लेनी चाहिये । कारण कि, स्कंदपुराणमें लिखा है कि, हे देवि ! यदि त्रयोदशी दिनमें हो तो जागरण और शिवरात्रि व्रत द्वादशी और त्रयोदशीसे युक्तमें करने चाहिये। स्कन्दमें लिखा है कि, भद्रासे जयन्ती और शिवरात्रि जयासे युक्त करनी, यदि दोनों दिन अर्द्धरात्रव्यापिनी हो तो हेमाद्रिके मतसे

"अर्धरात्रात्पुरस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः॥" इति पाद्मवचनात् । मदनरत्नेऽप्येवम् । गौडा अप्येवमाहुः । निर्णयामृते तु सर्वापि शिवरात्रिः प्रदोषव्यापिन्येव । अर्धरात्रवाक्यानि कैमुतिकन्यायेन प्रदोषस्तावकानीत्युक्तम् । तन्न । अर्धरात्रस्य पूर्वं कर्मकालत्वोक्तेः । परदिनप्रदोषनिशीथोभयव्याप्तिसत्त्वात्परैवेति तु माधवः । इदमेव युक्तं प्रतीमः । परेद्युः प्रागुक्तार्धरात्रस्यैकदेशव्याप्तौ पूर्वेद्युः संपूर्णतद्व्याप्तौ च सत्यपि पूर्वेद्युः संपूर्णव्याप्तेः पूर्वैव । "व्याप्यार्धरात्रं यस्यां तु लभ्यते या चतुर्दशी । तस्यामेव व्रतं कार्यं मत्प्रसादार्थिभिर्नरैः ॥ तदूर्ध्वाधोऽन्विता भूता सा कार्या व्रतिभिः सदा ।" इति माधवधृतेशानसंहितोक्तेः । पूर्वेद्युर्निशीथस्य परेद्युः प्रदोषस्यैकैकव्याप्तौ तु पूर्वैव जयायोगस्य प्राशस्त्यात् । तच्चोक्तं नागरखण्डे—"माघफाल्गुनयोर्मध्ये असिता या चतुर्दशी । अनङ्गेन समायुक्ता कर्तव्या सा सदा तिथिः॥" इति । पाद्मे—"अर्धरात्रात्परस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः॥" इति । स्कान्देऽपि—"भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता

प्रथम ही ग्रहण करनी । कारण कि, पद्मपुराणका वाक्य है कि, यदि आधी रातसे प्रथम जयाका योग हो तो शिवरात्रि व्रत शिवके प्रियोंको पूर्वविद्धा ही करनी चाहिये । मदनरत्नमें भी इसी प्रकार कहा है, गौड भी इसी प्रकार लिखते हैं । निर्णयामृतमें तो यह कहा है कि, सब शिवरात्रि प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये । आधीरातके वाक्य तो कैमुतिकन्यायसे प्रदोषकी स्तुतिके विषयमें जानने सो उचित नहीं । कारण कि, प्रथम आधीरातको कर्म लिख आये हैं । माधवका यह कथन है कि, परले दिन प्रदोष और निशीथ इन दोनोंकी व्याप्ति हो तो दूसरी ही लेमी, यह हमको भी ठीक प्रतीत होता है, परले दिन पूर्वोक्त कहे आधी रातके एकदेश (भाग) में व्याप्ति हो तो दूसरे दिन करे, यदि सम्पूर्ण आधी रातके समय व्याप्ति हो तो परले दिन करे । प्रदोष और निशीथ इन दोनोंके योगमें यदि पूर्वोक्त सम्पूर्ण आधी रातकी व्याप्ति हो तो पहली ही लेनी चाहिये । इसी प्रकार माधवके मतमें ईशानसंहिताका वाक्य है कि, जिस तिथिमें आधी रातके समय चतुर्दशी मिले उसमें ही मेरी प्रसन्नताकी कामनावाले मनुष्य व्रत करे । अर्द्धरात्रसे प्रथम और पीछे जिसदिन चतुर्दशी हो उसको व्रती निरन्तर करे, जो पहले दिन आधी रातकी और परले दिन प्रदोषकी इस प्रकार एक २ की व्याप्ति हो तो जया योगकी प्रशंसासे प्रथम ही लेनी चाहिये, सोई नागरखण्डमें लिखा है कि, माघ और फाल्गुनके मध्यमें जो कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है वह अनंग (त्रयोदशी) सहित सदा करनी चाहिये । पद्मपुराणमें भी लिखा है कि, आधीरातसे प्रथम यदि जयाका योग हो तो वह शिवके प्रियोंको पूर्वविद्धा ही चतुर्दशी सदैव करनी चाहिये । स्कंदपुराणमें भी कहा है कि, यदि त्रयोदशी आधीरातमें चतुर्दशी हो तो

महानिशा। शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा॥" इति। "महतामपि पापानां दृष्टा वै निष्कृतिः परा। न दृष्टाकुर्वतां पुंसां कुहूयुक्तां तिथिं शिवाम्॥" इति स्कान्दे दर्शयोगस्य निन्दितत्वाच्च। यदा चतुर्दशी पूर्वेद्युर्निशीथादूर्ध्वं प्रवृत्ता परेद्युश्च निशीथादर्वागेव समाप्ता तदा परेद्युरेकव्याप्तिसत्त्वात्परैव। 'माघासिते भूतदिनं हि राजन्नुपैति योगं यदि पञ्चदश्याः। जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्याच्छिवस्य रात्रिं प्रियकृच्छिवस्य॥" इति वचनात्। एवं दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यभावे निशीथव्याप्तिसत्त्वात्पूर्वैव। तेन दिनद्वये निशीथव्याप्तौ प्रदोषव्याप्त्या निर्णयः दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ निशीथेन निर्णयः एकैकव्याप्तौ तु निशीथेन निर्णय इति। इयं च रविभौमसोमवारेषु शिवयोगे चातिप्रशस्ता। हेमाद्रौ तीर्थखण्डे लैङ्गे—"फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः। कृत्तिवासेश्वरं लिंगमर्चयन्ति शिवं शुभे॥ ते यान्ति परमं स्थानं सदाशिवमनामयम्॥" शिवरात्रिपारणानिर्णयः। शिवरात्रिपारणे तु विरुद्धवाक्यानि दृश्यन्ते स्कान्दे—"कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी। एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्॥ जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च

उसमें शिवरात्रिव्रत और जागरण करना चाहिये, इसके करनेवाले मनुष्योंके महापापोंकी शांति पहले देखी है और न करनेवालोंकी नहीं देखी। यदि प्रथम दिन आधी रातसे उपरान्त प्रवृत्त हुई और पिछले दिन आधी रातसे प्रथम पूर्ण होगयी हो तो अगले दिन एक (प्रदोष) की व्याप्ति होनेसे परली ही लेनी; कारण कि, यह कथन है कि, माघके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें यदि अमावस्याका योग हो तो हे नृप! जयासे युक्त चतुर्दशीमें शिवभक्तोंको कभी भी शिवरात्रि व्रत न करना चाहिये। इसी प्रकार यदि दोनों दिन प्रदोषकी व्याप्ति न हो तो आधीरातकी व्याप्तिसे प्रथमकी लेनी, इससे यदि दोनों दिन आधी रातमें व्यापिनी हो तो प्रदोषकी व्याप्तिसे निर्णय करे, अर्थात् जिस दिन प्रदोषमें चतुर्दशीका योग हो उसी दिन व्रत करना चाहिये, यदि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो आधी रातसे निर्णय करे, एक एकका योग हो तो प्रदोष और आधी रात्रिसे निर्णय करे। यह रवि मंगल सोम इन वारोंमें और शिवयोगमें अतिउत्तम होती है। हेमाद्रिके तीर्थखण्डमें लिंगपुराणका कथन है कि, फाल्गुनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको सावधान होकर कृत्तिवासेश्वर लिंगमें जो महादेवकी पूजा करते हैं हे शुभे! उनको मैं सदैव मुक्त और रोगरहित परमस्थान देता हूं। शिवरात्रिके पारणामें यह विरुद्ध वाक्य दीखते हैं कि, स्कन्दपुराणमें कहा है कि, कृष्णाष्टमी, स्कन्दषष्ठी, शिवरात्रि–चतुर्दशी ये पूर्वविद्धा करनी चाहिये और इनमें तिथियोंके अन्तमें पारणा करनी चाहिये। जन्माष्टमी, रोहिणी तथा शिवरात्रि ये पूर्वविद्धा करनी चाहिये और तिथि और नक्षत्रके

पारणम् ॥ २ ॥" इति ॥ तिथिमध्येऽपि पारणं स्कान्दे उक्तम्-"उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम् । कृतैः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते वाथवा न वा ॥ ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै । संस्नातानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते ॥ तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु । तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद्विना शिवचतुर्दशीम् ॥ ३ ॥" इति । अत्र यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तौ तदन्ते, तदूर्ध्वगामिन्यां तु प्रातस्तिथिमध्य एवेति हेमाद्रिमाधवादयो व्यवस्थामाहुः तन्न । "तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा ॥" इत्यादिसामान्यवचनैरेव व्यवस्थासिद्धेरुभयविधवाक्यवैयर्थ्यापत्तेः । वयं तु तिथ्यन्ते पारणं भवेदिति कृष्णाष्टम्यादिविषयमेव, न तु शिवरात्रिविषयम् । तदुपादानं तु पूर्वयुतत्वमात्रकथनार्थम् । कथमन्यथा स्कांदे एव शून्यहृदयवाक्यवत्तिथिमध्ये पारणविधानं घटते । तस्मात्-'विना शिवचतुर्दशीम्' इति पर्युदस्तत्वाच्छिवरात्र्याः सर्वप्रकारेषु तिथिमध्ये एव पारणेति ब्रूमः । शिष्टाचारोऽप्येवमेव । दीपिकायां तु रात्रावपि तिथ्यन्त एवोक्तम् । व्रततिथेरन्ते निशीथेऽपि वाऽश्नीयादिति । मदनरत्नकालादर्शयोस्तु-"सा ह्यस्तमयपर्यंतं

पीछे पारणा करनी चाहिये । तिथिके बीचमें भी पारणा स्कन्दपुराणमें लिखी है कि, चतुर्दशीके दिन व्रत और पारणा ये लक्षपुण्योंसे प्राप्त होते हैं अथवा नहीं होते । ब्रह्माण्डके मध्यमें जितने तीर्थ हैं उन सबके स्नानका फल इस चतुर्दशीमें पारणा करनेवालेको प्राप्त होता है । तिथियोंके व्रत आदिमें शिवचतुर्दशीके विना तिथिके अन्तमें पारणा करनी चाहिये। यहां हेमाद्रि और माधव आदि भी यह व्यवस्था की है कि, यदि तीन प्रहरसे प्रथम चतुर्दशीकी पूर्ति हुई हो तो उसके पीछे पारणा करनी और तीन प्रहरके उपरान्त तक व्याप्त हो तो वहां प्रातःकाल तिथिके बीचमें ही पारणा करनी सो उचित नहीं; कारण कि, तिथिके अन्तमें वा तिथि और नक्षत्रोंके अन्तमें जहां पारणा लिखी है, यदि वहां तिथि तीन प्रहरसे अधिक तो प्रातःकाल ही पारणा करनी कही है, इत्यादि सामान्य वाक्योंसे व्यवस्था सिद्ध थी, दोनों प्रकारके वाक्योंकी व्यर्थताका परिहार न होसकेगा । हमारा तो यह कथन है कि, तिथिके पीछे पारणा होती है, यह कृष्णाष्टमीके विषयमें है, शिवरात्रिके निमित्त नहीं और उसका ग्रहण तो पूर्वयुत (विद्धा) के निमित्त है; अन्यथा स्कन्दपुराणमें शून्यहृदय (मूर्ख) के वचनके समान तिथिके मध्यमें पारणा कहना किस प्रकार घट सकेगा ? इससे शिवचतुर्दशीके विना इस वाक्यसे निषेध की हुई पारणा शिवरात्रिमें सब प्रकारसे तिथिके बीचमें ही होती है और शिष्टाचार भी इसी प्रकार लिखा है । दीपिकामें तो तिथिके पीछे भी पारणा कही है कि, व्रत तिथिके पीछे वा आधी रातमें भोजन करे । मदनरत्न और कालादर्शमें तो यह लिखा है कि, वह सूर्यास्तपर्यन्त हो तो दूसरे दिनमें ही पारणा

व्यापिनी चेत्परेऽहनि। दिवैव पारणं कुर्यात्पारणे नैव दोषभाक्॥" इत्युक्तम्। तन्न। तिथिमध्ये पारणविधानान्निषेधे फलायोगाच्च। तिथ्यन्तानपेक्षणादोषाप्रसक्त्या चतुर्थपादासंगतेः। तेनेदं शिवरात्रिभिन्नव्रतपरं ज्ञेयम्। इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च। तथा च माधवीये स्कांदे–"परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिः परात्परम्। न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्॥ जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः॥" इत्यकरणे प्रत्यवायश्रवणात्। "वर्षे वर्षे महादेवि नरो नारी पतिव्रता। शिवरात्रौ महादेवं नित्यं भक्त्या प्रपूजयेत्॥" इति वीप्साश्रुतेः। "अर्णवो यदि वा शुष्येत्क्षीयते हिमवानपि। चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम्॥" इति वचनाच्च नित्यता। "मम भक्तस्तु यो देवि शिवरात्रिमुपोषकः। गणत्वमक्षयं दिव्यमक्षयं शिवशासनम्॥ सर्वान्मुक्त्वा महाभोगांस्ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥" इति स्कान्दात्। 'द्वादशाब्दिकमेतत्स्याच्चतुर्विंशाब्दिके तु वा।' इति तत्रैवेशानसंहितावचनात्काम्यता। तत्रैव–"शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम्। आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥" अत्र जागरोपवासपूजाः समुदिताः व्रतं न तु प्रत्येकम्, समुदितानां फलसंबन्धात्।

करनेमें दोष नहीं होता सो ठीक नहीं, क्योंकि, तिथिके मध्यमें पारणा लिखी है और निषिद्ध फलके योगसे और तिथ्यन्तकी अपेक्षाके अभावसे किसी दोषकी प्रसक्ति नहीं, इससे चतुर्थ पादकी असंगति हो जायगी, इससे यह शिवरात्रिसे दूसरे व्रतोंके विषयमें जानना। यह व्रत संयोग और पृथक्त्व न्यायसे शुद्धा वा विद्धासे नित्य और काम्य भी है; यही माधवीयमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है पर (श्रेष्ठ) से परे कोई नहीं, किन्तु शिवरात्रि उत्तमोत्तमा है, किन्तु जो भक्ति करके ईशोंके ईश शिवका पूजन नहीं करते वे सहस्रों जन्मतक भ्रमते हैं,इसमें सन्देह नहीं, इस वाक्यसे न करनेमें पाप श्रवण किया है। हे महादेवि! वर्ष वर्ष में नर और पतिव्रता स्त्री शिवरात्रिके दिन भक्तिसे शिवकी नित्य पूजा करे, इस वाक्यमें वीप्सा श्रवण करनेसे कदाचित् सागर सूखने तथा हिमालय नष्ट होनेसे भी शिवपूजन कदाचित् चलायमान नहीं होता, इस वाक्यसे यह शिवपूजन नित्य है। हे देवि! जो मेरे भक्त शिवरात्रिव्रत करते हैं उनको सदाके लिये श्रेष्ठ गण बना लेता हूं, यह शिवकी शिक्षा है। वे सब भोगोंको भोगकर मुक्तिको प्राप्त होते हैं, यह स्कन्दपुराणका कथन है। और वहां ही ईशानसंहितामें यह लिखा है कि, बारह वा चौबीस वर्षतक शिवरात्रि व्रत करे, इससे यह काम्य भी है। वहां ही कहा है कि, शिवरात्रि व्रत सब पापोंको नाश करनेवाला है, चाण्डालतकको भुक्ति मुक्तिका दाता है। इसमें जागरण व्रत पूजा एकत्र होकर करनी और व्रत भी प्रत्येक न करना; कारण कि, समूहोंके फलका सम्बन्ध है। जो किसीने यह कहा है कि, शिवरात्रिको पूजा और जागरणसे बिताना चाहिये, इसी प्रकार वाक्य है कि, जो मनुष्य अखण्डितव्रत होकर शिवरात्रिव्रत करता है वह संम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है और

यत्तु-'अथवा शिवरात्रिं च पूजाजागरणैर्नयेत् ।' तथा-अखंडितव्रतो यो हि शिवरात्रिमुपोषयेत् । सर्वान्कामानवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ कश्चित्पुण्यविशेषेण व्रतहीनोऽपि यः पुमान् । जागरं कुरुते तत्र स रुद्रसमतां व्रजेत् ॥२॥" इत्यादिस्कांदं तदनुकल्पत्वादशक्तपरम् । माघेतरप्रतिमासशिवरात्रिस्तु शिवरात्रिशब्दस्य माघकृष्णचतुर्दश्यामेव रूढत्वात् । "माघमासस्य शेषे या प्रथमा फाल्गुनस्य च । कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्तिता ॥ " इति हेमाद्रौ वचनाच्च । नायं निर्णयस्तत्रेति रात्रौ यामचतुष्टये पूजाविधानाद्यस्मिन्दिने अधिका रात्रिव्याप्तिः सा ग्राह्या । साम्ये तु पूर्वैवेति हेमाद्रिरूचिवान् । वस्तुतस्तु प्रतिमासकृष्णचतुर्दश्यामपि-'सर्वकामप्रदं कृष्णचतुर्दश्यां शिवव्रतम्' इत्युपक्रम्य 'चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम् ' इति हेमाद्रौ कालोत्तरे शिवरात्रिशब्दप्रयोगात् । कौण्डपायिनामयनाग्निहोत्रे नैत्यकाग्निहोत्रधर्मा इव तद्धर्मप्राप्तिः स्यादेव । अतः प्रदोषनिशीथोभयव्याप्त्यैव निर्णय इति वयं प्रतीमः । व्रतारम्भः । अस्यारम्भो हेमाद्रौ स्कान्दे-"आदौ मार्गशिरे मासि दीपोत्सवदिनेऽपि वा । गृह्णीयान्माघमासे वा द्वादशैवमुपोषयेत् ॥ " तथा-"दीपोत्सवे तथा माघे कृष्णा या तु चतुर्दशी । द्वादशस्वपि मासेषु प्रकुर्यादिह जागरम् ॥ एवं द्वादशवर्षेषु द्वादशैव तपोध-

---

शिवजीके संग परम आनन्द भोगता है । व्रतहीन भी जो मनुष्य किसी पुण्यविशेषसे शिवरात्रि करता है, वह रुद्रके समान होता है, यह स्कन्दपुराणका लेख उसके अनुकूल होनेसे अशक्तके विषयमें कहा है । माघके दूसरे महीनेमें जो प्रतिमासकी शिवरात्रि है उसमें यह निर्णय नहीं है; कारण कि, शिवरात्रिव्रत माघकी कृष्णचतुर्दशीमें आरूढ है और हेमाद्रिमें यह कथन भी है कि, माघकी और फाल्गुनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको शिवरात्रि कहते हैं । रात्रिके चारों प्रहरोंमें पूजा लिखी है, जिस दिन अधिकरात्रिव्यापिनी हो वही लेनी चाहिये, दोनों दिन समान हो तो पहली करनी चाहिये, ऐसा हेमाद्रि कथन करते हैं। सिद्धान्त तो यह है कि, प्रतिमहीनेकी कृष्णचतुर्दशीको भी प्रदोष और अर्द्धरात्रिकी व्याप्तिसे ही निर्णय कहा है; कारण कि, सब कामनाओंका देनेवाला यह कृष्णचतुर्दशीका व्रत है, यह हेमाद्रिमें समयके वाक्यसे प्रारम्भ करके चौदह वर्षतक शिवरात्रि व्रत करे, यह लिखा है । यह शिवरात्रिके प्रयोगसे कुण्डकी और पाक अग्निमें अग्निहोत्र और नित्याग्निहोत्रके धर्मके तुल्य उसके फलकी प्राप्ति हो जायगी, इससे प्रदोषका अर्धरात्रिके प्राप्तिमें निर्णय है, यह हम जानते हैं । हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणमें इसका प्रारम्भ इस प्रकार लिखा है कि, मार्गशिरमें वा दीपमालिकाके दिन या माघमासमें प्रथम आरम्भ करके बारह व्रत करे तथा दीपोत्सवमें माघकृष्णचतुर्दशी द्वादशों महीनोंमें जागरण करे । इसी प्रकार बारह वर्षोंमें बारह वा चौदह तपस्वी ब्राह्मणका वा आचार्यका वरण करे । फिर हे

नान् ॥" वरयेदिति शेषः। चतुर्दश वा विप्रान् आचार्यं च वृत्वा। "कुम्भोपरि न्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम्। सौवर्णेऽप्यथवा रौप्ये वृषभे संस्थितं शुभे" इत्युक्तम्। हैमीं मूर्तिं संपूज्य स्थिरं चरं वा लिंगं पञ्चामृतसहस्रशतपञ्चाशत्तद्धान्यतरकुम्भैः संस्नाप्य, संपूज्य, जागरं कृत्वा, परेद्युस्तिलान् सहस्रं शतं वा हुत्वा, विप्रेभ्यो वस्त्राणि द्वादश गाश्च दत्त्वा, आचार्याय धेनुं शय्यां च दत्त्वा विप्रान् भोजयेदिति मदनरत्ने उक्तम्। माघामावास्यानिर्णयः। माघामावास्या युगादिः। तदुक्तम्—'माघमासे त्वमावास्या' इति। अन्यत् प्राग्वत्। तथान्योऽपि विशेषो विष्णुपुराणे—"माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन। ऋक्षेण कालः स परः पितॄणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ ॥" इति। वारुणं शतभिषक्। इदं च कुम्भादित्ये ज्ञेयमिति हेमाद्रिः। भारते—"काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन्भवेत्तु भूपाल सदा पितृभ्यः। दत्तं तिलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः ॥" इति। होलिकानिर्णयः। फाल्गुनपौर्णमासी

कल्याणी ! सुवर्ण वा चांदीके वृषपर स्थित हुए महादेवका घटके ऊपर स्थापन करे। और मदनरत्नमें तो यह लिखा है, कि सुवर्णकी शिवमूर्तिका पूजन करे, फिर स्थिर वा चल लिंगको पञ्चामृतसे भरे सहस्र वा सौ वा पचास घड़ोंसे स्नान कराके और पूजन करके जागरण करे, फिर परले दिन तिलोंकी सहस्र वा सौ आहुतियोंसे हवन करे। फिर ब्राह्मणोंको वस्त्र और बारह गौ और आचार्यको गौ और शय्या देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे। माघ महीनेकी अमावस्या युगादि है; यही कहा है कि, माघमासमें जो अमावस्या वह युगादि है इत्यादि प्रथम कह आये हैं, अन्य पूर्वके तुल्य जाननी। ऐसे ही विष्णुपुराणमें और भी विशेष लिखा है कि, यदि माघमासकी अमावस्यामें शतभिषा नक्षत्रका योग हो तो वह पितरोंका उत्तम समय है, हे राजन् ! अल्पपुण्यवालोंको तो वह प्राप्त नहीं होता है; वह कुम्भकी संक्रान्तिमें जानना, यह हेमाद्रिका कथन है। भारतमें लिखा है कि, हे राजन्। यदि उस समय धनिष्ठा नक्षत्र हो तो उस समय कुलके मनुष्य यदि पितरोंको तिल अन्न दें तो वह अन्न दशसहस्र वर्षतक पितरोंको तृप्त करता है। फाल्गुनकी पूर्णिमाको होली कहते हैं, वह सायाह्न-

---

१ "फाल्गुनस्यापरे पक्षे कुम्भस्थे दिवसाधिपे। जीवे धनुषि योगे च शोभने रविवासरे। पुष्यर्क्षे यदि सम्पूर्णा गोविन्दद्वादशी मता। फाल्गुने शुक्लपक्षे स्यात्पुष्यर्क्षे द्वादशी यदि। गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी। गोविन्दद्वादशीं प्राप्य गच्छेच्छ्रीपुरुषोत्तमम्। विनायासेन राजेन्द्र मुक्तः सायुज्यमाप्नुयात्॥" अत्र श्रीगोविन्दं सम्पूज्योपवासं कुर्यात्। 'उपोष्य च जगन्नाथं नमेच्छ्रीपुरुषोत्तमम्' इत्युक्तेः। गंगास्नाने मन्त्रः—"महापातकसंघानि यानि पापानि सन्ति वै। गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि ॥" अर्थात्—फाल्गुनके दूसरे पक्षमें कुम्भके सूर्य होनेसे धनके बृहस्पति शोभनयोग-

होलिका । सा च सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या-"सायाह्ने होलिकां कुर्यात्पूर्वाह्णे क्रीडनं गवाम्" इति वचनादिति निर्णयामृते उक्तम् । भद्रायां होलिकानिषेधः । ज्योतिर्निबन्धे तु-"प्रतिपद्भूतभद्रासु यार्चिता होलिका दिवा । संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं दहति सा द्रुतम् ॥ प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पूर्णिमा फाल्गुनी सदा। तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे ॥ २ ॥" इति नारदवचनात् प्रदोषव्यापिनीत्युक्तम् । हेमाद्रौ मदनरत्ने च भविष्ये-"अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे । गोमयेनोपलिप्ते च सचतुष्के गृहांगणे ॥" इत्यादिना तत्रैव तद्विधानाच्च । तेनेयं पूर्वविद्धा-"श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्ववि- द्धैव कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् ॥" इति बृहद्यमब्रह्मवैवर्तोक्तेश्च । दिनद्वये प्रदोष- व्याप्तौ परैव । पूर्वदिने भद्रासत्त्वात्तत्र च होलिकानिषेधात् । तदुक्तं निर्णयामृते मदनरत्ने च पुराणसमुच्चये-"भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभंगं करोति वै । नग-

---

व्यापिनी ग्रहण करनी, यह निर्णयामृतमें लिखा है। कारण कि, यह कथन है कि—सायाह्न- कालमें होली और पूर्वाह्णमें गोक्रीडा करे । ज्योतिर्निबन्धमें तो इस नारदके वाक्यसे प्रदोष- व्यापिनी लेनी चाहिये,यह लिखा है कि, प्रातिपदा चौदस भद्रामें और दिनमें पूजी हुई होली वर्ष दिनतक उस देश और पुरको शीघ्र भस्म करती है। फाल्गुनमासकी पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये,उसमें भद्राके मुखको छोड़कर सायंकालके समय होलीका पूजन करना यह नारद कहते हैं। हेमाद्रि और मदनरत्नमें भविष्यपुराणका लेख है कि, हे पार्थ ! इस पूर्णिमाको गोबरसे लिपे हुए चौकोर घरके आँगनमें बालकोंकी रक्षा करे, इत्यादि वाक्योंसे उस समयमें पूजाका विधान लिखा है, इससे यह पूर्वविद्धा लेनी चाहिये । बृहद्यम और ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भी लिखा है कि, श्रावणी, दुर्गानवमी, दूर्वाष्टमी, होली, शिवरात्रि, बलिका दिन ये पूर्वविद्धा ही करनी । यदि दोनों दिन प्रदोषमें व्याप्ति हो और पूर्वदिनमें भद्रा हो तो उसमें होलीके निषेधसे परली लेनी चाहिये । सोई निर्णयामृत और मदनरत्नमें पुराणसमुच्चयके वाक्यसे लिखा है कि, भद्रामें यदि होलीमें अग्नि लगावे तो वहां देशका भग करती है और नगरको भी वह इष्ट नहीं है, इससे उसे त्याग दे । इस प्रकार भद्रामें

—रविवार पुष्यनक्षत्र होनेसे 'गोविन्दद्वादशी' कहाती है, (तिथितत्त्वमें लिखा है कि,) फागुन शुक्ल पक्षमें पुष्यनक्षत्रमें यदि द्वादशी हो तो यह गोविन्दद्वादशी सब पापनाशिनी है. गोविन्दद्वादशीको प्राप्त होकर श्रीपुरुषोत्तमके समीप गमनसे हे राजन्! विना परिश्रम मुक्ति होती है। इसमें श्रीगोविन्दको पूजकर उपवास करे । कहा भी है कि, जगन्नाथका व्रत कर श्रीपुरुषोत्तमको नमस्कार करे । गंगास्नानका मंत्र (पद्मपुराणमें लिखा) है कि, महापातकके समूह तथा और भी जो पाप हैं हे गङ्गे ! उन मेरे पापोंको हरण करो ।

रस्य च नैवेष्टा तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥" तथा—"भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा । श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी ॥" तथा—"दिनार्धात्परतोऽपि स्यात्फाल्गुनी पूर्णिमा यदि । रात्रौ भद्राऽवसाने तु होलिका दीप्यते तदा ॥" इति । यदा तु पूर्वदिने चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी परदिने च क्षयवशात्सायाह्नात् प्रागेव पूर्णिमा समाप्यते तदा पूर्वदिनसंपूर्णरात्रौ भद्रासत्त्वात्तत्र च तन्निषेधात् परेऽहनि प्रतिपद्येव कुर्यात् । "सार्धयामत्रयं वा स्याद्द्वितीयदिवसे यदा । प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा सा होलिका स्मृता ॥" इति भविष्यवचनादिति निर्णयामृतकारः । मदनरत्नेऽप्येवम् । यत्तु—'वह्नौ वह्निं परित्यजेत्' इति भविष्ये । वह्नौ होलिकायां वह्निं प्रतिपदं वर्जयेदित्यर्थः । तदुक्तं भिन्नविषयमिति तत्रैवोक्तम् । अन्ये तु तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वेत्यर्थः । "प्रदोषव्यापिनी चेत्स्याद्यदा पूर्वदिने तदा । भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदीपनम् ॥" इति नारदवचनात् । "निशागमे प्रपूज्येत होलिका सर्वदा बुधैः । न दिवा पूजयेड्ढुण्ढां पूजिता दुःखदा भवेत् ॥" इति दिवोदासीये वचनात् । 'यामत्रयोर्ध्वयुक्ता चेत्प्रतिपत्तु भवेत्तिथिः । भद्रामुखं परित्यज्य कार्या होली मनीषिभिः॥" इति विद्याविनोदेऽभिधानाच्च भद्रामुखं विहाय पूर्वदिन एव कार्येत्याहुः ।

श्रावणी और होली ये दो न करनी चाहिये; कारण कि, श्रावणी तो राजाको और होली ग्रामको भस्म करती है । इसी प्रकार यदि फाल्गुनकी पूर्णिमा मध्याह्नसे परे हो और रात्रिमें भद्राके अन्तकालतक हो तो उसमें ही होलीको जलावे । यदि पहले दिन चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी हो और अगले दिन पूर्णिमा क्षयके वशसे सायंकालसे प्रथम समाप्त हो गयी हो तब प्रथम दिन सम्पूर्ण रात्रिमें भद्रा हो तो उसमें उसका निषेध होनेसे अगले दिन प्रतिपदामें ही उसको करे, यह निर्णयामृतकारका कथन है; कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखा है कि, यदि बढ़ी हुई प्रतिपदा दूसरे दिन साढ़े तीन प्रहर हो तो उसे होली कहते हैं। इसी प्रकार मदनरत्नमें कहा है । जो कि भविष्यमें यह कहा है कि, होलिकाको प्रतिपदामें न करना वह उक्तसे भिन्नके विषयमें है यह प्रथम कह आये हैं । अन्य तो यह कहते हैं कि, इस नारद और दिवोदासीयके कथनसे भद्राके मुखको त्यागकर पहिले दिन ही करे कि, उसमें भद्राके मुखको छोड़कर होलीका पूजन करे और यदि प्रदोषव्यापिनी न हो तो प्रथम दिन भद्रामुखको छोड़कर होलिकाका पूजन करे तथा पण्डितजन होलिकाका सदा सायंकालमें पूजन करे, दिनमें न करे; कारण कि, दिनमें पूजी हुई होलीसे दुःख प्राप्त होता है और विद्याविनोदमें भी लिखा है कि, पूर्णिमामें तीन प्रहरसे ऊपर प्रतिपदा आजाय तो भद्राके मुखको छोड़कर होलिकाका पूजन करना चाहिये । भद्रामुख तो रत्नमालामें यह लिखा है

भद्रामुखनिर्णयः । भद्रामुखं तु—'नाड्यस्तु पञ्च वदनं गलकस्तथैका' इति रत्नमालोक्तं ज्ञेयम् । शिष्टाचारोऽप्येवमेव । तत्र ग्रहणनिर्णयः । अत्र चेच्चन्द्रग्रहणं तदा ततोर्वाऽङ्क्षिशि भद्रावर्जे पौर्णमास्यां होलिकादीपनम् । अथ परेऽह्नि ग्रस्तोदयस्तदा पूर्वदिने भद्रावर्जे रात्रौ चतुर्थयामे विष्टिपुच्छे वा होलिका कार्या । ग्रहोत्तरं प्रतिपत्सत्त्वात्तत्पूर्वं च दिवा होलानिषेधादिति दिवोदासचन्द्रप्रकाशौ वस्तुतस्तु परदिने प्रदोषे पौर्णमासीसत्त्वे कर्मकालस्पर्शे चतुर्थयामादिगौणकालग्रहणे मानाभावाद्भद्राभावाच्च ग्रहणकाल एव होला कार्या । न च—"सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत श्रुतमन्नं विवर्जयेत् ॥" इति निषेधात् कथं सूतके होलेति वाच्यम् । तस्योत्तरार्धशेषत्वात् । पूजामन्त्रस्तु—"असृक्पाभयसंत्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः । अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव ॥" इति । यत्तु वार्तिककारैर्होलिका आचारप्राप्तेत्युक्तं तत्र हेमाद्र्याद्युदाहृतभविष्यवचनान्यसिद्धानि कृत्वा चिन्ता ज्ञेया । आर्त्यधिकरणवत् । हुताशिनी मलमासे न भवति । इयं मन्वादिरपि सा तु पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । मलमासे सति मन्वादिश्राद्धं मासद्वये कार्यमित्युक्तं प्राक् । गोविन्द-

---

कि, भद्राकी आदिकी पांच घडियोंको मुख, एक घड़ीको गला कहते हैं और शिष्टाचार भी यही है । दिवोदास और चंद्रप्रकाशका तो यह कथन है कि, यही पूर्णिमाको चन्द्रग्रहण हो तो उससे पूर्वरात्रिमें जिस समय भद्रा न हो उसमें होलीको जलाना उचित है, अथवा यदि दूसरे दिन ग्रसा हुआ ही उदय हो तो पहले दिन भद्रारहित रात्रिके चौथे प्रहरमें भद्राकी पुच्छमें अर्थात् पीछेकी घडीमें होलीको जलावे; कारण कि, ग्रहणसे उत्तर प्रतिपदा आ जायगी और प्रथम दिन होनेसे इन दोनोंमें होलीका निषेध है । तत्त्व तो यह है कि, दूसरे दिन यदि प्रदोषमें पौर्णमासी हो तो उसमें प्रदोषका स्पर्श होनेसे भद्राके अभावसे ग्रहण समयमें ही होलीको करना; कारण कि, जब मुख्य कर्मका समय मिले तब गौण चतुर्थयामादि समयके ग्रहण करनेमें कोई प्रमाण नहीं । यदि कोई शंका करे कि, राहुके दर्शनमें सब वर्णोंको सूतक प्राप्त होता है, इससे स्नान करके कर्मोंको करे और पकाये हुए अन्नको छोड़ दे, इस निषेधसे सूतकमें होली किस प्रकार होगी ? सो ठीक नहीं; कारण कि, यह (स्नात्वा) इत्यादि निषेध उत्तरार्द्धका शेष है (सर्वेषाम्) इत्यादिका नहीं है, इससे ग्रहण कालमें होली करनी इसमें कोई बाधक नहीं है । इसकी पूजाका मन्त्र यह है कि, होली असृक्पा राक्षसीके भयसे त्रासको प्राप्त हुए (अज्ञानी जनोंने) तुझे किया है, इससे तेरा पूजन करता हूं हे भूते ! तू ऐश्वर्यकी देनेवाली हो । जो कि, वार्तिककारोंने यह लिखा है कि, होली शिष्टाचारसे सिद्ध है उसमें हेमाद्रिमें कहे हुए भविष्यपुराणके वाक्योंको न मान करके दुःखीको तुल्य विचार जानना । होली मलमासमें नहीं होती, यह मन्वादि भी है और यह पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये । जो मलमास हो तो मन्वादि श्राद्ध दोनों महीनोंमें

दोलोत्सवनिर्णयः । कृत्यचिन्तामणौ ब्राह्मे–" नरो *दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्। फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत्॥" चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसंतोत्सवनिर्णयः । चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसन्तोत्सवः। सा चौदयिकी ग्राह्या । 'प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ ' इति भविष्योक्तेः दिनद्वये तथात्वे पूर्वा–" वत्सरादौ वसंतादौ बलिराज्ये तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः ॥ " इति वृद्धवसिष्ठवचनात् । अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये–"चैत्रे मासि महाबाहो पुण्ये तु प्रतिपद्दिने। यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः। न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो नृप ॥" इति। तथा–"प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ। कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः । वन्दयेद्धोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशान्तये ॥ " मन्त्रश्च–"वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च। अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव ॥ " इति। तत्र आम्रकुसुमप्राशनम्। अत्र चूतकुसुमप्राशनमुक्तं तत्रैव पुराणसमुच्चये–"वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च। संप्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषोऽथ समाः सुखी स्यात्॥" मन्त्रस्तु–"चूतमग्र्यं

करना। यह प्रथम कह आये हैं। फाल्गुनकी पूर्णिमाको मनुष्य पुरुषोत्तम गोविंदको हिंडोल पर बैठे देखनेसे संयत होकर वैकुण्ठको गमन करता है, यह कृत्यचिन्तामणिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखा है। चैत्रमासकी प्रतिपदाको वसंतोत्सव होता है, वह उदयकालकी लेनी चाहिये। कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखा है कि, जब मधु (चैत्र) प्रवृत्त हो तब प्रतिपदाके दिन सूर्योदयके समय वसंतोत्सव करे, यदि दोनों दिन उदयव्यापिनी हो तो प्रथम ही लेनी, कारण कि, वृद्धवसिष्ठने कहा है कि, वर्ष और वसंतकी आदिमें और बलिराज्यमें पण्डितोंको सदा प्रतिपदा पूर्वविद्धा करनी चाहिये। इसमें विशेष हेमाद्रिमें भविष्यके वाक्यसे यह लिखा है कि, हे महाबाहो! हे राजन्! चैत्रमासकी पवित्रप्रतिपदाके दिन चांडालको स्वयं स्पर्श करके जो मनुष्य स्नान करता है उसको पाप और आधि व्याधि किंचित् नहीं होती। इसी प्रकार चैत्रमासके आरम्भमें प्रतिपदाके दिन सूर्योदयके समय आवश्यक नित्य कर्मोंको करके पितृ और देवताओंका तर्पण करे और सब दुःखोंकी शान्तिके निमित्त होलीकी भस्मको प्रणाम करे। उसका मंत्र यह है कि, सुरेन्द्र ब्रह्मा और शिवसे तू स्तुति की गयी है, इस कारण हे देवि! तुम हमारी रक्षा करो और विभूति, भूतिको देनेवाली हो। वहां ही इस पुराणसमुच्चयके वाक्यसे आमके मौलका भोजन लिखा है कि, शुक्लपूर्णिमाको जब जाड़ेका समय बीता हो और प्रातःकाल वसंत समय प्राप्त हुआ हो तब यदि मनुष्य चंदन सहित आमके मौलको खाय तो वह वर्षदिनतक सुखी होता है। उसका यह मन्त्र है कि, हे वसंत!

वसन्तस्य माकन्दकुसुमं तव । सचन्दनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये ॥ " इति । चैत्रामावास्या मन्वादिस्तन्निर्णयः । चैत्रामावास्या मन्वादिः । सा चापराह्णव्यापिनी ग्राह्या कृष्णपक्षस्थत्वात् । इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ फाल्गुनमासः समाप्तः ॥ कविप्रार्थना । एवं निरूपितमिदं गहनं तु कालतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक् । तद्दोषदृष्टिमपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोऽस्मि तेषु ॥ १ ॥ मया सद्वाऽसद्वा यदिह गदितं मन्दमतिना किमेतच्छक्यं वाऽध्यवसितुमपि स्वल्पमतिना । यदेवं यत्किञ्चिद्गदितमिह विख्यातमहिमा प्रतापोऽयं सर्वो विकसति तु पित्रोश्चरणयोः ॥ २ ॥ यो भाट्टतन्त्रगहनार्णवकर्णधारः शास्त्रान्तरेषु निखिलेष्वपि मर्मभेत्ता । योऽत्र श्रमः किल कृतः कमलाकरेण प्रीतोऽमुना तु सुकृती बुधरामकृष्णः॥३॥ इति श्रीमन्नारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टसुतदिनकरभट्टानुजभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ संवत्सरकृत्यनिरूपणं नाम द्वितीयपरिच्छेदः समाप्तः ॥ २ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

मैं तेरे इस आम और माकन्दके फूलोंको चन्दन सहित सब काम अर्थकी सिद्धिके निमित्त आज पीता हूं । चैत्रकी अमावस्या मन्वादि लिखी है । वह कृष्णपक्षकी होनेसे अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये । इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां फाल्गुनमासः समाप्तः ॥ अब ग्रन्थकार प्रार्थना करता है कि, वाक्य और युक्तिसे विचार करके यह गहनरूपी कालनिर्णय करके मैंने इस प्रकार निरूपण किया है सो इसको पण्डितजन दोषदृष्टि छोड़कर विचार करें, मैं उनको नवकर वारंवार प्रणाम करता हूं । मुझ मन्दमतिने इसमें सत्य वा असत्य जो लिखा है उसको अल्प बुद्धिवाला तो जाननेको समर्थ नहीं हो सकता । इससे जो मैंने यत्किंचित् लिखा है वह सम्पूर्ण विख्यात महिमावाले माता पिताके चरणोंका प्रतापी विकसित हुआ है, जो भट्टोंके शास्त्रोंके वनरूपी सागरका कर्णधार है तथा जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मके खोलनेवाले इस ग्रन्थमें कमलाकरने श्रम किया है उससे वह पुण्यात्मा रामकृष्ण पंडित प्रसन्नताको प्राप्त करे ॥

इति श्रीनिर्णयसिन्धौ पंडितसुखानंदसूनुपंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां

द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः॥२॥

इति निर्णयसिन्धौ द्वितीयः परिच्छेदः ॥२॥

श्रीः ।

निर्णयसिन्धौ–

तृतीयपरिच्छेदः ३.

पूर्वार्धम् ।

अथ प्रकीर्णकनिर्णयः । श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकरसंज्ञितः । निरूप्य तिथिकृत्यं तु प्रकीर्णं वक्तुमुद्यतः ॥ १ ॥ तत्र गर्भाधानम् । तत्रादौ संस्कारेषु गर्भाधानम् । तत्र प्रथमरजोदर्शने दुष्टमासग्रहणसंक्रमादिफलं तत्र शान्त्यादि च पितृकृतप्रयोगदीपिकायां भट्टकृतप्रयोगरत्ने च ज्ञेयम् । किंचित्तूच्यते । मदनरत्ने नारदः–"अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि । परिघस्य तु पूर्वार्द्धे व्यतीपाते

दोहा–सिद्धिसदन आनंदघन, अभिमत फलदातार ।
उमासहित श्रीशंभुको, वन्दौं वारंवार ॥ १ ॥
उमारमण करुणायतन, दीनबन्धु सुखदान ।
नित ज्वालापरसादको, पालहु सब गुणखान ॥ २ ॥

अब प्रकीर्णनिर्णय लिखते हैं । श्रीरामकृष्णके पुत्र कमलाकरभट्ट तिथिकृत्यका निरूपण करके प्रकीर्णके कहनेको उद्यत होते हैं । उसमें प्रथम संस्कारोंमें गर्भाधानका निर्णय करते हैं । इसमें दुष्ट महीना, ग्रहण, संक्रांति आदिमें प्रथम रजोदर्शनका फल और शांति आदि पितृकृत प्रयोगदीपिका और भट्टकृतप्रयोगरत्नमें लिखे हैं, वहां देख लेने । कुछ थोड़ासा यहां भी लिखते हैं–मदनरत्नमें नारदका कथन है कि, अमावस्या, रिक्ता, अष्टमी, छठ, द्वादशी, प्रतिपदा, परिघका पूर्वार्द्ध, व्यतीपात, वैधृति, संध्या तथा ग्रहण और भद्रामें यदि प्रथम

---

१ "सम्मार्जनीकाष्ठतृणादिशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् । तल्पोपभोगे तपसि स्थिता चेद् दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात् ।" अर्थात्–बुहारी, काष्ठ, तृण, छाज आदि हाथमें लिये जो रजोवती हो तो कुलटा हो । शय्यामें तथा तपमें स्थित हो तो भाग्यवती हो, यह प्रथम रजोदर्शनका फल है ॥

च वैधृतौ ॥ संध्यासूपप्लवे विष्टयामशुभं प्रथमार्त्तवम् । रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी । पतिव्रता क्लेशभागी सूर्यवारादिषु क्रमात् ॥ वैधव्यं सुतलाभश्च मैत्रं शत्रुविवर्द्धनम् । मित्रलाभः शत्रुवृद्धिः कुलर्द्धिर्बन्धुनाशनम् ॥ मरणं वंशवृद्धिश्च निराहारः कुलक्षयः । तेजश्च सुतनाशश्च कुलहानिस्तिथिक्रमात् ॥ ९ ॥" गर्गः—"सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता । धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसंतानमोदिनी ॥ सुपुत्रा चैव दुष्पुत्रा पितृवेश्मरता सदा । दीना प्रजावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥ साध्वी पतिप्रियं नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी । स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुण्यपुत्रादिसंयुता ॥ नित्यं धनचयासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता । मूर्खा चाज्ञा पुण्यवती दस्रर्क्षादिः क्रमात्फलम् ॥ कुलीरवृषचापान्त्यनृयुकन्यातुलाघटाः । राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्तवे ॥ ९ ॥ " गर्गः—"सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद्दृढवस्त्रा पतिव्रता । क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता॥दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा । नीलाम्बरधरा नारी पुष्पिता विधवा ततः ॥ वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् । समाश्चेत्कन्यकाश्चेति फलं स्यात्प्रथमार्त्तवे ॥३॥" तत्र स्त्रीसं-

---

रजोदर्शन हो तो अच्छा नहीं होता । रोगिणी, पतिव्रता, दुःखित, पुत्रिणी, भोगभागिनी, पतिव्रता, क्लेशभोक्री ये क्रमसे सूर्य आदि सात वारोंमें पहले रजोदर्शनके फल जानने चाहिये, अर्थात् सूर्यवारमें हो तो रोगिणी, चन्द्रवारमें हो तो प्रतिव्रता इत्यादि क्रमसे समझने चाहिये । तथा तिथियोंमें प्रथम रजोदर्शनका क्रमसे यह फल है कि, वैधव्य, सुतका लाभ, मित्रता, शत्रुकी वृद्धि, मित्रकी प्राप्ति, शत्रुकी वृद्धि, कुलकी वृद्धि, बन्धुनाश, मरण, कुलवृद्धि, भोजनकी अप्राप्ति, कुलक्षय, तेज, पुत्रनाश, वशंकी हानि होती है । यहां गर्गने यह कहा है कि, अश्विनी आदि नक्षत्रोंमें रजोदर्शनका यह फल क्रमसे जानना चाहिये कि, सुभगा, दुःशीला, वंध्या, पुत्रवती, धर्ममें युक्त, व्रतघ्नी, परायी संतानको प्रसन्नताकी देनेवाली, शोभन पुत्रोंवाली, दुष्ट पुत्रोंवाली, पिताके घरमें तत्पर, दुःखित, प्रजावाली और पुत्रोंसे युक्त, चित्राम करनेवाली, साध्वी, पतिको नित्यप्रिय, शोभन पुत्रोंवाली, कष्ट भोगनेवाली, अपनें कर्ममें तत्पर, हिंसाशील, श्रेष्ठ पुत्रोंसे युक्त, नित्य संचय करनेवाली, पुत्र और धान्यसे युक्त, मूर्ख, अज्ञ, पुण्यवती, अश्विनी आदिमें रजोदर्शनसे स्त्री क्रमसे इस प्रकारकी होती है। गर्गने यह भी लिखा है कि, कर्क, वृष, धन, मीन, मिथुन कन्या, तुला, कुम्भराशिमें प्रथम रजोदर्शन शुभ देनेवाला है । गर्गने कहा है कि, ऋतुसमयमें श्वेत दृढ (पुष्ट) क्षौम नवीन फटे लाल वा नीले वस्त्रोंको स्त्री धारण कर रही हो तो क्रमसे सुभगा, पतिव्रता, भूस्वामिनी, सुखसे युक्त, दुर्भगा, रोगिणी, विधवा होती है, अर्थात् यदि श्वेतवस्त्रोंको धारण किये हो तो सुभगा इत्यादि क्रमसे समझना चाहिये । प्रथम ऋतुमें वस्त्रमें रुधिरकी बिन्दु यदि विषम (तीन वा पांच आदि) पड़े तो पुत्र, सम अर्थात् (दो चार आदि) पड़े तो कन्या होती है, यह

सर्गवर्जनम् । अथ स्त्रीसंसर्गवर्जनमाह वासिष्ठः-"प्रभूतदोषे यदि दृश्यते तत्पुष्पं तदा शान्तिककर्म कार्यम् । विवर्जयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमुत्तमेऽह्नि ॥" ज्योतिर्निबन्धे वासिष्ठः-"आद्यर्तौ पौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याः कुयुक्पापवारा रिक्ता-मार्काष्टषष्ठ्यः पितृपरसदने रात्रिसन्ध्यापराह्ने । मिश्रोग्रा मूलतीक्ष्णं विवरमनरुणाऽल्पाधिकास्त्रं गराष्टोत्पातः पापस्य लग्नं न सदरुणजरन्नीलरक्ताम्बरं च ॥ आद्यर्तौ दुर्भगा नारी विष्कम्भे चेद्रजस्वला । वन्ध्या चैवातिगण्डे च शूले शूलवती भवेत् ॥ गण्डे तु पुंश्चली नारी व्याघाते चात्मघातिनी । वज्रे च स्वैरिणी प्रोक्ता पाते च पतिघातिनी ॥ परिघे मृतवन्ध्या च वैधृतौ पतिमारिणी । शेषाः शुभावहा योगा यथानामफलप्रदाः ॥" तत्र शान्तिनिर्णयः । शान्तिमाह प्रयोगपारिजाते शौनकः-"सार्तवानां तु नारीणां शान्तिं वक्ष्यामि शौनक । पञ्चमेऽह्नि चतुर्थे वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ द्रोणप्रमाणधान्येन व्रीहिराशित्रयं भवेत् । कुम्भत्रयं न्यसेद्राशौ तन्तुवस्त्रादि-वेष्टितम् ॥ सूक्तेनाथ नवर्चेन प्रसुव आप इत्यथ । ऋचायाः प्रवतस्तद्वद्वा

प्रथम रजोदर्शनका फल वर्णन किया । यहां स्त्रीसंगका निषेध कहते हैं-वासिष्ठने कहा है कि, यदि महादोषमें रजोदर्शन हो तो शांतिकर्म करना चाहिये और जबतक रजोदर्शन रहे, तबतक एक शय्याको त्याग दे । ज्योतिर्निबन्धमें वासिष्ठने लिखा है कि, प्रथम रजोदर्शनमें पौष, ज्येष्ठ, कार्त्तिक, चैत्र, आषाढ, भाद्रपद, आश्विन, पापवार, रिक्ता अमावस्या, द्वादशी, अष्टमी, षष्ठी ये तिथि, रात्रि, सन्ध्या, अपराह्न, माता पिताका दिन, पराया घर, मिश्र, उग्र, तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र और विवर (क्षत) जिसमें लाली न हो ऐसा रुधिर, अल्प वा अधिक रुधिर, देशका उत्पात, पाप लग्न, नील, फटा हुआ, रक्त वस्त्र ये उत्तम नहीं हैं । विष्कम्भ, अतिगण्ड, शूल, गण्ड, व्याघात, वज्रपात, परिघ तथा वैधृति यदि इनमें प्रथम रजोदर्शन हो तो स्त्री क्रमसे दुर्भगा, वन्ध्या, शूलवती, पुंश्चला, (व्यभिचारिणी), आत्मघात करनेवाली, स्वैरिणी, पतिका घात करनेवाली, मृतवन्ध्या, पतिमारिणी होती है । शेष योग नामके अनुरूप फलदायक जानने । इसकी शान्ति प्रयोग-पारिजातमें शौनकने लिखी है कि, मैं शौनक ऋतुवाली स्त्रियोंकी शांति लिखता हूं कि, पांचवें वा चौथे दिन ग्रहोंके पूजन पूर्वक द्रोण (२५६ मुट्ठी) व्रीहियोंकी तीन राशि करे, उनके ऊपर तन्तुवस्त्रसे लपेटे हुए तीन घडे रक्खे, उनको भिन्न भिन्न तीर्थके जलसे भरे, फिर नौ ऋचाओंका सूक्त तथा ' प्रसुव आप ' इत्यादि ऋचा तथा ' प्रसव '

---

१ "प्रसुवआपोमहिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः । प्रसप्तसप्तत्रेधाहिचक्रमुः प्रसृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥ ऋ० ८ । ३ । ९ ॥"

यत्र्या च ततः क्रमात् ॥ मध्यकुम्भे क्षिपेद्धान्यमौषधानि च हेम च । उदुम्बरः कुशो दूर्वा राजीववटबिल्वकाः ॥ विष्णुक्रान्ताथ तुलसी बर्हिषं शंखपुष्पिका । शतावर्यश्वगन्धा च निर्गुण्डी सर्षपद्वयम् ॥ अपामार्ग पलाशश्च पनसो जीवकस्तथा । प्रियंगवश्च गोधूमा व्रीहयोऽश्वत्थ एव च ॥ क्षीरं दधि च सर्पिश्च पद्मपत्रं तथोत्पलम् । कुरण्टकत्रयं गुंजा वचाभद्रकमुस्तकाः ॥ द्वात्रिंशदौषधानीह यथासंभवमाहरेत् । मृत्तिकाश्चौषधादीनि तन्मन्त्रेण क्षिपेत्क्रमात् ॥ कुम्भोपरि न्यसेत्पात्रं कांस्यं मृद्वेणुताम्रजम् । भुवनेश्वरीं न्यसेत्तत्र इन्द्राणीं च पुरन्दरम् ॥ जपेद्गायत्रीमाहोमाच्छ्रीसूक्तं च जपेत्ततः । स्पृशन्वै दक्षिणं कुम्भं ऋत्विगेको जपेदथ ॥ चत्वारि रुद्रसूक्तानि चतुर्मन्त्रोत्तराणि च । संस्पृशन्नुत्तरं कुम्भं श्रीसूक्तं रुद्रसंख्यया ॥ शन्न इन्द्राग्निसूक्तं च तत्रैव संस्पृशञ्जपेत् । कुम्भस्य पश्चिमे देशे शान्तिहोमं समाचरेत् ॥ दूर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च । तिसृभिश्चैव दूर्वाभिरेकैका चाहुतिर्भवेत् ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा । गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम् ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा समुद्राद्दूर्मिसूक्ततः । सन्ततामा-

---

इत्यादि ऋचा और गायत्री इनसे क्रमसे कुम्भके मध्यमें धान्य ओषधि तथा सुवर्ण इनको डाले, उदुम्बर (गूलर), कुशा, दूर्वा, कमल, बड़, बेल, विष्णुक्रान्ता (नीलपुष्पा), तुलसी, बर्हिष, (६४ कुशा), शंखपुष्पिका (शंखपुष्पा), शतावरी, गन्धा (असगन्ध), निर्गुंडी, दोनों सरसों, अपामार्ग (ओंगा), ढाक, पनस, जीवक, प्रियंगु, गेहूं, व्रीहि (धान्य), पीपल, दूध, दही, घी, कमलके पत्ते, कमल, तीन कुरंट, चौटली, वच, भद्रक (धनियां), मोथा इन बत्तीस ओषधियोंको यथासंभव (जितनी मिल सकें) लावे, मृत्तिका और इन ओषधियोंको क्रमसे उसी मन्त्रसे डाले । घड़ेके ऊपर कांसी वा मृत्तिका वा बाँस वा तांबेके पात्रको रक्खे । वहां भुवनेश्वरी, इन्द्राणी, इन्द्रका स्थापन करे और होमपर्यन्त गायत्री और लक्ष्मीसूक्तका जप करे, अथवा एक ऋत्विक् दक्षिणके घटका स्पर्श करता हुआ जप करे और वहां ही चार रुद्रसूक्तके,चार ऊपरके मन्त्र और ग्यारह श्रीरुद्र तथा शन्नइन्द्र और अग्निसूक्तके पाठ उत्तर घटको स्पर्श करता हुआ करे । कुम्भके पश्चिम भागमें दूर्वा, तिल, गेहूं, खीर, घीसे शान्तिहवन करे, तीन दूर्वासहित एक एक घीकी आहुति दे । यहां चार प्रकारके हविकी एक सहस्र आठ वा अष्टोत्तरशत आहुति गायत्रीमंत्रसे ही करे, फिर (समुद्रादूर्मि) सूक्तसे स्विष्टकृत् होम करके निरन्तर घृतकी धारासे पूर्णाहुति करे,फिर

---

१ लक्ष्मीसूक्त, श्रीसूक्त, रुद्रसूक्त, पावमानी ऋचा यह एक एक कई ऋचाओंका सूक्त पद्धतियोंमें पृथक् लिखा है इससे नहीं लिखा, यह अन्य पद्धतियोंमें देखो ॥

२ "समुद्रादूर्मिर्मधुमा ९ उदार दुपा ९ शुनासममृतत्वमानट् घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ ८ ॥ १० ॥"

ज्यधारान्तां पूर्णाहुतिमथाचरेत् ॥ अथाऽभिषेकं कुर्वीत प्रतिकुम्भस्थितोदकैः । आपोहिष्ठेति नवभिः सूक्तेन च ततः परम् ॥ इन्द्रो अङ्ग त्र्यृचेनैव पावमानैः क्रमेण तु । उभयं शृणवच्चैनं स्वस्तिदाविश एकया ॥ त्रैयम्बकेन मन्त्रेण जातवेदस एकया । समुद्रज्येष्ठा इत्यादि त्रायन्तां च त्रिभिः क्रमात् ॥ इमा आपस्त्र्यृचेनैव देवस्य त्वेति मन्त्रतः । मन्त्रेणाथ तमीशानं त्वमग्ने रुद्र इत्यथ ॥ तमुष्टुहीति मन्त्रेण पितरं भुवनस्य हि । याते रुद्रेति मन्त्रेण शिवसंकल्पमन्त्रतः ॥ इंद्र त्वा वृषभं पञ्चमन्त्रैश्चैवाभिषचयेत् । धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय च भूषणम् ॥ सदाक्षिणमनड्वाहं प्रदद्याद्रुद्रजापिने । महाशान्तिं प्रजप्याथ ब्राह्मणान्भोजयेदथ ॥ ॥ २ ॥" नारदः-"तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः । प्रत्येकाष्टशतं चैव गायत्र्या जुहुयात्ततः ॥ स्वर्णगोभूतिलान्दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये ।" प्रकारान्तरं मदनरत्ने ज्ञेयम् । विस्तरान्नोच्यते । ग्रहणे रजोदर्शने तु जातकर्मप्रस्तावे शान्तिं वक्ष्यामः । प्रथमर्तौ विशेषः । स्मृतिचन्द्रिकायाम्-

---

तीनों घड़ोंके जलसे इस प्रकार अभिषेक करे, प्रथम आपोहिष्ठेत्यादि नौ ऋचाओंसे, फिर सूक्तसे फिर इन्द्रोअंग इत्यादि तीन ऋचाओंसे, फिर ' पावमानैः ' ऋचाओंसे, फिर ' उभय शृणवच्च न स्वस्तिदाविश ' इस एकसे, फिर (त्र्यम्बकं यजामहे) इस मन्त्रसे, फिर समुद्रज्येष्ठा आदि त्रायंत पर्यन्त तीन ऋचाओंसे, फिर ' इमा आप ' इन तीन ऋचाओंसे, फिर ' देवस्य त्वा ' इस मन्त्रसे, फिर 'तमीशानं' इस मन्त्रसे, फिर, त्वमग्ने, इस मन्त्रसे, फिर 'तमुष्टुहि' इस मन्त्रसे, फिर 'भुवनस्य पितर' इस मन्त्रसे फिर 'याते रुद्र'से, फिर शिवसंकल्प मंत्रसे, फिर ' इन्द्र त्वा वृषभं० ' इन पांच मन्त्रोंको पाठ करके यजमानका इन सब पूर्वोक्त मन्त्रोंसे अभिषेक करना चाहिये, आचार्यको भूषण सहित दूध देती गौ देनी चाहिये, रुद्रजप करनेवालेको दक्षिणा सहित बल देना चाहिये और महाशान्तिका जप करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे, मदनरत्नमें नारदने कहा है कि, वहां शान्ति करे, घी, दूर्वा, तिल, अक्षतोंसे प्रत्येक १०८ गायत्रीके हवनके निमित्त करे और सब दोषोंकी निवृत्तिके निमित्त सुवर्णकी गौ पृथिवी प्रदान करे अन्य प्रकार मदनरत्नमें जानना चाहिये, यहां विस्तारके भयसे नहीं कथन किया, ग्रहणके समय रजोदर्शन हो जाय तो जात प्रकरणमें उसकी शान्ति लिखेंगे । प्रथम ऋतुमें रजस्वलाका विशेष स्मृतिचंद्रिकामें वर्णन किया है कि, पहली ऋतुमें रजस्वलाको पति और

---

१ "ॐ आपोहिष्ठामयो भुवः । ता न ऊर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे । योवः शिवतमो रसः । तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिवमातरः । तस्माअरङ्गमामवः । यस्यक्षयायजिन्वथ । आपोजनयथाचनः ॥" २ "इन्द्रो अङ्गमहद्भयमभीषदपचुच्यवत् सहि स्थिरोविचर्षणिः ॥ २ । ८ । १ । ८ ऋ० ॥" ३ "त्र्यम्बकं यजामहे सुगधिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्। यजु० ३ । ६० ।"

"प्रथमर्तौ तु पुष्पिण्याः पतिपुत्रवतीस्त्रियाः । अक्षतैरासनं कृत्वा तस्मिंस्तामुपवेशयेत् ॥ हरिद्रागन्धपुष्पादीन्दद्युस्ताम्बूलकं स्रजम् । दीपैर्नीराजनं कुर्यात्सदीपे वासयेद्गृहे ॥ लवणापूपमुद्गादि दद्यात्ताभ्यः स्वशक्तितः ॥ २ ॥" इति । द्वितीयाद्यृतुषु नियमाः । द्वितीयाद्यृतुषु तन्नियमानाह मदनपारिजाते दक्षः- "अञ्जनाभ्यञ्जने स्नानं प्रवासं दन्तधावनम् । न कुर्यात्सार्त्तवा नारी ग्रहाणामीक्षणं

पुत्रवाली स्त्री अक्षतोंका आसन निर्माण कर उसे उसपर बैठावे, हलदी, गन्ध, पुष्प, पान, माला इनको दे, दीपकोंसे आरती करे और ऐसे घरमें सुलावे, जिस घरमें दीपक बलता रहे, उन स्त्रियोंको अपनी शक्तिके अनुसार लवण, मूंग, पुए आदि देने चाहिये । दूसरी ऋतु-आदिमें रजस्वलाके नियम प्रयोगपारिजातमें दक्षने वर्णन किये हैं कि, अञ्जन, उबटना, स्नान, प्रवास (परदेशमें जाना), दंतधावन और आकाशमें ग्रहोंका दर्शन ऋतुवाली स्त्रियोंको न

---

१ "स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् । स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नानान्न शुद्ध्यति ॥ सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेन्नान्यस्य कस्यचित् । अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ॥ इति । याज्ञवल्क्योऽपि-'मलवद्वाससा न संवदेत्, न सहासीत नास्या अन्नमद्यात् ब्रह्महत्यायै एषा वर्णं प्रतिमुच्यास्ते अधो खल्वाहु अभ्यञ्जनं वाव स्त्रिया अन्नमभ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्य काममन्यदिति । या मलवद्वासं संभवन्ति, यस्ततो जायते, सोऽभिशस्तो यामरण्ये तस्यै स्तेनः, यां पराचीं तस्यै ह्रीत, मुख्यप्रगल्भा । या स्नाति तस्या अप्सुमारुकः या अभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा याथ लिखते तस्यै खलतिरपस्मारी, यांक्ते तस्यै काणः या दतो धावते तस्यै श्यावदन्, या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी, या कृणत्ति तस्यै क्लीबा या रज्जुं सृजति तस्या उद्बन्धुकः या पर्णेन पिबति तस्या उन्मादकः, या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः । तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेदञ्जलिना वा पिबेत् अखर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथाय ।' इति तैत्तिरीयसंहिता ॥ स्त्रीधर्म हो तो तीन दिन अपना मुख न देखे, जबतक स्नानसे शुद्ध न हो तबतक किसीको अपना वचन भी न सुनावे, स्नान कर स्वामीका ही मुख देखे औरका नहीं अथवा पति न हो तो मनमें पतिका ध्यान करके सूर्यका दर्शन करे और याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, रजोदर्शनमें मलीन वस्त्र पहरे रहे, किसीके साथ न बैठे, न इसका अन्न खाय यह ब्रह्महत्याके निमित्त है । इसपर कहते हैं स्त्री रजोवती हो उसका अन्न न ले, मलीन वस्त्र तीन दिन रहे तो सन्तान अच्छी हो, जो वनमें जाय उसके स्तेन, जो पराक हो उसके ह्रीत, और वाचाल जो स्नान करती रहे उसके जलमें मारुक, जो उबटन लगावे उसके दुश्चर्मवाला, जो लिखे उसके खलित अपस्मारी, जो सुरमा लगावे उसके काना, जो दतोन करे उसके श्यामदन्त, जो नख काटे उसके कुनखी, जो रस्सी बटे उसके उद्बन्धुक, जो दोनोंसे पीवे उसके उन्मादी पुत्र हो, जो खर्वसे पिये उसके बौना पुत्र हो, तीनों दिन व्रत करके अञ्जलिसे जल पिये वा प्रजाकी रक्षाके निमित्त बृहत् पात्रसे जल पिये । यह तैत्तिरीय संहितामें लिखा है ॥ २१४ ॥

तथा ॥" अत्रिरपि-"वर्जयेन्मधु मांसं च पात्रे खर्वे च भोजनम्। गन्धं माल्यं दिवास्वापं ताम्बूलं चास्यशोधनम् ॥ दग्धे शरावे भुञ्जीत पेयं चाञ्जलिना पिबेत् ।" मदनरत्ने हारीतः-'रजःप्राप्ता चेदधः शयीत भूमौ कार्ष्णायसे पाणौ मृन्मये वाश्नीयात्' इति । विष्णुधर्मे-"आहारं गोरसानां च पुष्पालंकारधारणम्। अञ्जनं कंकतं दन्ताः पीठशय्याधिरोहणम् ॥ अग्निसंस्पर्शनं चैव वर्जयेच्च दिनत्रयम्।" ऋतोः पूर्वं स्त्रीगमननिषेधः। तथा प्रथमर्त्तोः पूर्वं स्त्रीगमनं न कार्यम्-"प्राग्रजोदर्शनात्पत्नीं नेयाद्गत्वा पतत्यधः। व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ॥" इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेः। तत्र ऋत्वनृत्वोरपि गमनम्। तत्र ऋतौ गमनमाह याज्ञवल्क्यः-'षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ।' इति। अनृतावप्याह गौतमः-'ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जनम् ।' इति । मनुः-"ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी तु या ॥ त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः ।" मदनरत्ने देवलः-'तस्मात्त्रिरात्रं चाण्डालीं पुष्पितां परिवर्जयेत् ॥" तत्र तिथ्यादिनिर्णः। तिथ्यादीनाह श्रीधरः-"षष्ठ्यष्टमीं पंचदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा। शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशाङ्कार्यसितेन्दुजानाम् ॥" उभयत्र

करना चाहिये। अत्रिने भी कहा है कि, मधु मांस धातुके छोटे पात्रमें भोजन गन्ध माला दिनमें शयन पान वा मुखशोधनको रजस्वला स्त्री न करे और मट्टीके पके और फूटे पात्रमें भोजन करे और अञ्जलीसे जलपान करे। मदनरत्नमें हारीतने लिखा है कि, यदि स्त्रीको रज हो जाय तो पृथ्वीपर शयन करे, लोहा, हाथ वा मट्टीके पात्रमें भोजन करे और अञ्जलीसे जलपान करे। विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, गोरसोंका भोजन, पुष्प और भूषणोंका धारण अञ्जन कंकत (कंघी) सुगन्ध लगाना आसन और शय्यापर बैठना तथा अग्निका स्पर्श रजस्वलाको तीन दिनतक न करना चाहिये। इसी प्रकार प्रथमकी ऋतुसे पहिले स्त्रीका संग न करे। कारण कि, विष्णुधर्मोत्तरमें ही आश्वलायनका यह वाक्य है कि, रजोदर्शनसे प्रथम स्त्रीका संग न करे और करे तो नरकमें पड़ता है और वीर्यके वृथा करनेसे ब्रह्महत्याकी प्राप्ति होती है। फिर ऋतु होनेपर गमन याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, स्त्रियोंको सोलह रात्रि ऋतु लिखी है, उनमें युग्म (दो चार आदि) रात्रियोंमें संग करे। गौतमने विना ऋतुमें भी गमन लिखा है कि, ऋतुमें वा वर्जित तिथियोंको त्यागकर सदा स्त्रीसंग करे। मनुने कहा है कि, स्त्रियोंकी सोलह रात्रि स्वाभाविक ऋतु लिखी है, उनमें आदिकी चार और ग्यारहवी और तेरहवी यह छः रात्रि निंदित हैं, शेष १० रात्रि उत्तम हैं। मदनरत्नमें देवलने लिखा है कि, उससे तीन रात्रितक चाण्डालस्वरूपिणी रजस्वलाको त्याग दे। ऋतुमें तिथि आदि श्रीधरने लिखी है कि, छठ, अष्टमी, पूर्णिमा, चौथ, चतुर्दशी दोनों पक्षोंमें इनको त्यागकर और तिथि सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुधवार गर्भाधानमें उत्तम

पक्षद्वये। आर्यो गुरुः। सितः शुक्रः। इन्दुजो बुधः। "विष्णुप्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभानि निषेककार्ये। पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रादित्याश्च मध्यमफला विफलाः स्युरन्ये॥" विष्ण्वादिदैवत्यनक्षत्राण्युपक्रान्तानि रत्नमालायाम्-"भेशा दस्रयमाग्निधातृशशिनः शर्वोऽदितिर्वाक्पतिः कद्रूजाः पितरो भगोर्यमरवित्वाष्ट्राह्वया मारुतः। शक्राग्नी त्वथ मित्र इन्द्रनिर्ऋती तोयं च विश्वेविधिर्गोविन्दो वसवोऽम्बुपाजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः॥" उत्तराशब्देनोत्तरात्रयम्। अत्र मूलस्य पूज्यत्वमुक्तम्। याज्ञवल्क्येन तु-'एवं गच्छन्स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत्[1]' इत्युक्तम्। तेन पूर्वत्र मूलं चिन्त्यम्। अत्र-'समासु पुत्रा विषमासु कन्या' इति ज्ञेयम्-'युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।' इति हेमाद्रौ शंखोक्तेः। तत्राप्युत्तरोत्तराः प्रशस्ताः। तदाहापस्तम्बः-'तत्राप्युत्तरा प्रशस्ता' इति। तत्रैव व्यासः-"रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः। पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः॥ सप्तम्यामप्रजा योषिदष्टम्यामीश्वरः पुमान्। नवम्यां

होते हैं और श्रवण रोहिणी हस्त अनुराधा समीर (स्वाती) रेवती मूल तीनों उत्तरा शतभिषा ये नक्षत्र उत्तम हैं. पुष्य धनिष्ठा मृगशिर अश्विनी चित्रा अदिति (पुनर्वसु) ये मध्यम हैं इनसे और नक्षत्र निष्फल हैं। विष्णु आदिके नक्षत्र रत्नमालामें ये अश्विनी आदिनक्षत्रोंके क्रमसे स्वामी है। अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र, शिव, अदिति, बृहस्पति, नाग, पितर, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, मरुत्, इन्द्राग्नि, मित्र, इन्द्र, निर्ऋति, जल, विश्वेदेवा, ब्रह्मा, गोविन्द, वसु, वरुण, अजचरण, अहिर्बुध्न्य, पूषा। इनमें मूलको उत्तम और पूज्य लिखा है। और याज्ञवल्क्यने रजसे दुर्बली स्त्रीका संग करता हुआ मनुष्य मघा और मूलको छोड़दे, इस वाक्यसे मूलको वार्जित लिखा है इससे मूलके विषयमें विकल्प समझना चाहिये। ऋतुओंमें समातिथियोंमें पुत्र विषमतिथियोंमें कन्या उत्पन्न होती है, यह हेमाद्रिमें शंखके वाक्यसे लिखा है. ऋतुकी भी तिथि उत्तरोत्तर उत्तम है, यही आपस्तम्बने लिखा है कि, उन तिथियोंमें भी उत्तरोत्तर उत्तम हैं। वहां ही व्यासने कहा है कि, चौथी रात्रिमें गर्भ रहे तो अल्पायु धनहीन पुत्र होता है, पांचवीमें पुत्रवाली कन्या, छठीमें मध्यमपुत्र, सातवींमें सन्तानहीन कन्या, आठवींमें ऐश्वर्यवान् पुत्र, नौमीमें सुभगा कन्या, दशमीमें

---

१ बृहस्पति कहते हैं कि, स्त्रीका रज अधिक हो तो कन्या, पुरुषका वीर्य अधिक हो तो पुरुष इसस शुक्र वृद्धिके निमित्त स्निग्ध भोजन करना स्त्रीको लघु भोजन करानेसे पुत्र होगा। जब कि, युग्म रात्रिमें शोणितकी अधिकता हो तो स्त्री भी पुरुषाकृति होती है, अयुग्ममें शुक्रकी अधिकतासे पुरुष भी स्त्रीकी आकृति होता है। कालका निमित्त होनेसे शुक्र शोणितके उपादानकारणकी प्रबलतासे स्त्रीको दुर्बल रक्खे, यह मिताक्षरामें कहा है॥ २१६॥

सुभगा नारी दशम्यां प्रवरः सुतः । एकादश्यामधर्मा स्त्री द्वादश्यां पुरुषोत्तमः ॥ त्रयोदश्यां सुता पापा वर्णसङ्करकारिणी ॥ धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च आत्मवेदी दृढव्रतः। प्रजापतिश्चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां पतिव्रता ॥ आश्रयः सर्वभूतानां षोडश्यां जायते पुमान् ॥ ४ ॥" इति । अत्र चतुर्थदिननिषेधेऽपि-'स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः ।' इति भारतोक्तेः । चतुर्थेऽहनि स्नातायां युग्मासु वा गर्भं संदधानि ' इति हारीतोक्तेर्विकल्पो ज्ञेयः । तत्रापि-"स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते । गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथञ्चन॥" इत्यापस्तम्बोक्तेर्व्यवस्था ज्ञेया ।. प्रभासखण्डे मरीचिः-'शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला । दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुद्ध्यति ॥" श्रौतकर्ममध्ये रजस्वला चेत्तत्र चतुर्थदिनेऽप्यधिकारः । 'अथ यदा त्रिरात्रिणी स्यादथैनामुपह्वयेत्' इत्यापस्तम्बसूत्रात् । 'चतुर्थेऽहनि गोमूत्रमिश्राभिरद्भिः स्नाता वासोयोक्त्रजालानि मन्त्रैर्धारयेत्' इति सोमेऽप्युक्तम् । एवं सर्वत्र श्रौतकर्मणीति धूर्तस्वामिरामाण्डारादयः । अत्र सर्वासु युग्मासु गमनमावश्यकं युग्मास्विति बहुवचननिर्देशादिति विज्ञानेश्वरः । तच्चैकस्यां रात्रौ सकृदेव कार्यम् । 'सुस्थ इन्दौ

श्रेष्ठ पुत्र, ग्यारहवींमें धर्महीन कन्या, बारहवींमें श्रेष्ठपुत्र, तेरहवींमें पापिनी और वर्णसंकर करनेवाली कन्या, चौदहवींमें धर्मज्ञाता कृतज्ञ आत्मज्ञानी; दृढसंकल्प पुत्र पन्द्रहवींमें पतिव्रता कन्या, सोलहवींमें सब भूतोंकी रक्षा करनेवाला पुत्र उत्पन्न होता है । यद्यपि यहां चौथे दिन संगका निषेध है तो भी ऋतुस्नाता स्त्रीके संग चौथे दिनकी रात्रिमें बुद्धिमान् मनुष्यको गमन करना चाहिये, इस महाभारतके वाक्यसे चौथे दिन स्नान करनेवाली स्त्रीमें वा युग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करना चाहिये, इस हारीतके वाक्यसे विकल्प जानना चाहिये । वहां भी इस आपस्तंबके वाक्यसे व्यवस्था जाननी कि, रजस्वला स्त्रीका चौथे दिन उत्तम स्नान है और वह रजोधर्मकी निवृत्ति होनेपर गमन करने योग्य है और विना निवृत्त हुए गमन करने योग्य नहीं है । प्रभासखण्डमें मरीचिने लिखा है कि, रजस्वला स्त्री पतिके निमित्त चौथे दिन स्नान करके शुद्ध है और देवपितरोंके कर्ममें पांचवें दिन शुद्ध होती है, वेदोक्त कर्मके बीचमें रजस्वला हो जाय तो चौथे दिन भी अधिकार है । कारण कि, आपस्तम्बका यह सूत्र है कि, जब यह त्रिरात्रिणी हो चुके अर्थात् रजके तीन दिन बीत जाँय तब इसमें बीजवपन कर, चौथे दिन गोमूत्र मिले जलोंसे स्नान करके वस्त्रोंकी जगह सूतके जालोंको मन्त्रोंसे धारण करे, यह सोमयज्ञमें लिखा है । इसी प्रकार सब वेदोक्त कर्मोंमें जानना चाहिये । धूर्तस्वामी रामांडार आदिका कथन है कि, ऋतुमें सब युग्मरात्रिमें गमन करना, 'युग्मासु' इस बहुवचनसे आवश्यक है यह विज्ञानेश्वरका मत है, परंतु वह गमन एक रात्रिमें एकबार ही करना ।

सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ।' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । इदं चर्तौ गमनमन्यकाले प्रतिबन्धादिना गमनाऽसंभवे श्राद्धैकादश्यादावपि कार्यम् । 'ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । व्याख्यातं चेदं मिताक्षरायाम्-'यत्र श्राद्धादौ ब्रह्मचर्यं विहितं तत्राप्यृतौ गच्छतो न ब्रह्मचर्यस्खलनदोषः' इति । पर्वाणीति बहुत्वेनाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणमिति च । मदनरत्नेऽप्येवम् । यत्तु हेमाद्रौ शिवरहस्ये-"दिवा जन्मदिने चैव न कुर्यान्मैथुनं व्रती । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च श्रेयोऽर्थी न च पर्वसु॥" इति तदनृतुविषयम् । 'ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्' इति मनूक्तेः । दर्शादौ तु न भवत्येव पर्वणां पर्युदस्तत्वात् । "ऋतुकालं वियुक्तो वा नैव गच्छेत्स्त्रियं क्वचित् । तत्र गच्छन्समाप्नोति ह्यनिष्टफलमेव तु॥" इति वृद्धमनूक्तेः । श्राद्धे ब्रह्मचर्यं नियतमित्युक्तम् । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । एतत्सति संभवे ज्ञेयम् । अनेकभार्यस्यर्तुयौगपद्ये निर्णयः । अनेकभार्यस्वर्तुयौगपद्ये हेमाद्रौ कश्यपः-"यौगपद्ये तु तीर्थानां विवाहक्रमशो व्रजेत् । रक्षणार्थमपुत्रां वा ग्रहणक्रमशोऽपि वा॥"

कारण कि, श्रेष्ठ चन्द्रमा हो तो सुलक्षण पुत्र एकबार ही होता है । यह यज्ञावल्क्यने लिखा है कि, यह ऋतु गमन यदि प्रतिबंध आदिसे अन्यकालमें न हो सके तो श्राद्ध और एकादशी आदिमें भी करना चाहिये । कारण कि, याज्ञवल्क्यका कथन है कि, पर्व और आदिकी चार रात्रि त्याग दे तो ब्रह्मचारी होता है । मिताक्षरामें इसका यह व्याख्यान कहा है कि, जहां श्राद्धमें ब्रह्मचर्य लिखा है वहां ऋतुमें गमन करनेसे ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाय तो दोष नहीं है, 'पर्वाणि' इस बहुवचनसे अष्टमी और चतुर्दशी लेनी चाहिये । मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखा है, जो हेमाद्रिमें शिवरहस्यका कथन है कि, दिन जन्मदिन श्राद्धकरके और खाकर और पर्वमें व्रतवाला मनुष्य कल्याण चाहे तो मैथुन न करे, यह वाक्य ऋतुसे भिन्नकालमें जानना. कारण मनुने यह लिखा है कि-जिस किसी आश्रममें निवास करता हुआ ऋतुमें गमन करनेसे ब्रह्मचारी रहता है । अमावस्या आदिमें तो स्त्री गमन नहीं होता । कारण कि, विष्णुपुराणमें पर्वोंका निषेध कहा है कि, अमावस्या अष्टमी पौर्णमासी चतुर्दशीमें ऋतुसे भिन्न कालमें भी स्नातक द्विजको ब्रह्मचारी होना चाहिये. माधवीयमें इस वृद्धमनुके वाक्यसे नियत ब्रह्मचर्य करना कहा है कि, श्राद्धमें प्रवृत्त मनुष्यको ऋतुकालमें कभी स्त्रीके संग गमन न करना चाहिये, यदि करे तो अनिष्ट फल मिलता है । पृथ्वीचन्द्रोदयमें इसी प्रकार लिखा है यह सम्भव हो तो जानना । अनेक स्त्रीवालेकी स्त्री यदि एकबार ऋतुवाली हो जायँ तो हेमाद्रिमें कश्यपने यह लिखा है कि, एकबार ऋतुमें विवाहके क्रमसे वा रक्षाके निमित्त जिसके पुत्र न हो उसके संग वा ऋतुकालके क्रमसे भार्यागमन

इति । ग्रहणमृतुग्रहणम् । ऋग्विधाने-"विष्णुर्योनिं जपेत्सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभि-र्व्रती। गर्भाधानं ततः कुर्यात्सुपुत्रो जायते ध्रुवम् ॥" ऋतावगमने निर्णयः। अगमने दोषमाह पराशरः-"ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः॥" अस्यापवादमाह मदनरत्ने व्यासः- "व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु । ऋतुकालेऽपि नारीणां भ्रूणहत्या प्रमु-च्यते ॥ वृद्धां वन्ध्यामसद्वृत्तामनपत्यामपुष्पिणीम् । कन्यां च बहुपुत्रां च वर्ज-येन्मुच्यते भयात् ॥ २ ॥" वृद्धां गतरजस्काम् । गर्भाधानाङ्गहोमाकरणे प्रायश्चि-त्तम् । गर्भाधानाङ्गहोमाकरणे प्रायश्चित्तमाह पारिजाते आश्वलायनः-"गर्भाधान-स्याकरणात्तस्यां जातस्तु दुष्यति । अकृत्वा गां द्विजे दत्त्वा कुर्यात्पुंसवनं पतिः ॥" गर्भाधानं च मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यम् । "उत्सवेषु च सर्वेषु सीमन्तऋतु-जन्मसु । सुरासुरेज्ययोश्चैव मौढ्यदोषो न विद्यते ॥" इति ज्योतिर्निबन्धे भृगूक्तेः। ऋतौ गमने पराशरः-"ऋतौ तु गर्भशंकित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् । अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत् ॥" स्त्रीणां तु न स्नानम् । 'उभावप्यशुची स्यातां दम्पती शयनं गतौ । शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥'

करे, ऋग्विधानमें कहा है कि, योनिका तीन वार स्पर्श करके व्रतवाला मनुष्य विष्णुसूक्त जपे फिर गर्भाधान करे तो अवश्य सुन्दर पुत्र उत्पन्न होता है। ऋतुमें गमनके न करनेमें पराशरने दोष कहा है कि, ऋतुवाली भार्याके समीप जो गमन नहीं करता, उसको घोर गर्भहत्यामें पकना पड़ता है, इसमें संदेह नहीं। इसका अपवाद मदनरत्नमें व्यासने लिखा है रोगी, बंधनस्थ, परदेशी, पर्व्वमें ऋतुकालमें भी गमन न करनेसे ब्रह्महत्यासे मुक्त होता है, वृद्धा वंध्या दुराचारिणी मृतवत्सा जो रजस्वला न होती हो जो कन्या हो बहुत पुत्र हों ऐसी स्त्रीका संग भी न करे तो ब्रह्महत्या नहीं लगती और जन्मरणसे मुक्त होता है। यहां वृद्धा वह लेनी जिसका रजोधर्म जाता रहा हो। यदि गर्भाधानका अंग हवन न किया जाय तो पारिजातमें आश्वलायनने यह प्रायश्चित्त लिखा है कि, गर्भाधानमें होम न किया हो तो उसमें उत्पन्न हुई दुष्ट संतान होती है और न करनेमें ब्राह्मणको गौ देकर पतिको पुंसवन करना चाहिये, यह गर्भाधान मलमास शुक्रास्त आदिमें भी करना चाहिये। कारण कि, ज्योतिर्निबन्धमें भृगुका कथन है कि, सम्पूर्ण उत्सव सीमंत ऋतु (गर्भाधान) जन्म (जातकर्म) इनमें बृहस्पति और शुक्रके अस्तका दोष नहीं है, ऋतुकालमें गमन करे तो पराशरने यह लिखा है कि, ऋतुमें गर्भ रहनेकी शंका है इससे मैथुन करनेवाले मनुष्यको स्नान लिखा है। यदि ऋतुस्नानके उपरान्त गमन करे तो उसको शौच करना चाहिये जो मूत्र विष्ठाके करनेमें लिखा है, स्त्रियोंको तो स्नान नहीं लिखा कारण कि, वृद्धशातातपने यह लिखा है कि, शय्यापर सोते हुए स्त्री

इति वृद्धशातातपोक्तेः। ऋतौ स्त्रिया अस्पृश्यत्वनिर्णयः। अत्र कश्चिद्विशेष उच्यते। तत्र रात्रौ रजसि जननादौ च रात्रिं त्रिभागां कृत्वा आद्यभागद्वयं चेत्पूर्वदिनं ग्राह्यम्, परतस्तूत्तरमिति मिताक्षरायाम्। यत्तु—"प्रागर्द्धरात्रात्प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वदिनम्" इत्युक्तम्। तत्र देशाचाराद्व्यवस्था। तथा सप्तदशदिनपर्यन्तं पुना रजोदृष्टौ स्नानमात्रम्। अष्टादशे एकरात्रम्। ऊनविंशे द्व्यहः। विंशतिप्रभृतित्रिरात्रमिति तत एव ज्ञेयम्। यत्तु—'चतुर्दशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते' इति, तत्र स्नानप्रभृतित्वमभिप्रेतम्। एतच्च यस्या विंशतिदिनोत्तरं प्रायशो रजस्तत्रैव यस्यास्त्वर्वाक् प्रायशो रजोदर्शने तत्रोक्तं स्मृत्यर्थसारे—'त्रयोदशदिनादूर्ध्वं प्रायो रजोवतीनामेकादशदिनात्प्रागशुचित्वं नास्ति। एकादशदिने एकरात्रम्। द्वादशे द्विरात्रम्। ऊर्ध्वं त्रिरात्रमिति। प्रयोगपारिजातेऽप्येवम्। रोगजे तु तत्रैव विशेषः संग्रहे—"रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं हि प्रवर्त्तते। नाशुचिस्तु भवेत्तेन यस्माद्वैकारिकं मतम्॥" इति। कर्माधिकारस्तु रजोनिवृत्तावेव। "साध्वाचारा न तावत्स्यात्स्नातापि स्त्री रजस्वला। यावत्प्रवर्तमानं हि रजो नैव निवर्तते॥"

और पुरुष अपवित्र होते हैं और शय्यासे उठनेपर स्त्री शुद्ध होती है और पुरुष अशुद्ध हो जाता है। इसमें कुछ विशेष लिखते हैं कि, जब रात्रिमें रजोधर्म हो वा जन्म हो तो रात्रिके तीन भाग करके पहले दो भागमें हो तो प्रथम दिन लेना और तीसरे भागमें हो तो अगला दिन लेना यह मिताक्षरामें कहा है। जो किसीने यह लिखा है कि, आधी रात वा सूर्योदयसे प्रथम हो तो प्रथम दिन लेना उसमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये, इसी प्रकार सूत्र है (१७) दिनपर्यंत फिर रजोदर्शन हो तो स्नान मात्र ही करे, १८ वें दिन एक रात्र, १९ वें दिन दो दिन, २० आदिमें ३ दिन अशौच मिताक्षराके लिखे अनुसार जानने। जो किसीने यह लिखा है कि, १४ दिनसे प्रथम रजोदर्शनमें अशुद्धि नहीं होती, उसमें स्नान करना तो इष्ट है और यह भी वहां ही लिखा है कि, जिस स्त्रीको २० दिनके उपरांत प्रायः रजोधर्म होता है और जिसको २० दिनसे पहले होता है उनको स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि, १३ दिनके उपरान्त प्रायः रजोधर्मवाली स्त्रीको ११ दिनसे प्रथम अशौच नहीं होता। ११ ग्यारहवें दिन एकरात्र पीछे ३ दिनका अशौच लगता है, प्रयोगपारिजातमें भी इसी भाँति लिखा है कि, रोगसे उत्पन्न हुए रजोधर्ममें तो यह विशेष संग्रहमें कहा है कि, स्त्रियोंको रोगसे प्रतिदिन जो रजोधर्म होता है उससे स्त्री अपवित्र नहीं होती। कारण कि, वह विकारसे प्राप्त हुआ है, स्त्रियोंको कर्मका अधिकार तो रजोदर्शनकी निवृत्तिपर कहा है। कारण कि, श्राद्धहेमाद्रिमें शंखका कथन है कि, रजस्वला स्त्री स्नान करनेसे भी साधु आचरण नहीं कर सकती जबतक प्रवृत्त हुआ रजोधर्म पूर्णतासे निवृत्त न हो जाय उसमें भी रजोधर्म जानेके समय

इति श्राद्धहेमाद्रौ शंखोक्तेः । तत्रापि स्वकालेऽशुचिरेवेत्याह ऋष्यशृङ्गः–"रोगजे वर्त्तमानेऽपि काले निर्याति कालिकम् । तस्मात्कालेऽप्रमत्ता स्यादन्यथा संकरो भवेत् ॥ " रजस्वलापरस्परस्पर्शे निर्णयः । तथा–'रजस्वलाया रजस्वलान्तरस्पर्शेऽकामतः स्नानं कामत उपवासः पञ्चगव्याशनं च । असवर्णानां तु ब्राह्मण्याः क्षत्रियादिस्पर्शे क्रमेण कृच्छ्रार्द्धपादोनकृच्छ्रकृच्छ्राणि, क्षत्रियादीनां तु कृच्छ्रपाद एव, क्षत्रियादीनां हीनवर्णस्पर्शे त्रिरात्रमुपवासः । वैश्याशूद्रयोः पूर्वया स्पर्शेऽहोरात्रं द्विरात्रं च । एतच्च कामतः । अकामतश्च प्राक् शुद्धेरनशनम् । चाण्डालादिस्पर्शे । आकामतश्चाण्डालादिस्पर्शेऽप्यनशनमेव प्राक्छुद्धेः । कामतस्तु–प्रथमेऽह्नि त्र्यहः, द्वितीये द्व्यहस्तृतीये एकाहः । श्वस्पर्शे तु द्व्यह एकाहो वा । भुञ्जानायाश्चाण्डालादिस्पर्शे षड्रात्रम् । उच्छिष्टयोः स्पर्शे तु कृच्छ्र इत्यादि मिताक्षरायां ज्ञेयम् । स्मृत्यर्थसारे तु–'सर्वत्र बालापत्यायाः स्पर्शे स्नाने कृते भुक्तिः पश्चादनशनप्रत्याम्नायः ' इति । तत्र ऋतुस्नानविधिः । स्नानविधिं चाह पराशरः–"स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला । पात्रा-

---

स्त्री अशुद्ध ही है यह ऋष्यशृंगने लिखा है कि, रोगसे हुआ रज वर्तमान भी हो तो भी कालसे उत्पन्न हुआ रुधिर कालमें निकलता है उस समय मनुष्य प्रमत्तता न करे अन्यथा वर्णसंकर होता है । यदि रजस्वलाको अज्ञानसे दूसरी रजस्वला स्पर्श कर ले तो स्नान और जानकर कर ले तो व्रत और पंचगव्यका भक्षण करे असवर्णा (भिन्नजाति) ओंके स्पर्शमें तो यह लिखा है कि ब्राह्मणीको क्षत्रिया वैश्या शूद्रा स्पर्श कर ले तो आधा कृच्छ्र, पौनकृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, व्रत क्रमसे ब्राह्मणी करे और क्षत्रिया आदि तीनों तो चौथाई कृच्छ्र व्रत करे तो पवित्र होती हैं । यदि क्षत्रिया आदिकोंको हीनवर्ण स्त्रीका स्पर्श हो जाय तो तीन रात व्रत करे । यदि वैश्या और शूद्राको अपनेसे पूर्वजातिकी स्त्री छू ले तो अहोरात्र वा दो रात्र व्रत करे । यह भी जानकर स्पर्शम जानना चाहिये, अज्ञानसे स्पर्शमें तो पवित्रतासे प्रथम अनशन व्रत करे । अज्ञानतासे चाण्डाल आदिके छू लेनेमें भी पवित्रतासे प्रथम अनशनव्रत ही लिखा है, जानकर छू लेनेमें तो प्रथम ३ दिन २ दिन दो, तीसरे दिन एक क्रमसे व्रत करना, कुत्तेका स्पर्श हो जाय तो प्रथम २ वा १ दिन व्रत करे यदि भोजन करती हुई रजस्वलाके चाण्डाल आदिका स्पर्श हो जाय तो ६ दिन व्रत करे । यदि उच्छिष्ट दो रजस्वला परस्पर छू लें तो कृच्छ्र व्रत करे इत्यादि प्रायश्चित्त मिताक्षरामें लिखे हैं । स्मृत्यर्थसारमें तो लिखा है कि, जिस स्त्रीकी गोदीमें बालक हो वह छू ले तो स्नान करनेसे पवित्र होती है और भोजनके पछि स्पर्श कर ले तो अनशन व्रत करनेसे पवित्र होती है । स्नानकी विधि पराशरने इस प्रकार लिखी है कि, यदि रजस्वला स्त्रीकी नैमित्तिक स्नानकी प्राप्ति हो तो वह पात्रांतरित(एकपात्रसे जो दूसरे पात्रमें लिया जाय) जलसे स्नान करके व्रत करे

न्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥ सिक्तगात्रा भवेदद्भिः साङ्गोपाङ्गा कथञ्चन । न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् ॥ २ ॥" रजस्वलास्नानम् । अथ रजस्वलास्नानं दैवज्ञवल्लभः–"ब्रह्मानुराधाश्विनसौम्यभेषु हस्तानिलाखण्डलवासवेषु । विश्वार्यमर्क्षौरत्तभाद्रभेषु वराङ्गनास्नानविधिः प्रदिष्टः ॥ " ज्वरे तूशनाः– "ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता । कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ॥ चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम् । सा सचैलावगाह्यापः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत् ॥ दशद्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुनः पुनः । अन्ते च वाससां त्यागः ततः शुद्धा भवेत्तु सा ॥ ३ ॥ " इति । इदं चातुरमात्रे ज्ञेयम् । 'आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ।' इति पराशरोक्तेः । रजसोऽज्ञाने निर्णयः । रजसोऽज्ञाने तु पराशरमाधवीये प्रजापतिः–"अविज्ञाते मले सा च मलवद्वसना यदि । कृतं गृहेषु दुष्टं स्याच्छुद्धिर्न स्यात्रिरात्रतः ॥ " देवजानीये कारिकायाम्–"उच्छिष्टा तु द्विजातीनां रजः स्त्री यदि पश्यति । उपवासमधोच्छिष्टे ऊर्ध्वोच्छिष्टे त्र्यहं क्षिपेत् ॥ " पुंसवनम् । अथ पुंसवनम् ॥ प्रयोगपारिजाते जातूकर्ण्यः–"द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत् । व्यक्ते

किन्तु किसी प्रकार अपने सम्पूर्ण शरीरको जलसे छिडक ले, न वस्त्रोंको धोवे न दूसरे वस्त्रोंको धारण करे । अब रजस्वलाका स्नान लिखते हैं, दैवज्ञवल्लभने लिखा है कि, रोहिणी, अनुराधा, अश्विनी, सौम्य नक्षत्र, हस्त, स्वाती, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, उत्तराषाढा, मघा, उत्तराभाद्रपदा इनमें स्त्रियोंको स्नानकी विधि लिखी है, यदि ज्वरवाली स्त्री रजोवती हो जाय तो उसका शौच किस प्रकार हो और किस कर्मसे पवित्र हो ? चौथा दिन जब आवे तब उस रजस्वलाको और शुद्ध स्त्री स्पर्श करे और वह स्त्री सचैल स्नान करके फिर जलको स्पर्श करे फिर उस रजस्वलाका स्पर्श करे, इस प्रकार १० तथा १२ बारहवार करके बारम्बार आचमन करे और अन्तमें वस्त्रोंको छोड दे तो फिर वह पवित्र हो जाती है यह सब रोगियोंके विषयमें उशनाने कहा है । कारण कि, पराशरने यह लिखा है कि, रोगीको स्नान करना प्राप्त हो तो अच्छा मनुष्य स्नान कर कर के छू ले। रजका अज्ञान हो तो पराशरमाधवीयमें प्रजापतिने यह लिखा है कि, यदि मलका ज्ञान न हो वा वस्त्रोंमें मलिनता हो तो घरमें किया हुआ भी स्नान दुष्ट हो जाता है, किन्तु तीन दिन व्रतसे उसकी शुद्धि होती है। देवजानीय कारिकामें कहा है कि, यदि द्विजातियोंकी उच्छिष्ट स्त्री रजको देख लें तो आधे उच्छिष्टसे प्रथम व्रत और उससे पीछे ३ तीन व्रत करे । अब पुंसवन संस्कार प्रयोगपारिजातमें जातूकर्ण्यने लिखा है कि, दूसरे वा तीसरे महीनेमें पुंसवन होता ह, अथवा गर्भके

गर्भे भवेत्कार्यं सीमन्तेन सहाथ वा ॥ " बृहस्पतिः-"तृतीये मासि कर्तव्यं गृष्टे-रन्यत्र शोभनम् । गृष्टेश्चतुर्थे मासे तु षष्ठे मास्यथवाष्टमे ॥" सकृत्प्रसूता गृष्टिः । एतेन प्रतिगर्भमपि भवतीति ज्ञायते । बह्वृचकारिकापि-"कर्त्ता स्याद्देवरस्तस्या यस्याः पत्युरसंभवः । आवर्त्तत इदं कर्म प्रतिगर्भमिति स्थितिः ॥" ब्राह्मे-"गर्भा-धानादिसंस्कर्त्ता पिता श्रेष्ठतमः स्मृतः । अभावे स्वकुलीनः स्याद्बान्धवोऽन्यत्र गोत्रजः ॥" मदनरत्ने सत्यव्रतः-"मृतो देशान्तरगतो भर्त्ता स्त्री यद्यसंस्कृता । देवरो वा गुरुर्वापि वंश्यो वापि समाचरेत् ॥" हेमाद्रौ यमः-'प्रथमे मासि द्वितीये वा पुंनक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यादिति ।' वाराहः-हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसु-मृगशिरस्तथा पुष्यः। पुंसंज्ञकेषु कार्येष्वेतानि शुभानि धिष्ण्यानि ॥" अनुरा-धापि पुन्नक्षत्रम् ।' अनुराधान् हविषा वर्धयन्तः' इति श्रुतेः । गर्गोऽपि-"पुन्नामा श्रवणस्तिष्यो हस्तश्चैव पुनर्वसुः ॥ अभिजित्प्रौष्ठपाच्चैव अनुराधा तथाश्वयुक् ॥" नृसिंहः-' रिक्तां पर्व च नवमीं त्यक्त्वा पुंसवने शुभाः ।' ज्योतिर्निबन्धे वसिष्ठः-'मृत्युश्च सौरिस्तनुहानिरिन्दोर्मृतप्रजा पुंसवने बुधस्य । काकी च वंध्या भवतीह शुक्रे स्त्री पुत्रलाभो रविभौमजीवैः ॥" अनवलोभनस्याप्ययमेव कालः ।

प्रकट होनेपर वा सीमन्तके संग करना । बृहस्पतिका कथन है कि, गृष्टि (प्रथम गर्भवती) से और स्त्रीका तीसरे महीनेमें पुंसवन श्रेष्ठ है और गृष्टिका चौथे छठे आठवें महीनेमें श्रेष्ठ है, यह कर्म सब गर्भोंमें होता है यह भी इससे जाना गया । बह्वृचकारिकामें कहा है कि, जिस स्त्रीका पति निकट न हो उसका पुंसवन देवरको करना चाहिये। यह कर्म प्रतिगर्भमें होता है, यही मर्यादा है । ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, गर्भाधान आदि संस्कारोंका करनेवाला पिता अत्यन्त उत्तम कहा है, पिता न हो तो कुलीन वा और गोत्रका पुरुष होता है । मदनर-त्नमें सत्यव्रतने कहा है कि, पति मृतक हो गया हो वा देशान्तरोंमें हो और स्त्रीका संस्कार न हुआ हो तो देवर, गुरु वा किसी वंशके गुरुसे संस्कार करा देना । हेमाद्रिमें यमराजने कहा है कि, पहले दूसरे महीनेमें जब पुरुषनक्षत्रपर चन्द्रमा हो तब पुंसवन करना चाहिये । वराहपुराणमें लिखा है कि, हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य ये नक्षत्र पुरुषसंज्ञक कार्योंमें उत्तम लिखे हैं । अनुराधाको भी पुरुषनक्षत्र वर्णन किया है; क्योंकि, अनुराधाको हविदानसे देवताओंने बढ़ाया, यह श्रुति है । गर्गने कहा है कि, श्रवण, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, अभिजित्, प्रोष्ठपाद, अनुराधा और अश्विनी ये सब पुरुष नक्षत्र हैं । नृसिंहने लिखा है कि, रिक्ता, पर्व, नौमीको पुंसवन कर्म न करना । ज्योतिर्निबन्धमें वसिष्ठने कहा है कि, शनैश्चरको पुंसवन करनेसे मृत्यु, सोमवारको शरीरकी हानि, बुधमें सन्तानका मरण, शुक्रमें काकवन्ध्या, रविवार मंगल, बृहस्पतिको पुंसवन हो तो पुत्रकी प्राप्ति होती

दीपिकायां तु—'चतुर्थेऽनवलोभनम्' इत्युक्तम् । सीमंतोन्नयनम् । हेमाद्रौ बैजवापः—"अथ सीमंतोन्नयनं चतुर्थे पञ्चमे षष्ठे च" इति । वसिष्ठः—'चतुर्थे सप्तमे मासि षष्ठे वाप्यथवाष्टमे ।' हेमाद्रौ शंखः—'गर्भस्पन्दने सीमन्तोन्नयनं यावद्वा न प्रसवः ॥' कार्ष्णाजिनिः—"गर्भलम्भनमारभ्य यावन्न प्रसवस्तदा । सीमन्तोन्नयनं कुर्याच्छंखस्य वचनं यथा ॥" मासश्चात्र सौरः सावनो वा । कालविधाने—"चतुर्थषष्ठाष्टममासभाजि सौरेण गर्भे प्रथमं विधेयम् । सीमन्तकर्म द्विजभामिनीनां मासेऽष्टमे विष्णुबलिं च कुर्यात् ॥" वसिष्ठः—' चतुर्थे सावने मासि षष्ठे वाप्यथवाष्टमे ।' ज्योतिर्निबन्धे नारदः—'अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे ॥' कालविधाने—"सीमन्ते तिष्यहस्तादितिहरिशशभृत्पौष्णविध्युत्तराख्याः पक्षच्छिद्रं च रिक्तां पितृतिथिमपहायापराः स्युः प्रशस्ताः ।" अदितिः पुनर्वसुः । तत्र पक्षच्छिद्रनिर्णयः । पक्षच्छिद्रं चाह वसिष्ठः—" चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा । षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वयाः स्मृताः ॥ क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः । भूता ५ ष्ट ८ मनु १४ तत्त्वा २५ क ९ दश १० शेषास्तु शोभनाः ॥ २ ॥ " कालनिर्णये—"शुभसंस्थे निशानाथे चतुर्थी च चतुर्दशीम् । पौर्णमासीं प्रशंसंति केचित्सीमंतकर्मणि ॥" बृहस्पतिः—"पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना । चतुर्दशी चतुर्थी च शुक्लपक्षे शुभप्रदे ॥"

है । अनवलोभन कर्मका भी यही समय है, दीपिकामें तो चतुर्थ महीनेमें अनवलोभन लिखा है । अब सीमंतोन्नयन हेमाद्रिमें बैजवापने लिखा है कि, चौथे, पांचवें, छठे, महीनेमें सीमन्तोन्नयन करे । वसिष्ठने कहा है कि, चौथे, सातवें, छठे वा आठवेंमें करे । हेमाद्रिमें शंखने कहा है कि, गर्भके चलनेपर सीमन्त कर्म करे । कार्ष्णाजिनि कहते हैं कि, जबतक जन्म न हो तबतक सीमन्तोन्नयन करना चाहिये । इसमें महीना सौर वा सावन लेना चाहिये । कालविधानमें कहा है कि, द्विजातियोंकी स्त्रियोंका सीमन्तकर्म प्रथम गर्भमें चौथे, छठे वा आठवें महीनेमें करना चाहिये और आठवें महीनेमें विष्णुबलि करनी । वसिष्ठने कहा है कि, चौथे, छठे वा आठवें सावन वर्षके महीनेमें करे । ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहा है कि, रिक्ता, पर्वसे भिन्न दिनमें और मंगल, सूर्य, बृहस्पति वारमें सीमन्त करना । कालविधानमें कहा है कि, सीमन्तमें पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, श्रवण, मृगशिरा, रेवती, रोहिणी, तीनों उत्तरा उत्तम हैं और पक्षच्छिद्र तथा रिक्ता, और पितृतिथिको छोड़कर अन्यतिथि शुभ हैं । यहां पक्षच्छिद्र वसिष्ठने लिखा है कि, चतुर्दशी, चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, द्वादशी तिथियोंमें क्रमसे पांच, आठ, चौदह, पच्चीस, नव, दश, घडी त्यागनी चाहिये, शेष घडी उत्तम हैं । कालनिर्णयमें कहा है कि, कोई आचार्य सीमंतकर्ममें चन्द्रमा उत्तम हो तो चतुर्दशी, पूर्णिमाको भी उत्तम मानते हैं । बृहस्पतिने सीमंतमें शुक्लपक्ष उत्तम लिखा है और अन्तकी पांच तिथियोंको त्यागकर कृष्ण-

नारदः-"विप्रक्षत्रिययोः कुर्याद्दिवा सीमन्तकर्म तत् । वैश्यशूद्रकयोरेवाह्निवा निश्यपि केचन॥" वाराः पूर्वोक्ता एव । एतच्च सकृदेव कार्यमिति विज्ञानेश्वरः- 'सकृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता ।' इति देवलोक्तेः । सकृत्प्रतिगर्भं वा कार्यमिति हेमाद्रिः । "सकृच्च कृतसंस्कारः सीमन्तेन द्विजस्त्रियः । यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत् ॥" इति हारीतोक्तेः । "सीमन्तोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते । केचिद्गर्भस्य संस्कारान्प्रतिगर्भं प्रयुञ्जते ॥" इति हेमाद्रौ विष्णुवचनाच्च । स एव-"स्त्री यद्यकृतसीमन्ता प्रसवेत्तु कथंचन । गृहीतपुत्रा विधिवत्पुनः संस्कारमर्हति ॥" सीमन्तान्नभोजने प्रायश्चित्तनिर्णयः । सीमन्ते भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये धौम्येन-"ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । जातकर्मनवश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" ऋग्विधाने तु-"अराइवे-ज्जपेन्मन्त्रं शतवारं न संशयः । सीमन्ते च यदा भुङ्क्ते मुच्यते किल्बिषात्तदा ॥" इति । अथ गर्भिणीतत्पतिधर्माः । वराहः-'सामिषमशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेदतःप्रभृति ।' गृह्यकारिकायाम्-"अंगारभस्मास्थि-कपालचुल्ली-

---

पक्ष भी श्रेष्ठ है । नारदने लिखा है कि, ब्राह्मण और क्षत्रियोंका सीमन्तकर्म दिनमें करे और वैश्य और शूद्रका दिनमें और रात्रिमें भी करना चाहिये इसमें पूर्वोक्त ही दिन लेने चाहिये। सीमंत एकबार ही करना चाहिये, यह विज्ञानेश्वरका कथन है; कारण कि, देवलने कहा है कि, एकबार संस्कार की हुई स्त्री सब गर्भोंमें संस्कृत होती है । हेमाद्रिका तो यह कथन है कि, एकबार वा प्रतिगर्भमें सीमंत करे; कारण कि, हारीतने कहा है कि, सीमंतसे एक बार संस्कृत की हुई ब्राह्मणकी स्त्री जिस जिस गर्भको उत्पन्न करती है वे सब संस्कृत होते हैं । और हेमाद्रिमें विष्णुने कहा है कि, कोई सीमन्तोन्नयन कर्मको स्त्रीका संस्कार नहीं मानते, किन्तु गर्भका संस्कार होनेसे प्रतिगर्भ करते हैं और विष्णुका भी यह कथन है कि, यदि सीमंतके किये विना जो स्त्रीको प्रसव हो जाय तो पुत्र होनेपर विधिसे फिर संस्कार करनेके योग्य होती है । सीमन्तके भोजनमें माधवीयमें धौम्यने यह प्रायश्चित्त लिखा है कि, ब्रह्मौदन (यज्ञोपवीतसे पहिले कर्म) सोम सीमन्तोन्नयनमें भोजन करके चान्द्रायण करना चाहिये । ऋग्विधानमें तो यह कहा है कि, मनुष्य सीमंतमें यदि भोजन करे तो (अराइव) इस मन्त्रका सौवार जप करे तब पापसे मुक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं । अब गर्भिणी और उसके पतिके धर्मोंको लिखते हैं-वराहपुराणमें लिखा है कि, गर्भधारणसे (प्रारम्भसे) लेकर स्त्री मांससहित भोजन न करे । गृह्यकारिकामें भी कहा है कि, गर्भवती स्त्री अंगार, भस्म, हड्डी, कपाल, चूल्हा, छाज,

---

१ "अराइवेद चरमा अहेव प्रप्रजायन्ते अकवा महोभिः । पृश्नेः पुत्र उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः समिमिक्षुः ॥ ऋ० ४ । ३ । २३ ॥"

शूर्पादिकेषूपविशेन्न नारी। सोलूखलाद्ये दृषदादिके वा यन्त्रे तुषाद्ये न तथोपविष्टा ॥ नो मार्जनीगोमयपिण्डकादौ कुर्यान्न वारिण्यवगाहनं सा। अंगारभूत्या न नखैर्लिखेत्क्ष्मां कलिं वपुर्भंगमथो न कुर्यात् ॥ नो मुक्तकेशी विवशाथवा स्याद्भुंक्ते न संध्यावसरे न शेते। नामंगलं वाचमुदीरयेत्सा शून्यालयं वृक्षतले न यायात् ॥ ३ ॥" विष्णुधर्मोत्तरे-"कटुतीक्ष्णकषायाणि अत्युष्णलवणानि च। आयासं च व्यवायं च गर्भिणी वर्जयेत्सदा ॥" हेमाद्रौ कौण्डिन्यः-"मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः। न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च ॥" मिताक्षरायाम्-" उदन्वतोऽम्भसि स्नानं नखकेशादिकर्त्तनम्। अन्तर्वत्न्याः पतिः कुर्वन्नप्रजा जायते ध्रुवम् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे-'गयायां पिण्डदानस्य न कदाचिन्निराक्रिया ॥' अत्र काले दाप्रत्ययस्मृतेर्निषिद्धकालस्यैवापवादो न तु जीवत्पितृकगर्भिणीपत्याशौचादिनिमित्तस्य, अग्निहोत्रे यावज्जीवत्कालपरत्वाभावात्। अन्यथाशौचेऽपि गयायात्राश्राद्धं च स्यात्। यत्र तु निमित्तसंयोगस्यापवादो यथाशौचेऽग्निहोत्रादेर्यथा वा जीवत्पितृकस्य मातुर्गयान्वष्टकादौ तत्र तदेव भवति नान्यदिति संक्षेपः। प्रयोगपा-

---

ऊखल, पत्थर आदि यंत्र, तुष आदि बुहारी, गोमयके पिंडआदि पर न बैठे और जलमें जाकर स्नान न करे, अंगारेकी राखसे (कोयले) तथा नखसे पृथ्वीको न कुरेदे, कलह और शरीरभंग अर्थात् अँगडाई न ले, खुले बाल न रक्खे, नंगी न हो, सन्ध्याके समय भोजन और शयन न करे, अमंगल वाक्य न कहे, शून्य घर और वृक्षके नीचे न जाय। विष्णुधर्मोत्तरमें कहा है कि, कटु, तीखा, कसैला, अत्यन्त गरम और लवणका भोजन, परिश्रम और मैथुनको गर्भिणीको सदा त्यागना चाहिये। हेमाद्रिमें कौडिन्यने कहा है कि, मुंडन, पिंडदान और सम्पूर्ण प्रेतकर्मको जीवत्पितृक और गर्भिणीके पति त्याग दें। मिताक्षरामें कहा है कि, गर्भिणीके पतिको समुद्रके जलमें स्नान और नख और केशोंके कटवानेसे तो निश्चय प्रजाहीनता होती है। पृथ्वीचन्द्रोदयमें गरुडपुराणका वाक्य है कि, गयामें पिंडदानका किसी प्रकार निषेध नहीं है इस वाक्यमें कालमें दाप्रत्यय की है, इससे निषिद्ध कालका अपवाद (निषेध) है, कुछ जीवत्पितृक और गर्भिणी पतिके अशौच आदि निमित्तका नहीं है। कारण कि, यह वाक्य अग्निहोत्रमें जीवनपर्यन्तके तुल्यसमयका बोधक नहीं है, अन्यथा अशौचनिमित्तमें गयाकी यात्रा और श्राद्ध भी न होंगे और जहां निमित्तके संयोगका अपवाद होता है जैसे अशौचमें अग्निहोत्र आदिका वर्जना और जीवत्पितृकको माताकी गया करनेको जाना और अन्वष्टका आदिमें वहां वही होता है और नहीं, यह संक्षेपसे कहा है। प्रयोगपारिजातमें कश्यपने लिखा है कि, गर्भिणी

रिजाते कश्यपः-"गर्भिणी कुञ्जराश्वादिशैलहर्म्याधिरोहणम् । व्यायामं शीघ्रगमनं शकटारोहणं त्यजेत् ॥ शोकं रक्तविमोक्षं च साध्वसं कुक्कुटासनम् । व्यवसायं दिवास्वापं रात्रौ जागरणं त्यजेत् ॥ २ ॥" मदनरत्ने स्कान्दे-"हरिद्रां कुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥ केशसंस्कारकबरीकरकर्णविभूषणम् । भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेद्गर्भिणी न हि ॥ ॥ २ ॥" बृहस्पतिः-"चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे गर्भिणी यदा । यात्रा नित्यं विवर्ज्या स्यादाषाढे तु विशेषतः ॥" याज्ञवल्क्यः-"दौर्हृदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् । वैरूप्यं मरणं चापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ॥" दौर्हृदं गर्भिणीप्रियम् । तत्रैवाश्वलायनः-"वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद्गर्भिणीपतिः । श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्ध्वं चान्यत्र वेदवित् ॥" श्राद्धं तद्भोजनमिति प्रयोगपारिजातः । कालविधाने मुहूर्त्तदीपिकायां च-"क्षौरं शवानुगमनं नखकृन्तनं च युद्धादि वास्तुकरणं त्वतिदूरयानम् । उद्वाहमौपनयनं जलधेश्च गाहमायुःक्षयार्थमिति गर्भिणिकापतीनाम् ॥" रत्नसंग्रहे गालवः-"दहनं वपनं चैव चौलं वै गिरिरोहणम् । नाव आरोहणं चैव वर्जयेद्गर्भिणीपतिः ॥ अव्यक्तगर्भापतिरब्धियानं मृतस्य वाहं क्षुरकर्म सङ्गम् । तस्यां तु यत्नेन गयादितीर्थं यागादिकं वास्तुविधिं

हाथी, अश्व, पर्वत, महल आदिपर चढ़ना और मैथुन और शीघ्र गमनको छोड दे, शोक रक्तविमोक (फस्त) साहस कुक्कुटके तुल्य बैठना परिश्रम और दिनमें सोना और रात्रिमें जागना न चाहिये । मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, हलदी, कुंकुम, कूर्पासक, (चोली) यान मंगलके श्रेष्ठभूषण केशोंका संस्कार कबरी (मोंढी गूंधना) हाथ और कानके गहनोंको भर्ताकी आयुकी इच्छावाली गर्भिणी न त्यागे । बृहस्पतिने कहा है कि, चौथे छठे आठवें महीनेमें और विशेषकर आषाढमें गर्भिणी यात्रा न करे । याज्ञवल्क्यने कहा है कि, दौहृद (गर्भिणीका प्रिय) न करनेसे गर्भमें दोष विरूप मरण हो जाता है इससे स्त्रीको प्यार रक्खे । वहां ही आश्वलायनने कहा है कि, मुंडन, मैथुन, तीर्थ और सात मासके गर्भसे पीछे श्राद्धको वेदका जाननेवाला गर्भिणीका पति न करे, यहां श्राद्धशब्दसे श्राद्धका भोजन ग्रहण करते हैं यह प्रयोग पारिजातमें लिखा है । कालविधान और मुहूर्तदीपिकामें कहा है कि, क्षौर, मृतकके पीछे गमन, नखोंको कतरना, युद्ध आदि, घरका निर्माण करना, अत्यन्त दूर गमन और विवाह तथा यज्ञोपवीत और समुद्रमें स्नान ये गर्भिणीके पतिकी आयुके क्षीण करनेवाले होते हैं । रत्नसंग्रहमें गालवने कहा है कि, दाह मुंडन चौल पर्वतपर चढ़ना नावपर बैठना इन्हें गर्भिणीका पति त्याग दे । और स्थानमें भी लिखा है कि, गर्भप्रतीतवाली स्त्रीका पति समुद्रमें तरना मृतकवहन तथा और स्त्रीका संग और गयादि तीर्थ और यागआदि वास्तुकी

न कुर्यात् ॥ अव्यक्तगर्भा वनिता भवेन्मासत्रयात्परम् । षण्मासात्परतः सूतिर्नवमेऽरिष्टवासिनी ॥ ३ ॥" अथ सूतिकागृहप्रवेशः । गर्गः-" रोहिण्यैन्दवपौष्णेषु स्वातीवारुणयोरपि । पुनर्वसौ पुष्यहस्तधनिष्ठात्र्युत्तरासु च ॥ मैत्रे त्वाष्ट्रे तथाश्विन्यां सूतिकागारवेशनम् ॥" एतच्च संभवे । 'प्रसूतिसमये काले सद्य एव प्रवेशयेत्' इति वासिष्ठोक्तेः । तच्च नैर्ऋत्यां कार्यम् । 'वारुण्यां भोजनगृहं नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम्' इति वसिष्ठोक्तेः । विष्णुधर्मे-"दशाहं सूतिकागारमायुधैश्च विशेषतः । वह्निना तिन्दुकालातैः पूर्णकुम्भैः प्रदीपकैः ॥ मुसलेन तथा वारिवर्णकैश्चित्रितेन च ॥ " इति । जातकर्मनिर्णयः । अथ जातकर्म पारिजाते वासिष्ठः-'श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत् ' । मनुः-'प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते । ' वर्द्धनं छेदनम् । हेमाद्रौ बैजवापः-'जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि । दैवादतीतकालं चेदतीते सूतके भवेत् ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे-'अच्छिन्ननाभि कर्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि । ' पुत्रपदेन कन्यापि गृह्यते । तदाह तत्रैव कार्ष्णाजिनिः-"प्रादुर्भावे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । स्नात्वानन्तरमात्मीयान्पितॄञ्छ्राद्धेन तर्पयेत् ॥" एतच्च रात्रावपि कार्यम्-'पुत्रजन्मनि

विधि इनको यत्नसे त्याग दे तीन महीने उपरान्त स्त्री प्रकट गर्भवाली होती है और छः महीने उपरान्त सूति (प्रसूति) और नवें महीनेमें सूतिकागृह (सोवर) निवासिनी होती है। अब सूतिकागृहमें प्रवेशका निर्णय कहते हैं-कि रोहिणी, मृगशिर, स्वाती, शतभिषा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, अनुराधा, चित्रा, अश्विनी इन नक्षत्रोंमें सूतिकागृहमें प्रवेश करना चाहिये । यह तो सम्भवमें जानना. कारण कि, वसिष्ठने लिखा है कि प्रसवके समयमें शीघ्र ही प्रवेश करावे । विष्णुधर्ममें लिखा है कि, सूतिका गृहको दश दिनतक अस्त्र, वह्नि, तिंदुक (तेंदु), आलात (जला काष्ठ), जलसे भरे हुए घडे, दीपक, मूशल, वारिवर्णक (समान) तथा चित्रोंसे सुशोभित रक्खे । अब जातकर्मका निर्णय लिखते हैं-पारिजातमें वसिष्ठने लिखा है कि पिता पुत्रके जन्मको सुनकर सचैल स्नान करे । नाल कटने उपरान्त मनुष्यका जातकर्म लिखा है । हेमाद्रिमें बैजवापने लिखा है कि जन्म होनेपर विधिपूर्वक जातकर्म करे यदि दैवयोगसे वह समय बीत जाय तो सूतकके उपरान्त करे, पृथ्वीचन्द्रोदयके विष्णुधर्ममें लिखा है कि, पुत्र वा कन्याके जन्ममें नाल काटनेसे प्रथम श्राद्ध करना चाहिये, सोई वहां कार्ष्णाजिनिने लिखा है कि, पुत्र और कन्याके जन्ममें तथा सूर्य और चन्द्रके ग्रहणमें स्नान करके अपने पितरोंको श्राद्धसे तृप्त करना चाहिये, यह रात्रिमें भी करना; कारण कि, पुत्रजन्ममें तथा प्रयागकी यात्रामें

यात्रायां शर्वर्यां दत्तमक्षयम्' इति तत्रैव व्यासोक्तेः। वैजवापः–"जातमात्रकुमारस्य जातकर्म विधीयते। स्तनप्राशनतः पूर्वं नाभिकर्तनतोऽपि वा॥" एतेन नैमित्तिकमपीदं जातेष्टिवदाशौचान्ते कार्यमिति शंका परास्ता। 'जाते कुमारे पितॄणामामोदात्पुण्यं तदहः' इति हारीतोक्तेश्च। अत्र श्राद्धमामेन हेम्ना वा कार्यमित्युक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये आदित्यपुराणे'। 'जातश्राद्धे तु पक्वान्नं न दद्याद्ब्राह्मणेष्वपि। इति। हेमाद्रिस्तु–"पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान्। न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन्॥" इति संवर्तोक्तेर्हेम्नैवेत्याह। एतच्च जननाशौचे मरणाशौचे च कार्यमित्याह मिताक्षरायां प्रजापतिः–"अशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्। कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति॥" केचित्तु–"मृताशौचस्य मध्ये तु पुत्रजन्म यदा भवेत्। आशौचापगमे कार्यं जातकर्म यथाविधि॥" इति स्मृतिसंग्रहोक्तेराशौचान्ते कार्यमित्याहुः। स्मृत्यर्थसारेऽपि विकल्प उक्तः–"मृदुध्रुवचरक्षिप्रभेष्वेषामुदयेषु च। गुरौ शुक्रेऽथवा केन्द्रे जातकर्म च नाम च॥" मृद्वादिलक्षणमाह श्रीधरः–"रोहिण्युत्तरभं स्थिरं गिरिशमूलेन्द्रोरगा दारुणं क्षिप्रं चाश्विदिनेशपुष्यमनलेन्द्राग्नी तु साधा-

---

रात्रिके दान करनेका अक्षय फल होता है। यही वहां व्यासने लिखा है कि, वैजवापका तो यह कथन है कि, जन्मके समय ही स्तनपान तथा नाल छेदनसे भी पूर्व पुत्रका जातकर्म करना चाहिये। इससे नैमित्तिक भी यह कर्म जातेष्टिके तुल्य अशौचके अन्तमें करना चाहिये, यह शंका परास्त हुई। और हारीतने भी लिखा है कि, पुत्रके जन्ममें पितरोंको प्रसन्नता होती है, इससे वह जन्मका दिन महापवित्र है। यहां श्राद्ध आमान्न वा सुवर्णसे करना चाहिये, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें आदित्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, जातकश्राद्धमें ब्राह्मणोंको पक्वान्न न देना चाहिये। हेमाद्रि तो यह कहते हैं कि, कल्याणोंकी कामनावाले पुरुषको पुत्रजन्ममें सुवर्णसे ही श्राद्ध करना चाहिये, पक्व वा आमान्नसे न करना, इस संवर्तके कथनसे सुवर्णसे ही श्राद्ध करना चाहिये। यह जन्म वा मरणके आशौचमें भी करना; यह मिताक्षरमें प्रजापतिने लिखा है कि, यदि किसी अशौचके होनेपर पुत्रका जन्म हो जाय तो कर्ताकी शुद्धि तो उसी समयमें हो जाती है और जन्माशौच तो मरणाशौचके संगमें दूर हो जाता है। किन्हींका यह कथन है कि, मरणाशौचमें पुत्रजन्म हो जाय तो अशौचके उपरान्त विधिसे जातकर्म करे, इस स्मृतिसंग्रहके वाक्यसे अशौचके उपरान्तमें करना। स्मृत्यर्थसारमें भी विकल्प लिखा है, मृदुध्रुवचरक्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र और इनके उदयमें और गुरु शुक्र केन्द्रमें हों ऐसे लग्नमें जातकर्म और नामकर्म करे। मृदु आदिका लक्षण श्रीधरने लिखा है कि, रोहिणी, तीनों उत्तरा स्थिर हैं, आर्द्रा मूल ज्येष्ठा आश्लेशा ये दारुण हैं, अश्विनी हस्त पुष्य ये क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र हैं, कृत्तिका विशाखा

रणम् । उग्रं पूर्वमघान्तकं मृदुगाति त्वाष्ट्रान्त्यमैत्रं चरं विष्णुस्वातिशतोडुवस्वदितयः कुर्युः स्वसंज्ञाफलम् ॥ " अत्र सर्वत्र जातकर्मनामकर्मादावुक्तकालातिक्रमे नक्षत्रादिकं ज्ञेयम् । " देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदि । अनस्तगे ज्येन्दुसिते तत्कार्यं चोत्तरायणे ॥ " इति मदनरत्ने नारदोक्तेः । बृहस्पतिरपि-"मुख्यालाभे विधिज्ञेन विधिश्चिन्त्योऽप्रमादतः । नक्षत्रतिथिलग्नानां विचार्यैवं पुनः पुनः ॥ " सूतके सन्ध्यादौ विशेषं वक्ष्यामः । अथ जन्मनि दुष्टकालाः । तत्र गण्डान्तः ज्योतिर्निबन्धे नारदः-"पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः संधिनाडीद्वयं तथा । गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ॥ कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः । गण्डान्तमन्तरालं स्याद्धटिकार्धं मृतिप्रदम् ॥ सार्पेन्द्रपौष्णभेष्वन्त्यषोडशांशभसंधयः । तदग्रभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञकाः ॥ ॥ ३ ॥ " रत्नमालायाम्-"पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्र्यर्क्षयोश्च यच्च ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम् । स्याद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम् ॥ " रत्नसंग्रहे नवनीतारिष्टे-"सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते । वर्जयेद्दर्शनं श्रावं तच्च षाण्मासिकं भवेत् ॥ तिथ्यर्क्षगण्डे पितृमातृनाशो लग्ने तु संधौ तनयस्य

साधारण संज्ञक हैं, तीनों पूर्वा, भरणी, मघा उग्रसंज्ञक हैं, चित्रा, मृगशिर, अनुराधा, रेवती मृदु संज्ञक हैं और स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा ये चर संज्ञक हैं और ये अपनी अपनी संज्ञाके अनुसार सब फल देते हैं । यहां सब स्थान जातकर्म और नामकर्म आदिमें समयका व्यतिक्रम हो जाय तो नक्षत्रआदि जानने; कारण कि, मदनरत्नमें नारदने यह कहा है कि, देश और कालके उपद्रवसे यदि समय बीत जाय तो वह उत्तरायणमें उस समय करना चाहिये कि, जिस समय बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमाका अस्त न हो । बृहस्पतिने कहा है कि, प्रमादसे मुख्य समय न मिले तो विधिज्ञाता नक्षत्रतिथि; लग्नकी विधिको बारम्बार इस प्रकार विचार कर देखे । सूतक हो तो संध्याआदिमें विशेष लिखेंगे । अब जन्ममें दुष्टसमय लिखते हैं-जनमें गंडांत ज्योतिर्निबंधके वाक्यसे लिखा है कि, पूर्णा और नन्दा दो तिथियोंकी दो घडी गंडांत कहाती हैं वे जन्म, यात्रा, विवाह आदिमें मृत्युकी देनेवाली हैं । कर्क, सिंह, वृश्चिक, धन, मेषके मध्यकी आधी घडी गंडांत कहाती है, वह भी मृत्यु देनेवाली है । आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवतीके अन्तकी सोलह घडी और इनसे अगले नक्षत्रोंका प्रथमपाद गंडांत संज्ञक है । रत्नमालामें कहा है कि, रेवती, अश्विनी, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा और मूलके बीचकी चार घड़ी गण्डान्त कहाती है; वे यात्रा, जन्म, विवाहमें अनिष्ट हैं । और रत्नसंग्रहमें नवनीतारिष्टमें कहा है कि, गंडांतमें उत्पन्न हुए सब बालकोंका त्याग लिखा है, अथवा छः महीनेतक उसका देखना और सुनना त्याग दे । तिथि और नक्षत्रके गंडांतमें पिता और माताकी मृत्यु होती है, लग्नकी संधिमें पुत्रकी मृत्यु होती है,

नाशः । सर्वेषु नो जीवति हन्ति बन्धूञ्जीवन्पुनः स्याद्बहुवारणाश्वः ॥" तत्र दाननिर्णयः । अथैषां दानमुत्तरगार्ग्ये-"तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते । काञ्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति ॥ उत्तरे तिलपात्रं स्यात्पुष्ये गोदानमुच्यते । अजाप्रदानं त्वाष्ट्रे स्यात्पूर्वाषाढे च काञ्चनम् ॥ उत्तरापुष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च । कुर्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्राकारजां बुधः ॥ ३ ॥" आश्लेषाफलनिर्णयः । अथाश्लेषाफलम् । " मूर्द्धास्यनेत्रगलकांसयुगं च बाहू हृज्जानुगुह्यपदमित्यहिदेहभागः । बाणाद्रिनेत्रहुतभुक्छ्रुतिनागरुद्रषण्णन्दपञ्चशिरसः क्रमशस्तु नाड्यः ॥ राज्यं पितृक्षयो मातृनाशः कामाक्रियारतिः । पितृभक्तो बली स्वघ्नस्त्यागी भोगी धनी क्रमात् ॥ २ ॥" अथ ज्येष्ठाफलनिर्णयः । ज्येष्ठाफलं ब्रह्मयामले-"ज्येष्ठादौ जननीमाता द्वितीये जननीपिता । तृतीये जननीभ्राता स्वयं माता चतुर्थके ॥ आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत् । सप्तमे चोभयकुलं ज्येष्ठभ्रातरमष्टमे ॥ नवमे श्वशुरं हान्ति सर्वं हान्ति दशांशके ॥ ३ ॥' इति । मूलफलनिर्णयः । अथ मूलफलम् । भल्लाटः-"अभुक्तमूलसंभवं परित्यजेत्तु बालकम् । समाष्टकं पिताऽथवा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥ तदाद्यपादके पिता द्वितीयके जनन्यथा । धनक्षयस्तृतीयके चतुर्थकः शुभावहः ॥ प्रतीपम-

---

सब गंडांतामें उत्पन्न हुआ बालक नहीं जीता और बन्धुओंको नष्ट करता है और जीवित रहे तो बहुतसे हाथी और घोडोंसे युक्त होता है। अब इनका दान कथन करते हैं-उत्तरगार्ग्यमें कहा है कि, तिथि, नक्षत्र, लग्नके गण्डान्तमें क्रमसे बैल गौ सुवर्ण दे तो गण्डांतका दोष नष्ट होता है, उत्तरामें तिलपात्र, पुष्य नक्षत्रमें गोदान, चित्रामें बकरीका दान, पूर्वाषाढामें सुवर्णका दान करे। उत्तरा तिष्य चित्रा पूर्वाषाढामें उत्पन्न हुए बालकके नक्षत्रका आकार बनाकर मनुष्यको प्रयत्नसे शान्ति करानी चाहिये। अब आश्लेषाका फल लिखते हैं-माथा, मुँह, नेत्र, गर्दन, दोनों स्कन्ध, दोनों भुजा, हृदय, जानु, लिंग, चरण यह आश्लेषाके देहका भाग है, इसकी मस्तकके क्रमसे ये घडी है पांच ५ सात ७ दो २ तीन ३ चार ४ आठ ८ रुद्र ११ छः ६ नव ९ पांच ५ इनके क्रमसे यह फल है कि, राज्य, पितृनाश, माताका नाश, यथेच्छ कर्ममें प्रीति होनी, पिताकी भक्ति, बलवान्, बालकका मरण, त्यागी, भोगी, धनवान्। ज्येष्ठाका फल ब्रह्मयामलमें लिखा है कि, ज्येष्ठाकी आदिमें माताकी माता, दूसरेमें माताका पिता, तीसरेमें माताका भ्राता, चौथेमें माता, पांचवेंमें अपनी आत्मा, छठेमें गोत्र, सातवेंमें दोनों वंश, आठवेंमें बड़ा भाई, नवेमें श्वशुर और दशवें अंशमें सबको अरिष्ट करता है। अब मूलका फल लिखते हैं-भल्लाटने कहा है कि, अभुक्त मूलमें उत्पन्न हुए बालकको त्याग देना, अथवा उसके पिताको आठ वर्षतक उसका मुख न देखना चाहिये, मूलके पहिले चरणमें पिता, दूसरेमें माताकी मृत्यु होती है, तीसरेमें धननाश, चौथे चरणमें शुभ है।

न्त्यपादतः फलं तदेव सार्पभे ॥ २ ॥" अभुक्तमूलं त्वाह वृद्धवसिष्ठः—"ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् । अभुक्तमूलमित्याहुस्तत्र जातं शिशुं त्यजेत् ॥" केचिज्ज्येष्ठान्त्यमूलाद्यं च पादमभुक्तमूलमाहुः । कश्यपसंहितायां त्वन्यथोक्तम्—"मूलाद्यपादजो हन्ति पितरं तु द्वितीयजः । मातरं स्वं तृतीयोऽर्थान्सुहृदं तत्तुरीयजः ॥ फलं तदेव सार्पर्क्षे प्रतीपं त्वन्त्यपादतः ॥" मूलवृक्षनिर्णयः । अथ मूलवृक्षः जयार्णवे—"मूलं स्तंभं त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा । वेदाश्च मुनयश्चैव दिशश्च वसवस्तथा ॥ नन्दा बाणा रसा रुद्रा मूलभेदः प्रकीर्तितः । मूले मूलविनाशाय स्तम्भे हानिर्धनक्षयः ॥ त्वचि भ्रातृविनाशाय शाखा मातृविनाशकृत् । पत्रे सपरिवारः स्यात्पुष्पेषु नृपवल्लभः । फलेषु लभते राज्यं शिखायामल्पजीवितम् ॥ ४ ॥" अन्यत्र त्वन्यथोक्तम्—"मूले सप्तघटीषु मूलहननं स्तम्भेऽष्टसु स्वक्षयं त्वग्दिग्बंधुविनाशनं च विटपे रुद्रैर्हतो मातुलः । पत्रेऽर्कैः सुकृती तु बाणकुसुमे मन्त्री फले सागरे राजा वह्निशिखाल्पमायुरिति सन्मूलांघ्रिपे स्यात्फलम् ॥" भूपालवल्लभः—"वृषालिसिंहेषु घटे च मूलं दिवि स्थितं युग्मतुलाङ्गनान्त्ये । पातालगं मेषधनुःकुलीरनक्रेषु मर्त्येष्ववीत संस्मरन्ति ॥

इससे विपरीत आश्लेषाके अन्त्य चरणसे होता है । अभुक्त मूलको वृद्ध वासिष्ठने लिखा है कि, ज्येष्ठाके अन्त्यकी एक घड़ी और मूलके आदिकी दो घडीको अभुक्त मूल कहा है, उसमें उत्पन्न हुए बालकको त्याग दे, कोई तो ज्येष्ठाका अन्त्य और मूलके आदिके चरणको अभुक्तमूल लिखते हैं । काश्यपसंहितामें तो अन्यथा लिखा है कि, मूलके प्रथम चरणमें उत्पन्न हुआ बालक पिताको, दूसरेमें माताको, तीसरेमें धन और मित्रोंको नष्ट करता है इससे विपरीत फल अन्त्यके पादसे आश्लेषामें जानना चाहिये । अब मूलवृक्ष कथन करते हैं, जयार्णवमें कहा है कि, जब स्तम्भ त्वचा शाखा पत्र पुष्प शिखाकी क्रमसे चार सात दश आठ नव पांच छः ग्यारह घडी होती है यह मूलका भेद लिखा है । मूलमें मूलका नाश, स्तम्भमें हानि और धनका क्षय, त्वचामें भाईका नाश, शाखामें माताका नाश होता है, पत्रोंमें कुटुम्ब मरता है, पुष्पोंमें राजाका प्रिय, फलमें राज्यका लाभ, शिखामें अल्पजीवन होता है। अन्यत्र तो अन्यथा लिखा है कि, मूलकी सात घडियोंमें मूलका नाश, स्तम्भकी आठ घडीमें सुखका क्षय, त्वचाकी दश घडीमें बन्धुओंका नाश, शाखाकी ग्यारह घडीमें मातुलका नाश, पत्रोंकी द्वादश घडीमें पुण्यशील, पुष्पोंकी पांच घडीमें मन्त्री, फलकी सात घडीमें राजा, शिखाकी तीन घड़ीमें अल्पायु होता है, यह मूल वृक्षका फल होता है । भूपालवल्लभने कहा है कि, वृष, वृश्चिक सिंह कुम्भमें मूल स्वर्गमें होते हैं, मिथुन तुला कन्या मीनलग्नमें पातालमें, मेष धन कर्क मकरमें पृथ्वीमें रहते हैं, यह मुनिजनोंने

स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले चेद्धनागमः । मर्त्यलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत् ॥" वसिष्ठः–"नैर्ऋत्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रादवश्यं श्वशुरं निहन्ति। तदन्त्यपादे जनितो निहन्ति तस्योत्क्रमेणाहिभवे कलत्रम् ॥ सुरेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदैवताराजनिता तु देवरम् । पुरन्दरर्क्षे जनितः सुतस्तथा स्वस्याग्रजं हन्ति न पुत्रिका यदि ॥ २ ॥" प्रयोगपारिजाते–"मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तदङ्गनाम् । माहेन्द्रजाग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैवजा ॥" नृसिंहप्रसादे–"धवाग्रजं हन्ति सुरेन्द्रजाता तथैव पत्न्या भगिनीं पुमांश्च । द्विदैवजा देवरमांशु हन्याद्भार्यानुजामाशु निहन्ति सूनुः ॥ पत्न्यग्रजामग्रजं वा हन्ति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान् । तथा भार्यास्वसारं वा शालकं वा द्विदैवजः ॥ कन्यका देवरं हन्ति विशाखान्त्यसमुद्भवा । आद्यपादत्रये नैव आद्यभे तु पुमान्भवेत् ॥ न हन्याद्देवरं कन्या तुलामिश्रा द्विदैवजा । तद्दक्षान्तोद्भवा वर्ज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छवत् ॥ चित्राद्यर्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये । जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते मातापित्रोर्भ्रातरं बालनाशम् ॥ द्विमासं चोत्तरा-

---

कहा है। मूल स्वर्गमें हो तो राज्य, पातालमें हो तो धनकी प्राप्ति और जब मूल मृत्युलोकमें हो तब शून्य अर्थात् सर्वनाशक कहाते हैं। वसिष्ठने कहा है कि, मूलनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ पुत्र वा कन्या शीघ्र श्वशुरको नष्ट करती है और उसके अन्त्य पादमें उत्पन्न हुआ सासको नष्ट करती है, आश्लेषामें यह फल विपारित जानना चाहिये, ज्येष्ठामें उत्पन्न हुई कन्या ज्येष्ठको, विशाखामें उत्पन्न हुई देवरको नष्ट करती है। ज्येष्ठामें उत्पन्न हुआ पुत्र अपने जेठ भाईको नाशक है, जो जेठी पुत्री हो तो नहीं अर्थात् बड़े भाईको अरिष्ट है। प्रयोगपारिजातमें कहा है कि, मूलमें उत्पन्न कन्या श्वशुरको, आश्लेषामें उत्पन्न सासको, ज्येष्ठामें उत्पन्न हुई ज्येष्ठको, विशाखामें उत्पन्न देवरको नष्ट करती है। नृसिंहप्रसादमें कहा है कि, ज्येष्ठामें उत्पन्न हुई कन्या ज्येष्ठको और इसी प्रकार मौसी और मामाको, विशाखामें उत्पन्न हुई देवरको नष्ट करती है और पुत्र तो शीघ्र भार्याकी लघुभगिनीको नष्ट करता है, ज्येष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न पुत्र पत्नीकी बड़ी बहिन वा बड़े भाईको नष्ट करता है, विशाखामें उत्पन्न हुआ भार्याकी छोटी भगिनी वा शालेको नष्ट करता है, विशाखाके अन्त्यमें उत्पन्न हुई कन्या देवरको नष्ट करती है, पहले तीन चरणोंमें दोष नहीं। यदि प्रथम तीन चरणमें उत्पन्न हुआ बालक हो तुला राशिसे मिले तो, विशाखामें उत्पन्न हुई कन्या देवरको नष्ट नहीं क है और उस नक्षत्रके अन्त्यमें उत्पन्न हुई कन्या बिच्छूके डंकके समान त्यागने योग्य है प्रथमका आधा भाग, पुष्यके मध्यमें दो पाद, पूर्वाषाढाके तीसरे चरणमें उत्पन्न हुआ पुत्र माता पिता भाई बालक क्रमसे इनको अरिष्ट करता है।

दोषः पुष्ये चैव त्रिमासकः। पूर्वाषाढाष्टमे मासि चित्रा षाण्मासिकं फलम् ॥ नवमासं तथाश्लेषा मूले चाष्टकवर्षकम् । ज्येष्ठा पञ्चदशे मासि पुत्रदर्शनवर्जिता ॥ ७ ॥" वसिष्ठः–"व्यतीपातेऽङ्गहानिः स्यात्परिघे मृत्युमादिशेत् । वैधृतौ पितृहानिः स्यान्नष्टेन्दावन्धतां व्रजेत् ॥ मूले समूलनाशः स्यात्कुलनाशो धृतौ भवेत् । विकृताङ्गश्च हीनश्च संध्ययोरुभयोरपि ॥ पर्वण्यपि प्रसूतौ च सर्वारिष्टभयप्रदाः। तद्वत्सदन्तजातश्च पादजातस्तथैव च ॥ विपरीतप्रसूतौ तु नाभिनालेन वेष्टितः। राष्ट्रस्य नृपतेश्चैव स्वस्यापि च विनाशकः ॥ तस्माच्छान्तिं प्रकुर्वीत ग्रहाणां क्रूरचेतसाम् ॥ ९ ॥" गर्गः–"कृष्णां चतुर्दशीं षोढा कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् । द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये हन्ति मातरम् ॥ चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् । षष्ठे तु धननाशः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः ॥ " अथ पित्रोर्नक्षत्रे जन्मदोषः । तत्र देवकीर्तिः–"यद्येकस्मिन् धिष्ण्ये जायन्ते दुहितरोऽथवा पुत्राः । पितुरन्तकरा ह्येते यद्यपरे प्रीतिरतुला स्यात् ॥ " गर्गः–"एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः । प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चितम् ॥ " शौनकः–"ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते । व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥ इत्थं संजायते यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ " शान्तिस्तु–"तद्दक्षाधिपते रूपं

महीनेतक, पुष्यका तीन मासतक, पूर्वाषाढाका आठ महीनेतक, चित्राका छः महीनेतक, आश्लेषाका नौ महीने तक, मूलका आठ वर्षतक, ज्येष्ठामें उत्पन्न हुएका पन्द्रा महीनेतक दर्शन न करे। वसिष्ठने कहा है कि, व्यतिपातमें अंगकी हानि और परिघमें मृत्यु होती है, वैधृतिमें पिताकी हानि और नष्ट चन्द्रमामें अन्धता प्राप्त होती है, मूलमें समूल नाश, धृतिमें वंशक्षय, बालकका जन्म दोनों सन्ध्याओंमें हो तो विकृत अंग वा हीन अंग होता है और पर्वमें हो तो सम्पूर्ण अरिष्ट और भयको प्राप्त होता है। इसी प्रकार दन्तसहित उत्पन्न और पैरोंसे उत्पन्न और नालसे वेष्टित हुआ बालक भी अशुभ है, इससे क्रूरग्रहोंकी शान्ति अवश्य करनी चाहिये। गर्गने कहा है कि, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके छः भाग करने, उनमें प्रथम शुभ है, दूसरेमें पिताको, तीसरेमें माता, चौथेमें मामा, पांचवेंमें कुल, छठेमें धन और अपने कुलको नष्ट करता है; इस कारण प्रयत्नसे विधियुक्त शान्ति करनी। देवकीर्तिने कहा है कि, यदि एक ही नक्षत्रमें कन्या वा पुत्र उत्पन्न हों तो दोनों पिताके अन्त करनेवाले होते हैं और भिन्न नक्षत्रमें महाप्रीति होती है। गर्गने लिखा है कि, एक ही नक्षत्रमें दो भ्राता वा पितापुत्रका जन्म हो तो निश्चय ही एक की मृत्यु होती है। शौनकने कहा है कि, यदि चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें जन्म हो तो स्त्रियोंको ऋतु होनेसे प्रथम रोगकी पीडा होती है, इस प्रकार जिसके हो उसकी निःसन्देह मृत्यु होती है। शान्ति तो यह है कि, उस

सुवर्णेन प्रकल्पयेत् । सूर्यग्रहे सूर्यरूपं हैमं चन्द्रं तु राजतम् ॥ राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः । त्रयाणां चैव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत् ॥ २ ॥ " नागः सीसम् । आकृष्णेनाप्ययास्व स्वर्भानोः इति पूजामन्त्राः । नक्षत्रदेवतायास्तन्मन्त्रेण–" संपूज्य तु यजेत्सूर्यं समिद्भिश्चार्कसम्भवैः । चन्द्रग्रहे च पालाशैर्दूर्वाभी राहुमेव च ॥ समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य भेशाय जुहुयाद्बुधः । आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः ॥ पंचगव्यैः पंचरत्नैः पंचत्वक्पञ्चपल्लवैः । जलैरोषधिकल्कैश्च अभिषेकं समाचरेत् ॥ मन्त्रैर्वारुणसंभूतैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः । इमं मे गङ्गे पुरतस्तत्त्वायामीति मन्त्रकैः ॥ यजमानस्ततो दद्याद्भक्त्या प्रतिकृतित्रयम् ॥ ४ ॥ " अकालप्रसवादिफलं मात्स्ये–"अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा । विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवकास्तथा ॥ अमानुषा अमुण्डाश्च अजातव्यजनास्तथा । हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः । विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् । निर्वासयेतां नगरात्ततः शान्तिं समाचरेत् ॥ ४ ॥ " उपरिदन्तजनने निर्णयः ।

नक्षत्रके स्वामीकी सोनेकी प्रतिमा बनावे, सूर्यके ग्रहणमें सूर्यकी सोनेकी और चन्द्रग्रहणमें चंद्रमाकी चांदीकी मूर्ति निर्माण करावे और राहुका रूप नाग (सीसे) का निर्माण करे, तीनों रूपोंका वहां स्थापन करे । उनकी पूजाके मंत्र ' आकृष्णेन, आप्यायस्व, स्वर्भानो ' लिखे हैं; नक्षत्रदेवताकी पूजा उसके ही मन्त्रसे करनी चाहिये । और पूजा करके आककी समिधोंसे सूर्यकी पूजा और चन्द्रग्रहणमें ढाकसे चन्द्रमाकी पूजा और दूर्वासे राहुकी पूजा करनी चाहिये और पीपलकी समिधोंसे नक्षत्रके स्वामीके निमित्त बुद्धिमान् मनुष्यको होम करना चाहिये, फिर घी चरु तिलोंसे हवन करे, फिर पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, पञ्चत्वचा, पञ्चपल्लव और ओषधियोंके गुद्दोंके जलसे अभिषेक करे; वह अभिषेक वरुणके मंत्र और आपोहिष्ठाआदि तीन मंत्र, इमं मे गंगे, तत्त्वायामि; इन मंत्रोंसे करना चाहिये, फिर यजमान भक्तिसे तीनों मूर्तियोंका दान करे । मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, जिनके असमय प्रसव हुआ है वा समय उपरांत हुआ है, जिनके विकारयुक्त प्रसव हुआ है, जिनके अमानुष (विना शिर वा अप्रकट अंगवाला) प्रसव हुआ है वा अंगहीन, अधिकअंग प्रसव हुआ है वा जिसके पशु, पक्षी, सर्प हुआ हो तो उस देश

---

१ "आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ यजु० ३३ । ४३ ॥" २ " आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमवृष्ण्यम् । भवावाजस्य संगथे ॥ ऋ० १ । ६ । १२ ॥" ३ " स्वर्भानो रधयदिन्द्रमायाअवो दिवोवर्तमाना अवाहन् । गूहळं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेन ब्रह्मणा विन्ददत्रिः ॥ ऋ० ४ । २ । १२ ॥"

पाद्मे-" उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजाः । दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ॥ द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पञ्चमे तथा । यदा दन्ताश्च जायन्ते मासे चैव महद्भयम् ॥ मातरं पितरं वाथ खादेदात्मानमेव च । गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्थापयेद्द्विज ॥ तदभावे तु धर्मज्ञ काञ्चने वा वरासने । सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैस्ततः ॥ पञ्चगव्येन रत्नैश्च पताकाभिश्च भार्गव । स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम् ॥ सप्ताहं चात्र कर्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम् । भद्रासने निवेश्यैनं मृद्भिर्मूलैः फलैस्तथा ॥ सर्वौषधैः सर्वगन्धैः सर्वबीजैस्तथैव च । स्नापयेत्पूजयेच्चात्र वह्निं सोमं समीरणम् ॥ पर्वतांश्च तथाख्यातान्देवदेवं च केशवम् । एतेषामेव जुहुयाद्धृतमग्नौ यथाविधि ॥ ब्राह्मणानां तु दातव्या ततः संपूज्य दक्षिणा ।

और वंशका नाश कहना अतः उस स्त्रीको नगरसे निकाल देना और फिर उसकी शांति करनी चाहिये । अब ऊपरके दांतोंके निकलनेकी शांति लिखते हैं-पाद्ममें कहा है कि, जिस बालकके ऊपरके दांत पहले निकलें वा हे भार्गवश्रेष्ठ ! जो दांतोंसहित जन्मे और दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवे महीनेमें यदि दांत उत्पन्न हो तो महान् भय होता है और बालक माता वा पिताको वा अपनेको नष्ट करता है हे धर्मज्ञ ! उस बालकको हाथीकी पीठ वा नावपर चढ़ावे, यदि वह न हो तो सुवर्णके वा श्रेष्ठ आसनपर बैठाकर सम्पूर्ण ओषधि, सम्पूर्ण गन्ध, बीज, फूल, फल, पञ्चगव्य, सम्पूर्ण रत्न, मृत्तिकासे स्नान करावे, इसके पीछे स्थालीपाकसे ब्रह्माका पूजन करे तथा सात दिनतक ब्राह्मणोंका भोजन करावे, फिर आठवें दिन बालकको श्रेष्ठ आसनपर बैठाके मृत्तिका, मूल, फल, सब ओषधि, सब गन्ध, सब बीजसे स्नान तथा पूजन करे, फिर अग्नि, सोम, पवन, प्रसिद्ध पर्वत तथा देवोंके देव विष्णुके निमित्त विधिसे अग्निमें हवन करे, फिर भले प्रकार पूजा करके

---

१ 'अष्टमेऽहनि विप्राणां तथा देयात्र दक्षिणा।काञ्चनं रजतं गाश्च भुवं वा धनमेव च॥दन्तानामष्टमे मासि षष्ठे मासि ततः पुनः । दन्ता यस्य च जायन्ते माता वा म्रियते पिता ॥ बालको म्रियते तत्र स्वयमेव न संशयः । दधि क्षौद्रं घृताक्तानामश्वत्थसमिधां तथा ॥ जुहुयादष्टोत्तरशतं समन्त्रेण तु मन्त्रवित् । धेनुं च दक्षिणां दद्यात्ततः सम्पद्यते सुखम् ॥' ज्योतिर्निबन्धे तु अष्टमे शुभमित्युक्तम् । अष्टमादिषु तूत्थानं शुभावहमित्यतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिणा वा नवमासादिग्रहणम् ॥ इति पाठस्तु पुस्तकान्तरेषु नोपलभ्यते ॥

आठवें दिन सुवर्ण, चांदी, गौ,पृथ्वी, धनको दे यदि बालकके दांत आठवें वा छठें महीनेमें निकलें तो माता पिताकी मृत्यु और स्वयं बालक मरे इसमें सन्देह नहीं; उसमें दधि दूध सहतसे सींची हुई पीपल वा ढाककी लकडियोंसे मन्त्रका ज्ञाता मन्त्रसहित एक सौ आठ आहुति दे, फिर गौ और दक्षिणा देनी चाहिये, इससे सुखकी प्राप्ति होती है । ज्योतिर्निबन्धमें तो आठवां महीना शुभ लिखा है अथवा अष्टम है आदिमें जिनके ऐसे मासोंमें दांत निकलना उत्तम हैं. यहां (अष्टम आदौ येषु) इस अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि (जिस बहुव्रीहिमें कथन किये हुए पदार्थोंका संविज्ञान ग्रहण न हो) से नौ आदि महीनेका ग्रहण है, परन्तु यह पाठ अन्य पुस्तकोंमें नहीं मिलता ॥

ब्रह्मयामले-"प्रथमं दन्तनिर्मुक्तिरूर्ध्वे बालस्य चेद्भवेत् । क्लेशाय मातुलस्येह तदा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमयं तु वा । दध्योदनेन संपूर्णं पात्रं दद्याच्छिशोः करे ॥ समन्त्रं भाजनं दत्त्वा स पश्येन्मातुलः शिशुम् । सालंकारं सवस्त्रं च शिशुमालिंग्य सादरम् ॥" तत्र मन्त्रः-"रक्ष मां भागिनेय त्वं रक्ष मे सकलं कुलम् । गृहीत्वा भाजनं सान्नं प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नां च स्वमातरम् । मय्यात्मानमधिष्ठाप्य चिरञ्जीव मया सह ॥ एवं कृते विधाने तु विघ्नः कोऽपि न जायते ॥ २ ॥" अथ त्रिकशांतिः । त्रिकशान्तिः शान्तिसर्वस्वे-"सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुतो यदि । मातापित्रोः कुलस्यापि तदानिष्टं महद्भवेत् ॥ ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत् । तत्र शान्ति प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने । आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः । पूजयेद्धान्यराशिस्थाः कलशोपरि शक्तितः॥ पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया । रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः। द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिसमाहितः । आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्य-

---

ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे । ब्रह्मयामलमें तो यह लिखा है कि, यदि बालकके पहले ऊपरके दांत निकले तो मामाको क्लेश होता है, वहां महर्षियोंने शांति लिखी है कि, सोना, चांदी, कांसा वा तांबेके पात्रको घीसे पूर्ण करके मन्त्रसहित बालकके हाथमें दे, फिर मामा वस्त्र आभूषणोंके सहित बालकको आदरसे शरीरसे लगाकर देखे । वहां यह मंत्र है कि, हे भगिनीके पुत्र ! मेरी तथा मेरे सम्पूर्ण कुलकी तू रक्षा करना और इस अन्नसहित भाजनपात्रको लेकर सदा मेरे ऊपर प्रसन्न रहना और मुझे तथा अपनी माताको निर्विघ्न और कल्याणकी प्राप्ति कर मुझमें अपना अधिष्ठान (स्थिति) करके मेरे साथ चिरकालतक जीवो । इस प्रकार विधान करनेसे किसी प्रकारका भी विघ्न नहीं होता है । अब तीन पुत्रोंके ऊपर कन्या वा तीन कन्याओंके ऊपर पुत्र हो तो उसकी शांति शान्तिसर्वस्वमें लिखते हैं कि, यदि तीन पुत्रोंके पीछे कन्या वा तीन कन्याओंके ऊपर पुत्र हो तो माता, पिताके वंशको महाअनिष्ट तथा जेठे पुत्रका नाश,धनकी हानि,महान् दुःख करता है । इसमें अपनी शक्तिके अनुसार शान्ति करनी कि, जन्मसे ग्यारहवें, बारहवें शुभदिनोंमें आचार्य और ऋत्विजोंका वरण करके ग्रहोंका पूजन करे, फिर धान्यकी राशियोंपर कलशके ऊपर स्थापित की हुई ब्रह्मा, विष्णु , महादेव तथा इन्द्रकी सुवर्णकी प्रतिमाओंका पूजन करे कि,पांचवें कलशपर स्थित हुए महादेवका ग्यारह रुद्रसूक्तोंसे तथा ब्रह्मा आदि देवताओंका चार शान्तिके सूक्तोंसे पूजन करे । फिर आचार्य ग्रहोंके होम पूर्वक ब्रह्मा, विष्णु, महेशका ब्रह्माआदिके मन्त्रोंसे और

तिलांश्चरुम् ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा त्रिशतं तु वा । देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् ॥ ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्र भयामहे । ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः ॥ अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाचार्यं प्रपूजयेत् । हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विजां दक्षिणा ततः ॥ आज्यस्य वीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत् । प्रतिमां गुरवे दत्त्वा उपस्कारसमन्वितः ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् । एवं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं प्रलीयते ॥ ११ ॥" इति । अन्येषु मूलाद्यृक्षेषु शान्त्यादि प्रयोगपारिजाते मत्कृते शान्तिरत्ने च ज्ञेयम् । मिताक्षरायां मार्कण्डेयः–"रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेषतः । रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः ॥ पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः । रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके ॥ २ ॥" व्यासः–"सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः । तासां यागनिमित्तं तु शुद्धिर्जन्मनि कीर्तिता ॥ प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥ २ ॥" अपरार्के ब्राह्मे–" कन्याश्चतस्रो राकाद्या वातघ्नी चैव पञ्चमी । क्रीडनार्था च बालानां षष्ठी च शिशुरक्षिणी ॥ खड्गे तु पूजनीया वै

इन्द्रको " यतंइन्द्रभयामहे" इस मन्त्रसे समिध, घी, तिल, चरुकी एक सहस्र आठ वा सौ वा तीन सौ आहुतियोंसे हवन करे, फिर स्विष्टकृत् होम करके बलि और पूर्णाहुति दे, फिर कुटुम्बका अभिषेक करके आचार्यका पूजन करे और सोना तथा गोदान करे, फिर ऋत्विजोंको दक्षिणा दे और घीका दर्शन कर शान्तिपाठ करे, फिर शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दीन अनाथ (निर्धन) की तृप्ति करे । इस प्रकार विधिसे शान्ति करके मनुष्य सब अरिष्टोंसे मुक्त हो जाता है ॥ इति त्रिकशान्तिः ॥ और मूलआदि नक्षत्रोंकी शान्ति आदि प्रयोगपारिजात और हमारे बनाये शान्तिरत्नमें लिखी है, वहां देख लेनी । मिताक्षरामें मार्कण्डेयने लिखा है कि, छठकी रात्रिमें रक्षा करे तथा रात्रिमें जागरण करे और जन्मदाता देवताओंको बलि देनी । मनुष्य शस्त्रोंको हाथमें लेकर तथा स्त्री नृत्यगीतोंसे दशवीं रात्रिके सूतकमें रात्रिको जागरण करे । व्यासने कहा है कि, सूतिकागृहमें रहनेवाले जन्मदा नामक देवता होते हैं, उनकी पूजाके निमित्त जन्मसमयमें शुद्धि कही है । पुत्रके जन्ममें सदा पहिले, छठे, दशवें दिन सूतकको न करना चाहिये । अपरार्कमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, द्विजाति, अत्यन्त और शूद्रोंको राका, अनुमति, सिनीवाली, कुहू ये चार कन्या तथा वातघ्नी पञ्चमी बालकोंकी क्रीडा करनेके निमित्त शिशुरक्षिणी षष्ठी है, खड्गमें इनका पूजन

---

१ "यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवन् छग्धितयतव ऊतिभिर्विद्विषो विमृधोजहि ऋ० ६ । ४ । २० ॥"

वैश्यैर्व्रात्यैर्द्विजातिभिः ॥" राकानुमतिः सिनीवालीकुहूरिति चतस्रः कन्या इत्यर्थः । अथ दत्तकग्रहणविधिः । दत्तकपरिग्रहविधिः पारिजाते शौनकः- "अपुत्रो मृतपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च । वाससी कुण्डले दत्त्वा उष्णीषं चांगुलीयकम् ॥ बन्धूनन्नेन संभोज्य ब्राह्मणांश्च विशेषतः । अन्वाधानादि यत्तत्र कृत्वाज्योत्पवनान्तकम् ॥ दातुः समक्षं गत्वा तु पुत्रं देहीति याचयेत् । दाने समर्थो दातास्मै ये यज्ञेनेति पञ्चभिः ॥ देवस्यत्वेति मन्त्रेण हस्ताभ्यां परिगृह्य च । अङ्गादङ्गेत्यृचं जप्त्वा आघ्राय शिशुमूर्धनि ॥ गृहमध्ये तमाधाय चरुं हुत्वा विधानतः । यस्त्वाहृदेत्यृचा चैव तुभ्यमग्न ऋचैकया ॥ सोमोददादित्येताभिः प्रत्यृचं पञ्चभिस्तथा । स्विष्टकृदादिहोमं च कृत्वा शेषं समापयेत्॥" स च-"ब्राह्मणानां सपिण्डेषु कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः । तदभावे सपिंडो वा अन्यत्र तु न कारयेत् ॥" मिताक्षरादौ तु व्याहृतिभिराज्येन होम उक्तः । स च होमोत्तरं जलपूर्वकं देयः । न वाङ्मात्रेण । 'व्याहृतिभिर्हुत्वा प्रतिगृह्णीयात्' इति वसिष्ठोक्तेः । "माता पिता वा

करना चाहिये ॥ अब दत्तकपुत्रके परिग्रह (ग्रहण) करनेकी विधि कहते हैं-पारिजातमें शौनकने लिखा कि, मैं शौनक उत्तम पुत्रके संग्रहकी विधि कहता हूं, जिसके पुत्र न हो वा जिसके पुत्र मृतक होगये हों वह पुत्रके निमित्त व्रत करके और बालकके निमित्त वस्त्र, कुण्डल, पगड़ी, अँगूठी देकर बन्धुओंको और विशेषकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और अन्वाधानसे आज्योत्पवनपर्यन्त हवनको भले प्रकार सम्पादन करके दाताके निकट जाकर 'तुम मुझे पुत्र दो' इस प्रकार कहे । तब देनेमें समर्थ दाता 'ये यज्ञेन' इन पांचमन्त्रोंको तथा 'देवस्य त्वा' इस मन्त्रको पढ़कर हाथोंसे पुत्रको ग्रहण करके और 'अंगादंगात् ' इस ऋचाको पढ़कर बालकके शिरको सूंघे, घरके मध्यमें लाकर और विधिसे चरुका होम करके, ' यस्त्वा हृदा ' इस ऋचासे और ' तुभ्यमग्ने ' इस एक ऋचासे ' सोमोददत् ' इन पांच ऋचाओंसे स्विष्टकृत आदि हवन करके शेष कर्मको पूर्ण करे । ब्राह्मणोंको सपिंडोंमेंसे पुत्र लेना चाहिये, वह न मिले तो असपिंड़को लेना, अन्यको पुत्र न करे । मिताक्षरामें तो व्याहृतियोंसे घृतका हवन करना लिखा है और वह पुत्र होमके उपरान्त संकलपपूर्वक देना चाहिये,केवल वाणीसे नहीं;कारण कि, वसिष्ठने यह लिखा है कि, व्याहृतियोंसे हवन करके पुत्रको ग्रहण करे। और मनुने कहा है कि, माता वा पिता जिस

---

१ "ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानशे,तेभ्यो भद्रमंगिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः । ऋ० ८ । २ । १ ॥" २ "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् आददेऽध्वरकृतन्देवेभ्यः इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ९ । २४ ॥"३"अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे । आत्मासि पुत्र मा मृथाः सजीव शरदः शतम् ॥ "

दद्यातां यमाद्भिः पुत्रमापदि ॥ सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्त्रिमः सुतः ॥" इति मनूक्तेः । तत्रैव वसिष्ठः—'न त्वेवैकं पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा, न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः' इति । इदं च भर्तृसत्त्वे । अन्यथा—'दद्यान्माता पिता वायं स पुत्रो दत्त्रिमः स्मृतः' इति वत्सव्यासवचोविरोधः स्यात् । दानं प्रतिग्रहोपलक्षणम् । यत्तु समन्त्रकहोमस्य पुत्रप्रतिग्रहाङ्गत्वात् । व्याहृत्यादिमन्त्रपाठे च स्त्रीशूद्रयोरनधिकारात् । तयोर्दत्तकपुत्रो न भवत्येवेति शुद्धिविवेके रुद्रधरेणोक्तम् । वाचस्पतिश्चैवमेवाह । तन्न । भर्तुरनुज्ञया स्त्रिया अपि प्रतिग्रहोक्तेः । यद्यपि मेधातिथिना भार्यात्ववददृष्टरूपं दत्तकत्वं होमसाध्यमुक्तम् । स्त्रियाश्च होमासंभवस्तथापि व्रतादिवद्विप्रद्वारा होमादि कारयेदिति हरिनाथादयः । संबन्धतत्त्वेऽप्येवम् । एवं शूद्रस्यापि । 'स्त्रीशूद्रस्य सधर्माणम्' इति स्मृतेः । अत एव शूद्रकर्तृकहोमो विप्रद्वारैव पराशरेणोक्तेः । "दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः । ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥" अत्र माधवाचार्यैः—'यो विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय तदीयं हविः शान्तिपुष्ट्यादिसिद्धये वैदिकैर्मन्त्रैर्जुहोति तस्य विप्रस्यैव दोषः । शूद्रस्तु होमफलं लभेतैवेति व्याचचक्षे ॥ दत्तके विशेषः कालिकापुराणे—"पितुर्गोत्रेण यः

पुत्रको आपत्तिके समय जलपूर्वक दें वही अपना सजातीय और प्रीतिका पात्र होता है । वहां ही वसिष्ठने लिखा है कि, जिसके एक ही पुत्र हो वह न एक पुत्रको दे, न ले । और भर्ताकी आज्ञा विना न स्त्री पुत्र दे और न ले, यह बात भी तब है जब पति विद्यमान हो, अन्यथा इस वत्स और व्यासके वाक्यका विरोध होगा कि, माता वा पिता जिसको दे वही दत्तक पुत्र होता है । इस वाक्यमें दान, प्रतिग्रहका भी उपलक्षण कहा है । जो रुद्रधरने शुद्धिविवेकमें यह लिखा है कि, मन्त्रसहित हवन पुत्र लेनेका अंग है और व्याहृतिआदि मंत्र पढ़नेमें स्त्री और शूद्रका अधिकार नहीं है, उनका दत्तकपुत्र ही न होगा । और वाचस्पतिने भी यही लिखा है, सो ठीक नहीं है; कारण कि, स्वामीकी आज्ञासे स्त्रीको भी प्रतिग्रह करना लिखा है । यद्यपि मेधातिथिने भार्यात्व (पत्नीपना) के तुल्य अदृष्टरूप दत्तकत्व (दत्तकपना) हवनसाध्य लिखा है और स्त्रीको हवन करना असंभव है तथापि व्रतआदिके तुल्य ब्राह्मणके द्वारा स्त्रीको हवन आदि करना चाहिये, यह हरिनाथ आदिका कथन है और सम्बन्धतत्त्वमें भी इसी प्रकार लिखा है । इसी प्रकार शूद्रको भी जानना; कारण कि, यह स्मृति है कि, स्त्री और शूद्र तुल्यधर्मवाले होते हैं, इससे शूद्रको ब्राह्मणके द्वारा ही होम करना चाहिये । जो ब्राह्मण दक्षिणाके निमित्त शूद्रकी हविको होमता है, वह ब्राह्मण शूद्र होता है और शूद्र ब्राह्मण होता है, इसमें माधवाचार्यका यह कथन है कि, जो ब्राह्मण शूद्रकी दक्षिणा लेकर शूद्रकी हविको शान्तिपुष्टि आदिके निमित्त वेदके मन्त्रोंसे होमता है उस ब्राह्मणको ही दोष है, शूद्रको तो हवनका फल मिलता ही है । दत्तकमें विशेष

पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपते । आचूडान्तं न पुत्रः स पुत्रतां याति चान्यतः ॥ चूडोपनयसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥ ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्वर्षान्न दत्ताद्याः सुता नृप । गृहीत्वा पञ्चवर्षीयं पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत् ॥ पंचमोर्ध्वं स्वदानेच्छोरेव दानं न चान्यथा । विक्रयं चैव दानं च न नेयाः स्युरनिच्छवः ॥ दाराः पुत्राश्च सर्वस्वमात्मनैव तु योजयेत् ॥ ॥ ९ ॥" इति हेमाद्रिमाधवधृतव्यासदक्षादिवचनात् । यच्च याज्ञवल्क्यः–'स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते' इति । तदूर्ध्वं स्वदानानिच्छुपुत्रपरम् । तेन सर्वस्वदाने स्वदानेच्छुदारपुत्रदानं सिद्धम् । यत्तु विश्वजिदधिकरणे षष्ठे–तत्र पुत्रादीनां ज्ञातित्वेन स्वशब्दवाच्यत्वात् पुत्रत्वेन दानाशंका निराकृता । जन्यपुंस्त्वस्य दानेनानिष्पत्तेः दासत्वेन दानं भवत्येव । तस्माद्यथेष्टविनियोगार्हत्वं स्वत्वं भवत्येव । पुत्रे स्वत्वाभावं वदन् पुत्रक्रयविक्रयादिशुनःशेपविक्रयादिश्रौतलिङ्गाद्दासक्रयविक्रयादिव्यवहारायोगन्मूर्ख एव । योपि 'नहिग्रभायारणः सुशेवोन्योदर्योमनसामंतवाउ' इति श्रुतौ दत्तकनिषेधः। सोऽप्यौरसातिशयार्थः ।

कालिका पुराणमें कहा है कि, हे राजन् ! जिस पुत्रका पिताके गोत्रसे संस्कार हुआ है वह मुण्डनपर्यन्त औरका पुत्र नहीं होसकता, जिस मुण्डनसंस्कार अपने गोत्रसे किया हो वे दत्तक आदि पुत्र होसकते हैं, अन्यथा दास होते हैं । हे राजन् ! पंचमवर्षके उपरान्त दत्तक आदि पुत्र नहीं हो सकते, पांचवर्षके पुत्रको ग्रहण करके प्रथम पुत्रेष्टि करे, पांच वर्षके उपरान्त तो वही दे सकता है जिसकी देनेकी इच्छा हो और नहीं; कारण कि, हेमाद्रि और माधवमें व्यास और दक्षके ये कथन हैं कि, बेंचना और देना विना अपनी इच्छाके नहीं कर सकते, इससे स्त्री, पुत्र और सर्वस्व इन सबको आप ही दे । जो याज्ञवल्क्यने यह लिखा है कि, अपने कुटुम्बकी प्रसन्नतासे स्त्री और पुत्रको त्याग कर दे, यह वाक्य उस पुत्रके निमित्त है जो अपने दानकी इच्छा करता हो और जिसका संस्कार हो। इससे सर्वस्वदानकी अभिलाषावालोंको स्त्री और पुत्रका दान सिद्ध हुआ जानना । जो विश्वजित्के छठे अधिकरणमें पुत्र आदिकोंको भी जाति होनेसे स्वशब्दका अर्थ है इससे पुत्रके देनेकी आशंका करके उसका निराकरण लिखा है , कारण कि, उसमें जन्य पुरुषपनोंके दानकी सिद्धि नहीं, अर्थात् वह जिसको प्रदान किया जाय उसका जन्य नहीं हो सकता, दासरूपसे दान तो होसकता है, पुत्रमें स्वत्वके अभावको वर्णन करते और पुत्रके क्रय विक्रय आदि और शुनःशेपके विक्रय आदि मन्त्रके प्रमाणसे दास और क्रय विक्रय आदि व्यवहारका योग नहीं है, इससे वह मूर्ख है। ' नहिग्रभायारणः ' जो इस मन्त्रमें दत्तक पुत्र लेनेका

---

१ "नहिग्रभायारणः सुशेवोन्योदर्यो मनसामन्तवाउ ॥ अधाचिदोकः पुनरित्सएत्यानोवाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥ ऋ० ५ । २ । ९ । ८ ॥"

अन्यथा शुनःशेपादिप्रतिग्रहश्रौतलिंगविरोधापत्तेः। 'उपेयां तव पुत्रताम्' इत्युक्तेः॥ इदं च श्रौतलिङ्गं स्वयं दत्तक्रीतपरम्। न दत्तकपरम्। द्वादशविधपुत्रमध्ये-'दत्तात्मा तु स्वयंदत्तः'। 'क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः' इति याज्ञवल्क्येन तयोर्दत्तकाद्भेदोक्तेः॥ तयोश्च-'दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः' इति कलौ निषेधात्तेन संस्कारोत्तरं स्वयं क्रीतो न भवति। तदुत्तरं दत्तको न भवत्येवेति सिद्धम्। यमलसंस्कारे ज्येष्ठकनिष्ठत्वम्। अथ यमलयोः संस्कारक्रमार्थं ज्येष्ठकनिष्ठभाव उच्यते। मनुः-"पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः। कथं तयोर्विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत्॥ सदृशः स्त्रीप्रजातानां पुत्राणामविशेषतः। न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते॥२॥" तेन कनिष्ठायां पूर्वजात एव ज्येष्ठो न ज्येष्ठायां पश्चाज्जात इत्यर्थः। स एव श्राद्धाधिकारी। "जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्। यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता॥" देवलः-"यस्य जातस्य यमयोः पश्यन्ति प्रथमं मुखम्। संतानः पितरश्चैव तस्मिञ्ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठितम्॥" भागवते तु-'द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिवेशविपर्ययात्।' इत्युक्तेः

निषेध है वह भी औरस पुत्रकी उत्तमताके निमित्त है, ऐसा न माननेसे शुनःशेप आदिके लेनेमें वेदके प्रमाणका विरोध होगा। कारण कि, मन्त्रोंमें यह कथन है कि, मैं तेरा पुत्र हूंगा यह मन्त्रका प्रमाण भी स्वयंदत्त और क्रीतके विषयमें समझना चाहिये, दूसरेके विषयमें नहीं। कारण कि, याज्ञवल्क्यने वे दोनों द्वादश प्रकारके पुत्रोंमें उस दत्तकसे भिन्न लिखे हैं कि, जिसने अपनी आत्मा स्वयं देदी हो, वह स्वयंदत्त और जिसे मातापिताने बेचा हो, वह क्रीत; इन दोनोंका कलियुगमें इस वाक्यसे निषेध कहा है कि, दत्तक, औरससे पृथक् कलियुगमें पुत्र नहीं होसकते। अब यमों (एकसाथ उत्पन्न हुओं) का संस्कारोंके क्रमार्थ वर्णन करते हैं-मनुने कहा है कि, यदि जेठी पत्नीका पुत्र छोटा हो और छोटीका बड़ा हो तो उनका विभाग किस प्रकार हो? इस सन्देहमें सदृश स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए पुत्रोंमें विशेषके अभावसे मातासे ज्येष्ठता नहीं है, किन्तु जन्मसे ज्येष्ठता है अर्थात् वही ज्येष्ठ है जो प्रथम उत्पन्न हुआ हो; इससे कनिष्ठा (छोटी) में प्रथम हुआ ही ज्येष्ठ है और बड़ी भार्यामें पीछे उत्पन्न हुआ बड़ा नहीं और श्राद्धमें भी वही ज्येष्ठ अधिकारी है। जन्मसे जो जेठा हो उसे ही बुलाना सुब्रह्मण्याओंमें भी लिखा है। यमोंके गर्भमें भी वही बड़ा है जिसका जन्म पहिले हुआ हो। देवलने भी कहा है कि, यमोंमें जिस उत्पन्न हुएका मुख पिता और पितर प्रथम देखे उसमें ही ज्येष्ठता होती है। भागवतमें तो यह कहा है कि, वीर्य गिरनेके समय जब दो प्रकारसे वीर्य जाता है, तब दो गर्भ होते हैं और वीर्यप्रवेशसे विपरीत जन्म होता है, अर्थात् जो गर्भमें प्रथम जाता है वह पीछे, जो पीछे जाता है वह प्रथम

पश्चादुत्पन्नस्य ज्यैष्ठ्यमुक्तम् । अत्र देशाचारतो व्यवस्था । पूर्वमेव तु युक्तं गर्भाष्टम इत्यादौ विशेषनिर्देशे एव गर्भग्रहणं नान्यत्र । अन्यथा तद्वैयर्थ्यात् ॥ अथ सूतिकास्नानम् । सूतिकास्नानं ज्योतिषे-" करेन्द्रभाग्यानिलवासवान्त्यमैत्रेन्दवाश्विध्रुवभेऽह्नि पुंसाम् । तिथावरिक्ते शुभमामनन्ति प्रसूतिकास्नानविधिं मुनीन्द्राः ॥ " अथ नामकर्म । मदनरत्ने बृहस्पतिः-"द्वादशे दशमे वापि जन्मतोऽपि त्रयोदशे । षोडशे विंशतौ चैव द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात् ॥ " याज्ञवल्क्यः-'अहन्येकादशे नाम । ' हेमाद्रौ भविष्ये-"नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां मासि केचन । अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः ॥ " दशम्यामतीतायामिति ज्ञेयम्-'आशौचापगमे नामधेयम्' इति विष्णूक्तेः । गृह्यपरिशिष्टेऽपि-'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामकरणम् ।' व्युष्टेऽतीते । ज्योतिर्निबन्धे गर्गः-'अमासंक्रान्तिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत् ॥ ' श्रीधरः-" मित्रादित्यमघोत्तराशतभिषक्स्वातीधनिष्ठाच्युतप्राजेशाश्विशशाङ्कपौष्णदिनकृत्पुष्येषु राशौ स्थिरे । छिद्रां पञ्चदशीं विहाय नवमीं शुद्धेऽष्टमे भार्गवज्ञा-

उत्पन्न होता है, इससे पीछे उत्पन्न हुआ ही ज्येष्ठ कहा है, इसमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये । पहिले यह कथन है कि, गर्भसे आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत करे, इत्यादि वाक्योंमें जहां विशेषका निर्देश है वहां ही गर्भका ग्रहण है, और स्थानमें नहीं; अन्यथा गर्भपद वृथा है । अब सूतिकाका स्नान लिखते हैं-ज्योतिषमें कहा है कि, हस्त, ज्येष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, स्वाती, धनिष्ठा, रेवती, अनुराधा, मृगशिर, अश्विनी, ध्रुव संज्ञक नक्षत्रोंमें रवि भौम तथा गुरुवारमें और रिक्ताभिन्न तिथियोंमें मुनियोंने प्रसूता स्त्रियोंकी स्नानविधि शुभ लिखी है । अब नामकर्म मदनरत्नमें बृहस्पतिने लिखा है कि, बारहवें वा दशवें दिन ब्राह्मणका और जन्मसे तेरहवें दिन क्षत्रियका, सोलहवें वा बीसवें दिन वैश्यका, बत्तीसवें दिन शूद्रका नामकर्म करे । याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, ग्यारहवें दिन नामकरण करे । हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, दशमें वा द्वादशवें दिन या पूर्ण महीनेमें नाम रखना चाहिये और अन्य तो बुद्धिमान् अठारहवें दिन कहते हैं । यहां दशमीके बीतनेपर समझना चाहिये; कारण कि, अशौचके बीतनेपर नामकरण करे, यह विष्णुने लिखा है । गृह्यपरिशिष्टमें भी कहा है कि, जन्मसे दशरात बीतनेपर शत १०० रातमें वा वर्ष दिनमें नामकरण करे । ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने लिखा है कि, अमावास्या, संक्रान्ति, भद्राआदिमें समय आनेपर भी न करे । श्रीधरने कहा है कि, अनुराधा, पुनर्वसु, मघा, तीनों उत्तरा, शतभिषा, स्वाती, धनिष्ठा, श्रवण, रोहिणी, अश्विनी, मृगशिर, रेवती, हस्त, पुष्य इन नक्षत्रोंमें और स्थिरराशि[1] लग्नमें, छिद्रा, पंचदशी (३०, १५) नवमी इनको त्यागकर जब अष्टम भवन शुद्ध हो तथा शुक्र, बुध, बृहस्पति, सोम ये वार हों तो बालकका नाम धरे । मनुने कहा है कि, ब्राह्मणका नाम शर्मांत, क्षत्रियका वर्मांत

१ वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ ये स्थिर राशि हैं ॥

चार्यामृतपाक्षभागदिवसे नामानि कुर्याच्छिशोः ॥ " मनुः-"शर्मान्तं ब्राह्मणस्य स्याद्वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु । वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥ " मदनरत्ने नारदीये-"सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम् । नामपूर्वं तु मासस्य मङ्गलं सुसमाक्षरैः ॥" तत्रैव गार्ग्यः-'मासनाम गुरोर्नाम दद्याद्बालस्य वै पिता ।' स्मृतिसंग्रहे-"कृष्णोऽनन्तोऽच्युतश्चक्री वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः । उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः ॥ योगीशः पुंडरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ॥" अत्र मार्गशीर्षादिश्चैत्रादिर्वा क्रम इति मदनरत्ने-" तन्मासनाम प्रथमे दद्यात्संबुध्य चैव हि । देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥ सर्वापणानां पुण्यानां चिह्नार्थं योषितां नृणाम् । काव्यानां च कवीनां च पश्वादीनां च सर्वशः ॥ राजप्रासादवास्तूनां नामकर्म विशिष्यते ॥ ३ ॥ " नाक्षत्रमपि नाम कार्यम् । 'अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामौपनयात्' इत्याश्वलायनोक्तेः । 'कुलदेवतानाक्षत्रसंबद्धं पिता नाम कुर्यात्' इति मदनरत्ने शंखोक्तेः । तच्च नक्षत्रपादाक्षराद्याक्षरं कुर्यादित्युक्तं परिशिष्टे-' तदक्षरादिकं नाम यस्मिन्धिष्ण्ये यदक्षरम् । ' इति । सुदर्शनभाष्ये तु-"रोरेमसृज्येविषु वृद्धिरादौ छान्त्ये च वान्त्ये श्रवशाश्व-

---

और वैश्यका धनसंयुक्त, शूद्रका प्रेष्य (दास आदि) से युक्त रखना चाहिये । मदनरत्नमें नारदने कहा है कि, सूतकके पीछे अपने कुलके उचित नामकरण करे और सम अक्षरोंसे ऐसा नाम रक्खे, जिसमें पूर्वमंगलरूप महीनेका नाम आवे । वहां ही गार्ग्यने भी कहा है कि, पिता बालकका नाम महीने वा गुरुके नामसे रक्खे। स्मृतिसंग्रहमें लिखा है कि, कृष्ण, अनन्त, अच्युत, चक्री, वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, हरि, योगीश, पुंडरीकाक्ष ये क्रमसे महीनोंके नाम हैं । यहां मार्गशिर वा चैत्रसे क्रम लेना चाहिये; यह मदनरत्नमें लिखा है। उस महीनेका नाम प्रथम सम्बोधनसे दे । देवमंदिर, हाथी, घोड़े, वृक्ष, वापी, कूप, सब दुकानके बेचनेयोग्य चिह्न, स्त्री और पुरुष, काव्य, कवि, पशु आदि, राजाके राजमहल, घरके चिह्नके लिये नामकरण करना लिखा है । नक्षत्रसे भी नाम करना, कारण कि, आश्वलायनने यह कहा है कि, नमस्कार करने योग्य नाम देखे (रक्खे), उस विद्याके नामको उपनयन आदिमें माता पिता जानें । और मदनरत्नमें शंखने लिखा है कि, कुलदेवता महीना नक्षत्र इनसे संयुक्त नाम पिता रक्खे, वह नक्षत्रका नाम ऐसा हो जिसमें नक्षत्रके पादका अक्षर आदिमें संयुक्त हो, यह परिशिष्टमें कहा है-जिस नक्षत्रमें जो अक्षर आदिमें हो वही अक्षर नामके आदिमें हो। सुदर्शनभाष्यमें तो यह लिखा है कि, रोहिणी, रेवती, मघा, मृगशिर, ज्येष्ठा, विशाखा इनमें उत्पन्न हुएका नाम ऐसा रक्खे जिसकी आदिमें वृद्धि हो और जिस

युक्षु । शेषेषु नाम्नोः कपरः स्वरोऽन्त्यः स्वाप्योरदीर्घः सविसर्ग इष्टः ॥" इत्युक्तम् । ष्ठान्त्येति प्रौष्ठपदेत्यत्रादौ ष्ठात्परे च वृद्धिः प्रौष्ठपाद इति । अन्त्यमध्यभरणीशब्दः श्रुतावुक्तः । तत्र श्रवणादौ च वारिवृद्धिः अपभरण आपभरण इत्यादि । मदनरत्ने वसिष्ठः–"जन्माहे द्वादशाहे वा दशाहे वा विशेषतः । उत्तरारेवतीहस्तमूलपुष्याः सवारुणाः ॥ श्रवणादिति मैत्रं च स्वातीमृगशिरस्तथा । प्राजापत्यं धनिष्ठा च प्रशस्ता नामकर्मणि ॥ २ ॥" अथ दोलारोहः । पारिजाते बृहस्पतिः–"दोलारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेऽपि वा । षोडशे दिवसे वापि द्वाविंशे दिवसेऽपि वा ॥" ज्योतिर्निबन्धे–" करत्रये वैष्णवरेवतीषु दितिद्वये वाश्विनकध्रुवेषु । कुर्याच्छिशूनां नृपतेश्च तद्वदान्दोलनं वै सुखिनो भवन्ति ॥" तत्रैव–"आन्दोलाशयने पुंसो द्वादशे दिवसः शुभः । त्रयोदशस्तु कन्याया न नक्षत्रविचारणा ॥ अन्यस्मिन् दिवसे चेत्स्यात्तिर्यगास्ये प्रशस्यते ॥" अथ दुग्धपानम् । नृसिंहः–"एकत्रिंशद्दिने चैव पयः शंखेन पाययेत् । अन्नप्राशननक्षत्रे दिवसोदयरात्रिषु ॥ " अथ कर्णवेधः । मदनरत्ने वसिष्ठश्रीधरौ–"मासे षष्ठे सप्तमे वाष्टमे वा वेध्यौ कर्णौ द्वादशे षोडशेऽह्नि । मध्येनाह्नः पूर्वभागे न रात्रौ नक्षत्रं द्वे द्वे तिथी वर्जयित्वा ॥ " अत्र जन्ममासो वर्ज्यः । ज्योतिर्निबन्धे गर्गः–

नक्षत्रमें हो उससे आगे वृद्धि हो और भरणी, श्रवण, शतभिषा, आश्विनीमें विकल्प करके वृद्धि हो और शेष नक्षत्रोंमें ख आदिमें जिनकी ऐसे नामियों (अकारभिन्नस्वर) से परे अन्त्यका स्वर इसी प्रकार होता है, जिससे परे ककार हो और जो दीर्घ न हो और जिसमें विसर्ग हो, जैसे–प्रौष्ठपदमें प्रौष्ठपाद अन्त्यशब्दसे भरणी ग्रहण करे, यह श्रुतिमें कहा है। मदनरत्नमें वसिष्ठने लिखा है कि, जन्मसे बारहवें, दशवें दिन नामकरणमें उत्तरा, रेवती, हस्त, मूल, पुष्य, शतभिषा, श्रवण, पुनर्वसु, अनुराधा, स्वाती, मृगशिर, रोहिणी, धनिष्ठा, ये नक्षत्र उत्तम हैं ॥ अब दोलारोहको लिखतें हैं–पारिजातमें बृहस्पतिने लिखा है कि, दशवें वा बारहवें वा सोलहवें वा बाईसवें दिन बालकको पालनेमें बैठावे। ज्योतिर्निबंधमें कहा है कि, हस्तसे तीन, श्रवण और रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, अश्विनी, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रमें बालक और राजाको पालनेमें झुलानेसे सुखी होते हैं। वहां ही कहा है कि, आंदोलनमें लड़कोंको बारहवां और कन्याओंको तेरहवां दिन उत्तम है, इसमें नक्षत्रका विचार नहीं करना, अन्यदिनमें करे तो उस नक्षत्रमें करे जो तिर्यङ्मुख हो, वह अच्छा है ॥ अब दुग्धपानमुहूर्त्त कहते हैं–नृसिंहने कहा है कि, ३१ वें दिन बालकको शंखसे दूध अन्नप्राशनके नक्षत्र और दिनमें वा उदयकी रात्रिमें पान करावे ॥ अब कर्णवेध कहते हैं–मदनरत्नमें वसिष्ठ और श्रीधरने लिखा है कि, छठे, सातवें मासमें बारहवें सोलहवें दिन दिनके मध्यमें या पूर्वभागमें उत्तम है और रात्रिमें कर्णछेदन न करे, दो नक्षत्र और दो तिथियोंको त्याग दे, इसमें जन्मके मासको वर्ज दे; कारण कि, ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने कहा है कि, छठे,

"मासे षष्ठे सप्तमे वाप्यष्टमे मासि वत्सरे। कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्ट्यायुःश्रीविवृद्धये ॥" मदनरत्ने-"प्रथमे सप्तमे मासि अष्टमे दशमेऽथवा । द्वादशे च तथा कुर्यात्कर्णवेधं शुभावहम् ॥" हेमाद्रौ व्यासः-"कार्त्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेऽपि वा । कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ " श्रीधरः-"हरिहयकरचित्रासौम्यपौष्णोत्तरार्यादितिवसुषु घटालीसिंहवर्ज्ये सुलग्ने । शशिगुरुबुधकाव्यानां दिने पर्वरिक्तारहिततिथिषु शुद्धे नैधने कर्णवेधः ॥" मदनरत्ने बृहस्पतिः-"द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी । द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने ॥ सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः । शूद्रस्य चायसी सूचीमध्यमाष्टांगुलात्मिका ॥ २ ॥" हेमाद्रौ देवलः-" कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः । तद्दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः ॥ " शंखः-" अंगुष्ठमात्रसुषिरौ कर्णौ न भवतो यदि । तस्मै श्राद्धं न दातव्यं दत्तं चेदासुरं भवेत् ॥" ताम्बूलभक्षणम् । चण्डेश्वरः-" सार्धमासद्वये दद्यात्ताम्बूलं प्रथमं शिशोः। कर्पूरादिकसांमिश्रं विलासाय हिताय च ॥ मूलार्कचित्रकरतिष्यहरीन्द्रभेषु पौष्णे तथा मृगशिरोऽदितिवासवेषु । अर्केन्दुजीवभृगुबोधनवासरेषु ताम्बूलभक्षणविधिर्मुनिभिः प्रदिष्टः ॥" अथ निष्क्रमणम् । ज्योतिर्निबन्धे-'तृतीये वा चतुर्थे वा

सातवें आठवें महीनेमें वा वर्षदिनमें कर्णवेधकी बड़ाई करते हैं; कारण कि, वह पुष्टि आयु लक्ष्मीके बढ़ानेवाला होता है। मदनरत्नमें कहा है कि, प्रथम, सातवें, आठवें, दशवें, बारहवें महीनेमें कर्णवेध शुभदायक है हेमाद्रिमें व्यासने कहा है कि, कार्तिक, पौष, चैत्र, फाल्गुनके शुक्लपक्ष और शुभदिनमें कर्णवेध करना उत्तम है। श्रीधरने कहा है कि, श्रवण, अश्विनी, हस्त, चित्रा, मृगशिर, रेवती, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य, धनिष्ठामें और कुम्भ, सिंह, वृश्चिकसे भिन्न लग्नमें; चन्द्र, बृहस्पति, बुध, शुक्रके दिनमें; पर्वरिक्तासे भिन्न तिथिमें और आठवें घर शून्यवाली लग्नमें कर्णवेध करे। मदनरत्नमें बृहस्पतिने कहा है कि, द्वितीया, दशमी, छठ, सप्तमी, त्रयोदशी, द्वादशी, पंचमी, तृतीया कर्णवेधमें उत्तम है। राजाकी सोनेकी, ब्राह्मण और वैश्यकी चांदीकी, शूद्रकी लोहेकी बीचकी अंगुलीसे ८ अंगुलकी सुईसे बींधे । हेमाद्रिमें देवलने कहा है कि, ब्राह्मणके कर्णके छिद्रमें सूर्यकी छाया प्रवेश न कर सके; कारण कि, उसको देखकर पुरातन भी पुण्य समूह नष्ट हो जाते हैं। शंखने कहा है कि, कानोंमें अंगुष्ठभरका छिद्र न हो, यदि हो तो उसे श्राद्ध न देना चाहिये और यदि दे तो वह श्राद्ध आसुरी हो जाता है ॥ अब ताम्बूलभक्षण कहते हैं-ढाई महीनेके बालकको प्रथम कपूरआदि मिलाकर विलास और हितके निमित्त पान दे। मूल, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, हस्त, पुष्य, श्रवण, ज्येष्ठा, रेवती, मृगशिर, पुनर्वसु, धनिष्ठा, इन नक्षत्रोंमें और सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र, बुध वारोंमें मुनियोंने ताम्बूलभक्षणकी विधि उत्तम लिखी है ॥ अब निष्क्रमणको कहते हैं-ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि,

मासि निष्क्रमणं भवेत् ॥' यमः-"ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम् । चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम् ॥" अत्र-'सूर्येन्द्वोः कर्मणी ये च तयोः श्राद्धं न विद्यते ।' इति छन्दोगपरिशिष्टात् । 'छन्दोगानां निष्क्रमणे वृद्धिश्राद्धं नास्ति' इति कल्पतरुः । व्यासः-"मैत्रे पुष्यपुनर्वसुप्रथमभे पौष्णेऽनुकूले विधौ हस्ते चैव सुरेश्वरे च मृगभे तारासु शस्तासु च । कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोर्बुधगुरौ शुक्रे विरिक्ते तिथौ कन्याकुम्भतुलामृगारिभवने सौम्यग्रहालोकिते॥" मदनरत्ने-'अन्नप्राशनकाले वा कुर्यान्निष्क्रमणक्रियाम् ॥' विष्णुधर्मे-"दिगीशानां दिने तत्र तथा चन्द्रार्कयोर्द्विजैः । पूजनं वासुदेवस्य गगनस्य च कारयेत् ॥ बहिर्निष्कासयेद्देहाच्छंखपुण्याहनिस्वनैः । चन्द्रार्कयोर्दिगीशानां दिशां च गगनस्य च । निक्षेपार्थमिमं दद्मि ते मे रक्षन्तु सर्वदा । अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवारात्रमथापि वा । रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ ४ ॥" माधवीये मार्कण्डेयः-"अग्रतोऽथ प्रविन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्वशः । शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥ प्रथमं यत्स्पृशेद्बालस्ततो भाण्डं स्वयं तदा । जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति ॥ २ ॥" इति । अथोपवेशनम् । प्रयोगपारिजाते पाद्मे विष्णुधर्मे च-"पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमु-

---

तीसरे वा चौथे महीनेमें निष्क्रमण होता है । यमराजने लिखा है कि, ३ मासमें बालकको सूर्यका दर्शन और चौथे महीनेमें चन्द्रका दर्शन करावे, इसमें सूर्य और चन्द्रमा आदिकी पूजाका कर्म और उनका श्राद्ध नहीं है,इस छन्दोगपरिशिष्टके कथनसे वेदपाठियोंके निष्क्रमणमें वृद्धिश्राद्धका विधान नहीं है, यह कल्पतरुका कथन है । व्यासने कहा है कि, अनुराधा,पुष्य, पुनर्वसु, अश्विनी, रेवती, हस्त, ज्येष्ठा, मृगशिर इन नक्षत्रोंमें शुभ चन्द्रमा और श्रेष्ठ ग्रहोंमें तथा बुध, गुरु, भृगुवारमें रिक्तासे भिन्न तिथियोंमें कन्या, कुम्भ, तुला, सिंह लग्नोंको सौम्य ग्रह देखते हों तो बालकको बाहर लिकाले । मदनरत्नमें भी कहा है कि,अन्नप्राशनके मुहूर्तमें निष्क्रमण करे। विष्णुधर्ममें कहा है कि,दिशाओंके अधिपतियोंके दिनमें चन्द्र वा सूर्यवारको ब्राह्मण, वासुदेव और आकाशका पूजन करे, शंख, स्वस्तिवाचन और बाजोंसहित बालकको घरमेंसे निकाले और यह कहे कि, चन्द्रमा सूर्य और दिशाओंके पति दिशा और आकाश इनको निक्षेप (धरोहर) के निमित्त इस बालकको देता हूं, यह इसकी रक्षा करे । यह बालक सावधान हो चाहे प्रमत्त हो दिन हो वा रात हो इन्द्र आदि देवता सब इसकी रक्षा करें । माधवीयमें मार्कण्डेयने कहा है कि, बालकके आगे शिल्पके भांड, सम्पूर्ण शस्त्र और वस्त्रको रखकर उसके लक्षणको देखे उनमेंसे जिसको बालक स्पर्श करले उससे ही उस बालककी जीविकाका अनुमान करे । अब भूमिमें उपवेशन (बैठाना) कहते हैं । प्रयोगपारिजातमें पद्मपुराण और विष्णुधर्मका वाक्य है कि, पांचवें महीनेमें बालकको भूमिपर बैठावे, उसमें सब

पवेशयेत् । तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौमोऽप्यत्र विशेषतः ॥ उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शक्रदैवतम् । प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभम् ॥ वाराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा द्विजम् । रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे ॥ आयुःप्रमाणं सकलं निक्षिपस्व हरिप्रिये । अचिरादायुषस्त्वस्य ये केचित्परिपन्थिनः ॥ जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् । वरेण्याशेषभूतानां माता त्वमसि कामधुक् ॥ अजरा चाप्रमेया च सर्वभूतनमस्कृता । चराचराणां भूतानां प्रतिष्ठानाव्यया ह्यसि ॥ कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम् ॥ ६ ॥"

अन्नप्राशनम् पारिजाते नारदः—"जन्मतो मासि षष्ठे स्यात्सौरेणान्नाशनं परम् । तदभावेऽष्टमे मासि नवमे दशमेऽपि वा ॥ द्वादशे वापि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम् । संवत्सरे वा संपूर्णे केचिदिच्छंति पण्डिताः ॥ २ ॥" मदनरत्ने लौगाक्षिः—'षष्ठेऽन्नप्राशनं जातेषु दन्तेषु वा' इति । शंखः—'संवत्सरेऽन्नप्राशनमर्धसंवत्सरे वा' इति । ज्योतिर्निबन्धे नारदः—"षष्ठे वाप्यष्टमे मासि पुंसां स्त्रीणां तु पंचमे । सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम् ॥ रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीममाम् । त्यक्त्वान्यतिथयः प्रोक्ताः सितजीवज्ञवासराः ॥ चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना ॥ ३ ॥" श्रीधरः—" आदित्यतिष्यवसुसौम्यकरानिला-

---

ग्रह श्रेष्ठ हों, विशेषकर मंगल उत्तम हो, तीनों उत्तरा, मृगशिर,पुष्य, ज्येष्ठा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, अनुराधा ये नक्षत्र उत्तम हैं, वराहदेवकी और भूमिकी पूजा करे । हे वसुधे ! हे देवि ! सब स्थानमें प्राप्त हुए इस बालककी तुम रक्षा करो, हे हरिप्रिये ! इसके सम्पूर्ण अवस्थाके प्रमाणकी रक्षा करना, जो इसकी चिरायुके शत्रु हैं वा जीवन, आरोग्य,धनके द्वेषी हैं उनको शीघ्र ही दग्ध करो । तुम सब भूतोंकी धारिणी और कामधेनुरूप तुम माता हो, अजर अमर और सब भूतोंके प्रणाम करने योग्य हो । चर, अचर भूतोंकी स्थिति तुममें है और तुम अविनाशिनी हो, हे मातः ! बालककी तुम रक्षा करो और ब्रह्मा भी इस बालकको मानें । अब अन्नप्राशनको कहते हैं—पारिजातमें नारदने कहा है कि, सौर मासके प्रमाणसे जन्मसे छठे महीनेमें अन्नप्राशन होता है, उसके अभावमें आठवें, नवमें,दशवें,बारहवें महीनेमें सौर प्रमाणसे अन्नप्राशन होता है, कोई पंडित संवत्सरकी पूर्तिपर इच्छा करते हैं। मदनरत्नमें लौगाक्षिने कहा है कि, छठे महीनेमें वा दांत जनमेपर अन्नप्राशन करे । शंखने कहा है कि, वर्षदिनमें वा आधे वर्षमें अन्नप्राशन करे । नारदने कहा है कि, छठे वा आठवेंमें पुरुषोंको और पांचवें वा सातवेंमें कन्याओंको नवान्नप्राशन करावे तो उत्तम है,रिक्ता,दिनका क्षय, नन्दा, द्वादशी, अष्टमी,अमावास्याको छोड़कर तिथि, शुक्र, बृहस्पति, बुधवार, चन्द्र, ये उत्तम हैं । और कृष्णपक्षके पिछली पांच तिथिको त्यागकर अन्नप्राशन करना उत्तम है । श्रीधर कहते हैं कि, पुनर्वसु, पुष्य, धनिष्ठा,

शिवचित्राजविष्णुवरुणोत्तरपौष्णमित्राः। बालान्नभोजनविधौ दशमे विशुद्धे छिद्रां विहाय नवमीं तिथयः शुभाः स्युः ॥" वसिष्ठः-"बालान्नभुक्तौ व्रतबन्धने च राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्ये। शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहे सीमन्तयात्रादिषु मंगलेषु ॥" मार्कण्डेयविष्णुधर्मयोः-"ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं चन्द्रार्कौ च दिगीश्वरान्। भुवं दिशश्च संपूज्य हुत्वा वह्नौ तथा चरुम् ॥ देवतापुरतस्तस्य धात्र्युत्सङ्गगतस्य च। अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे सकाञ्चने ॥ मध्वाज्यदधिसंयुक्तं प्राशयेत्पायसं तु वा ॥ ३ ॥" इति। अब्दपूर्तिनिर्णयः। अथाब्दपूर्तिः। व्यवहारनिर्णये-"नवाम्बरधरो भूत्वा पूजयेच्च चिरायुषम्। मार्कण्डेयं नरो भक्त्या पूजयेत्प्रयतस्तथा ॥ ततो दीर्घायुषं व्यासं रामं द्रौणिं कृपं बलिम्। प्रल्हादं च हनूमंतं विभीषणमथार्चयेत् ॥ स्वनक्षत्रं जन्मतिथिं प्राप्य संपूजयेन्नरः। षष्ठीं च दधिभक्तेन वर्षे वर्षे पुनः पुनः ॥ ३ ॥" तिथितत्त्वे एतन्नामभिस्तिलहोमोऽप्युक्तः। आदित्यपुराणे-"सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलवारिभिः। गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ स्वनक्षत्रं च पितरौ तथा देवः प्रजापतिः। प्रतिसंवत्सरं यत्नात्कर्त्तव्यश्च महोत्सवः ॥ २ ॥" कृत्यचिन्तामणौ-"गुडदुग्धतिलान्दद्याद्धस्ते ग्रन्थिं च बन्धयेत्। गुग्गुलं निम्बसिद्धार्थदूर्वागोरोचनादिकम् ॥ संपूज्य भानु-

---

मृगशिर, हस्त, स्वाती, अश्विनी, चित्रा, रोहिणी, श्रवण, शतभिषा, उत्तरा, रेवती, अनुराधा नक्षत्र बालकके अन्नभोजन करनेमें दशवें स्थान शुद्धवाली लग्न छिद्रा और नवमीको त्यागकर तिथि ये सब उत्तम कही हैं। वसिष्ठने कहा है कि, बालकका अन्नभोजन, यज्ञोपवीत, राजाका अभिषेक इनमें जन्मका नक्षत्र श्रेष्ठ है, विवाह सीमन्त यात्रा आदि मंगलकार्यमें निरन्तर अशुभ है। मार्कण्डेय और विष्णुधर्ममें कहा है कि, ब्रह्मा, शिवजी, सूर्य, चन्द्रमा, दिशाओंके स्वामी, पृथ्वी और दिशाको पूजकर और अग्निमें चरुको होमकर देवताओंके आगे माताकी गोदमें बैठे और भूषणोंसे सज्जित बालकको सुवर्णयुक्त पात्रमें शहत्, घृत, दहीसहित अन्न चटावे वा खीर बालकको भोजन करावे। अब अब्दपूर्ति (वर्षगांठ) को कहते हैं-व्यवहारनिर्णयमें कहा है कि, नवीन वस्त्रोंको धारण करके मार्कण्डेय आदि चिरायुषोंकी पूजा करे और सावधान हो भक्तिपूर्वक मनुष्य मार्कण्डेयकी पूजा करे, फिर दीर्घायु व्यास, राम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बालि, प्रह्लाद, हनुमान्, विभीषणकी पूजा करे और अपना नक्षत्र और जन्मतिथिको प्राप्त होकर मनुष्य दही और चालवसे वर्ष वर्षमें वारंवार षष्ठीकी पूजा करे। तिथितत्त्वमें इनके नामोंसे तिलोंसे होम करना भी कहा है। आदित्यपुराणमें लिखा है, कि, जन्मदिनमें सबलोग मांगलिक स्नान कर गुरु, देवता, अग्नि, ब्राह्मणोंको यत्नसे पूजे और अपना नक्षत्र माता पिता ब्रह्माका भी पूजन करे और प्रतिवर्ष यत्नसे महोत्सव करे। कृत्यचिंतामणिमें लिखा है कि, गुड, दूध, तिलका दान करे और हाथमें वर्षकी गांठ बांधे। गुग्गुल, नींब, दूर्वा, सरसों, गोरोचनसे सूर्य और गणेशकी

विघ्नेशौ महर्षिं प्रार्थयेदिदम् । चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने । रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा । मार्कण्डेय नमस्तेऽस्तु सप्तकल्पांतजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन्मुने । चिरंजीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवर द्विज ॥ कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीवनम् । मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पांतजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव । सतिलं गुडसंमिश्रमञ्जल्यर्धमितं पयः ॥ मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये ॥ ७ ॥" इति पयः पिबेत् ॥ तिथितत्त्वे स्कान्दे–"खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वगमौ तथा । आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥" तत्रैव दीपिकायाम्–"कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मतिथिर्भवेत् । अनृक्षयोगसंप्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥" कृतान्तः शनिः । 'तस्य सर्वौषधिस्नानं गुरुदेवाग्निपूजनम् ॥' वृद्धमनुः–" मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा । अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥" अत्र जन्मतिथिरौदयिकी ग्राह्या—"युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया । रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता ॥" इति कृत्यतत्त्वार्णवे वचनात् । विशेषो मत्कृतशूद्रधर्मे ज्ञेयः ॥ अथ कटिसूत्रम् । प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे-

---

पूजा करके महर्षिजनोंकी इस प्रकार प्रार्थना करे कि, भो मार्कण्डेय ! तुम जिस प्रकार चिरंजीवी हो मैं भी इसी प्रकार रूप, धन, लक्ष्मीसे सदा युक्त रहूं, हे मार्कण्डेय ! हे कल्पांततक जीनेवाले ! आपको प्रणाम है, हे भगवन् ! हे मुने ! आरोग्यसिद्धिके निमित्त प्रसन्न हो, हे मुनिश्रेष्ठ ! हे द्विजसत्तम ! हे मुनिशार्दूल ! जैसे तुम चिरजीवी हो इसी प्रकार मुझे भी चिरजीवी करो, हे मार्कण्डेय ! हे महाभाग ! हे सातकल्पजीवी ! आयु और आरोग्य सिद्धिके निमित्त तुम वरदाता हो, मार्कण्डेयसे वरको प्राप्त होकर तिल और गुड मिला-हुआ आधा अञ्जली दूध अवस्थाकी वृद्धिके निमित्त पान करता हूं, इस मन्त्रको पढ़कर दूध पीवे । तिथितत्त्वमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, वर्षगांठके दिन नख और केशोंका खण्डन, मैथुन, मार्ग, मांस, क्लेश, हिंसा न करे । वहां ही दीपिकामें कहा है कि, शनैश्चर और मंगलवारको जिसके जन्मकी तिथि हो और उस दिन श्रेष्ठ नक्षत्रका योग न हो तो उसके पद पदपर विघ्न होता है, उसको सर्वौषधिसे स्नान करना चाहिये, गुरु, देवता अग्निकी विधिपूर्वक पूजा करे । वृद्धमनुने कहा है कि, मरण, जन्म, संक्रांति, श्राद्ध, जन्मदिन, अयोग्योंका स्पर्श इनमें उष्ण (गर्म) जलसे स्नान न करे । इसमें जन्मकी तिथि उदयकालकी लेनी चाहिये, कारण कि, कृत्यतत्त्वार्णवमें यह कहा है कि, युगादि वर्षवृद्धि पार्वतीकी प्रिय सप्तमी ये सूर्योदयकी इच्छा करती हैं, इसमें दो तिथियोंका योग न मानना चाहिये, इसमें विशेष हमारे बनाये शूद्रधर्ममें देख लेना । अब कटिसूत्रको कहते हैं–प्रयोगपारिजातमें ब्रह्मपुराणका लेख है कि, प्रतिवर्षके अन्त्यके

" प्रतिसंवत्सरान्तर्क्षे वक्ष्ये नृणां विधिं परम् । दत्त्वा गोभूहिरण्यादि तथा स्वर्णादिनिर्मितम् ॥ बध्नीयात्कटिसूत्रं च वासः संगृह्य नूतनम् । दूर्वाङ्कुरैरथाज्येन चरुणा वा पिनाकिनम् । आयुष्यहोमं कृत्वा च तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ " अथ चौलम् । प्रयोगपारिजाते षड्गुरुशिष्यः-"जाताधिकाराज्जन्मादि तृतीये द्वे तु चौलकम् । आद्येऽब्दे कुर्वते केचित्पञ्चमेऽब्दे द्वितीयके ॥ उपवीत्या सहैवेति विकल्पाः कुलधर्मतः ॥ " बृहस्पतिः-"तृतीयेऽब्दे शिशोर्गर्भाज्जन्मतो वा विशेषतः । पञ्चमे सप्तमे वापि स्त्रियाः पुंसोऽपि वा समम् ॥ " तत्रैव नारदः-"जन्मतस्तु तृतीयेऽब्दे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः । पञ्चमे सप्तमे वापि जन्मतो मध्यमं भवेत् ॥ अधमं गर्भतः स्यात्तु नवमैकादशेऽपि वा ॥" इति । पारिजाते बृहस्पतिः-" उत्तरायणगे सूर्ये विशेषात्सौम्यगोलके । शुक्लपक्षे शुभं प्रोक्तं कृष्णपक्षे शुभेतरत् ॥ अशुभोऽन्यत्रिभागः स्यात्कृष्णपक्षे त्रिधा कृते ॥ " तत्रैव वसिष्ठः-" द्वित्रिपञ्चमसप्तम्यामेकादश्यां तथैव च । दशम्यां च त्रयोदश्यां कार्यं क्षौरं विजानता ॥ " नृसिंहीये-"षष्ठ्यष्टमी चतुर्थी च नवमी च चतुर्दशी । द्वादशी दर्शपूर्णे द्वे प्रतिपच्चैव निन्दिताः ॥ " वसिष्ठः-"रवेरङ्गारकस्यैव सूर्यपुत्रस्य चैव हि । निन्दिता दिवसाः क्षौरे शेषा कार्यकराः स्मृताः ॥ " ज्योतिर्निबन्धे बृह-

---

नक्षत्रमें मनुष्योंकी उत्तम विधिको लिखता हूं-गौ, भूमि, सुवर्णका दान करके सुवर्ण आदिसे निर्मित्त कटिसूत्र(कोंधनी) को बांधे तथा नये वस्त्र पहनकर दूबके अंकुर, घी और चरुसे शिवजीके निमित्त आयु बढ़ानेके निमित्त हवन करके पितर देवताओंको तृप्त करे ॥ अब चौलको कहते हैं--प्रयोगपारिजातमें षड्गुरुशिष्यका वाक्य है कि, जाताधिकार (गर्भाधान) वा जन्मसे तीसरे वर्षमें मुण्डन होता है, कोई प्रथम पांचवें दूसरे वर्षमें भी लिखते हैं और कोई यज्ञोपवीतके संग करते हैं, यह सब विकल्प कुलधर्मसे जानने चाहिये। बृहस्पतिने कहा है कि, बालक (स्त्री वा पुरुष) का मुण्डन गर्भ वा विशेषकर जन्मसे तीसरे, पांचवें, सातवें वर्षमें होता है । वहां ही नारदने कहा है कि, जन्मसे तीसरे वर्ष बुद्धिमान् श्रेष्ठ जानते हैं। जन्मसे पांचवें और सातवेंमें मध्यम होता है, गर्भसे नौवें और ग्यारहवेंमें अधम होता है । पारिजातमें बृहस्पतिने कहा है कि, उत्तरायण सूर्य हो और विशेषकर सौम्य गोलका योग हो तो शुक्लपक्षमें शुभ और कृष्णपक्षमें अशुभ है और कृष्णपक्षके तीन भाग करके पिछला भाग अच्छा नहीं । वहां ही वसिष्ठने कहा है कि, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, दशमी, त्रयोदशीमें ज्ञाता मनुष्यको क्षौर कराना चाहिये । नृसिंहने कहा है कि, छठ, अष्टमी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, प्रतिपदा निन्दित हैं और शेष शुभ हैं । वसिष्ठने कहा है कि, सूर्य, मंगल, शनिवार क्षौरमें निंदित हैं और शेष शुभ हैं । ज्योतिर्निबन्धमें बृहस्पतिने कहा है कि, पापग्रहोंके वारोंमें ब्राह्मणोंको रविवार श्रेष्ठ है;

स्वातिः-"पापग्रहाणां वारादौ विप्राणां शुभदं रवौ । क्षत्रियाणां क्षमासूनौ विट्शूद्राणां शनौ शुभम् ॥ हस्ताश्विविष्णुपौष्णाश्च श्रविष्ठादित्यपुष्यभम् । सौम्यचित्रे नवक्षौरे उत्तमा नव तारकाः ॥ त्रीण्युत्तराणि वायव्यं रोहिणी वारुणं तथा । क्षौरे षण्मध्यमाः प्रोक्ताः शेषा द्वादश गर्हिताः ॥ निधने जन्मनक्षत्रे वैनाशे चन्द्रमेऽष्टमे । विपत्करे वधे क्षौरं प्रत्यरे च विवर्जयेत् ॥ ३ ॥" अत्र लग्नशुद्धिरन्ये च योगा ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयाः । अन्ये च विशेषाः श्मश्रुकर्मनिर्णये वक्ष्यन्ते । एतच्च शिशोर्मातरि गर्भिण्यां न कार्यम् ॥ तदाह ज्योतिर्निबन्धे मदनरत्ने च वृद्धगार्ग्यः-" पुत्रचूडाकृतौ माता यदि सा गर्भिणी भवेत् । शस्त्रेण मृत्युमाप्नोति तस्मात्क्षौरं विवर्जयेत् ॥ " अस्यापवादमाह तत्रैव नारदः-"सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् । पञ्चाब्दात्प्रागथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥ इति गर्भविपत्तिः स्याच्छिशोर्वा मरणे यदि । सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते ॥ २ ॥" बृहस्पतिः-" गर्भिण्यां मातरि शिशोः क्षौरकर्म न कारयेत् ॥ व्रताभिषेके एवं स्यात्कालो वेदव्रतेष्वपि ॥ " अभिषेकः समावर्तनम् । 'गर्भिण्यामपि पञ्चमासपर्यन्तं न दोषः ' इत्युक्तं मुहूर्तदीपिकायां गर्गेण-'पंचमासादूर्ध्वं मातुर्गर्भस्य जायते मृत्युः ' इति । मदनरत्ने बृहस्पतिः-" पुत्रचूडाकृतौ

क्षत्रियोंको मंगल; वैश्य, शूद्रोंको शनि अच्छा है। हस्त, अश्विनी, श्रवण, रेवती, श्रविष्ठा (धनिष्ठा), पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिर, चित्रा ये नौ नक्षत्र नवीन क्षौरमें उत्तम हैं, तीनों उत्तरा, स्वाती, रोहिणी, शतभिषा, ये क्षौरमें मध्यम हैं, शेष बारह निंदित हैं। जन्मनक्षत्रमें क्षौर हो तो मरण, अष्टम चन्द्रमामें करे तो नाश, विपत्[1] नक्षत्रमें हो वा प्रत्यरि[2]में हो तो मृत्यु करे, इससे इनको त्याग दे, इसमें लग्नकी शुद्धि और दूसरे योग ज्योतिषियोंसे जानने और विशेष श्मश्रु (डाढी) कर्मके निर्णयमें लिखेंगे । बालककी माताको गर्भ हो तो यह मुण्डन न करना; यही ज्योतिर्निबन्ध और मदनरत्नमें वृद्धगार्ग्यने लिखा है कि, पुत्रके चूडाकर्ममें यदि माता गार्भिणी हो तो बालककी शस्त्रसें मृत्यु होती है, इससे उस कालमें क्षौर न करावे । इसका निषेध वहां ही नारदने लिखा है कि, पुत्रकी माता गर्भिणी हो तो पांच वर्षसे प्रथम चूडाकर्म न करे, पांच वर्षके उपरान्त तो कर ले। यदि गर्भमें विपत्ति हो अर्थात् पात हो जाय वा बालक मरजाय तो यज्ञोपवीतके संग करे, तब कुछ दोष नहीं है। बृहस्पतिने कहा है कि, बालककी माता गर्भिणी हो तो मुंडन न करे और व्रतका अभिषेक और देवव्रतोंमें भी इसी प्रकार होता है। गर्भिणी होनेपर भी पांचवर्षतक दोष नहीं लगता, यह मुहूर्तदीपिकामें गार्ग्यने लिखा है कि, पञ्चम मासके उपरान्त माताके गर्भकी मृत्यु होती है । मदनरत्नमें बृहस्पतिने

---

१ विपत्-कृत्तिका । २ प्रत्यरिः-मृगशिर ।

माता गर्भिणी यदि वा भवेत् । विपद्यते गुरुस्तत्र दम्पती शिशुरब्दतः ॥ गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म तु । पंचमासादधःकुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ " गर्गः-"ज्वरस्योत्पादनं यस्य लग्नं तस्य न कारयेत् ॥ दोषनिर्गमनात्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥" लग्नमिति मंगलोपलक्षणम् ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः-"विवाहोत्सवयज्ञेषु माता यदि रजस्वला । तदा स मृत्युमाप्नोति पंचमं दिवसं विना ॥ " वसिष्ठः-'यस्य मांगलिकं कार्यं तस्य माता रजस्वला ।' अर्धं तदेव । तत्रैव बृहस्पतिः-"प्राप्तमभ्युदयश्राद्धं पुत्रसंस्कारकर्मणि । पत्नी रजस्वला चेत्स्यान्न कुर्यात्तत्पिता तदा ॥ " पितेति कर्तृमात्रोपलक्षणम् ॥ संकटे तु वाक्यसारे उक्तम् "अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे ह्युपस्थिते । श्रियं संपूज्य विधिवत्ततो मंगलमाचरेत् ॥" एतच्च मण्डनोत्तरं न कार्यम्-'न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दभेदः ।' इति मदनरत्ने वसिष्ठोक्तेः । तत्रैव कात्यायनः-"कुले ऋतुत्रयादर्वाङ्मण्डनान्न तु मुण्डनम् । प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मंगलत्रयम् ॥" तथा वृद्धमनुः-"एकमातृजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥" आशौचे तु संग्रहे-"संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते । कूष्माण्डाभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥ चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमा-

---

लिखा है कि, पुत्रके चूडाकर्ममें यदि माता गर्भिणी हो तो गुरु, माता, पिता, बालक ये चारों वर्ष दिनमें मरजाते हैं । माताके गर्भमें मुण्डन ५ महीनेसे प्रथम कर ले और पीछे न करे । गर्गने कहा है कि, जिसको ज्वर हो वह मंगलका कार्य न करे, वह दोष दूर होने पर पीछे स्वस्थ होकर धर्म करे । ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने कहा है कि, विवाह उत्सव यज्ञोमें यदि माता रजस्वला हो तो पांचवें दिनको त्यागकर वह पुरुष जिसका मंगल कार्य है मृत्युको प्राप्त होता है । वसिष्ठने भी कहा है कि, जिसका मांगलिक कार्य हो उसकी माता यदि रजस्वला हो तो वह पांचवें दिनको त्यागकर मृत्युको प्राप्त होता है । वहां ही बृहस्पतिने कहा है कि, पुत्रके संस्कार कर्मके निमित्त नांदीमुख श्राद्धमें यदि पत्नी रजस्वला होजाय तो उसके पिताको नान्दीमुख श्राद्ध न करना चाहिये । इसमें पिताशब्द कृत्य करनेवालेका उपलक्षण है । यदि विपत्ति हो तो वाक्यसारमें यह लिखा है कि, और मुहूर्त न मिले और रजोदोष होजाय तो विधिसे लक्ष्मीका पूजन करके मंगलकार्य करे । यह मुण्डनसे पीछे न करना; कारण कि, मदनरत्नमें वसिष्ठने यह लिखा है कि, वर्षके मध्यमें और एक गोत्रमें मंडन (विवाह) से उपरान्त मुण्डन न करे । वहां ही कात्यायनने यह कहा है कि, एककुलमें तीन ऋतुसे प्रथम मंडनसे मुण्डन, प्रवेशसे निर्गम और तीन मंगलकार्य इष्ट नहीं है । वहां ही वृद्धमनुने कहा है कि, एक मातासे उत्पन्न हुए पुरुष स्त्रीका एक वर्षमें एक कर्म न करे, यदि माताका भेद हो तो कर ले । आशौच हो तो संग्रहमें यह कहा है कि, संकट हो या सूतक होजाय तो कूष्मांडी ऋचाओंसे घृतका हवन करके दुधारी गौका दान करे, फिर चूडा, यज्ञोपवीत, विवाह, प्रतिष्ठा

चरेत् ॥" इति । ज्योतिर्निबन्धे-" षष्ठेऽब्दे षोडशे वर्षे विवाहाब्दे तथैव च । अन्तर्वत्न्यां च जायायां नेष्यते मुण्डनं क्वचित् ॥ " अन्योऽपि विशेषो वक्ष्यते ॥ दीपिकायाम्-" न चूडा जन्मभाग्नेये दारुणेषु शनौ कुजे ॥ प्रतिपद्भद्ररिक्तासु विद्यारम्भस्तु पंचमे ॥" प्रयोगरत्ने-"मध्ये शिरसि चूडा स्याद्वासिष्ठानां तु दक्षिणे । उभयोः पार्श्वयोरत्रिकश्यपानां शिखा मता ॥" माधवीयेऽप्येवम् । आपस्तम्बस्त्वाह-'तूष्णीं केशान्विनीय यथार्षि शिखा निदधाति । यथार्षि प्रवरसंख्यया । तासां मध्यशिखावर्जमुपनयने वपनं कार्यम् । प्रतिदिशं प्रवपति ।' इत्युपनयने तेनैवोक्तेः । "रिक्तो वा एषो न पिहितो यन्मुंडस्तस्मै तदपिधानं याच्छिखा" इति श्रुतेः ॥ 'विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ' इति निषेधाच्च । सत्रे तु-'वचनात्सशिखं वपनम्' इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् । यत्तु-'कुमारा विशिखा इव' इति लिंगं तच्छंदोगपरम् ॥ अपरार्के मदनरत्ने च लौगाक्षिः-'दक्षिणतः कमुज्ञा वसिष्ठानामुभयतोऽत्रिकश्यपानां मुण्डा भृगवः । पञ्चचूडा अंगिरसो वाजिमेके । मंगलार्थं शिखिनोऽन्ये यथाकुलधर्मं वा ।' इति । कमुज्ञा-शिखा । वाजिः-केशपांक्तिः । स्मृतिदर्पणे-"एका शिखा दक्षिणतो वसिष्ठगोत्रस्य पञ्चांगिरसो

आदि करे । ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, छठे, सोलहवें वर्षमें वा विवाहके वर्षमें स्त्री गर्भवती हो तो मुण्डन न करे. और अन्य विशेष (विवाहके प्रकरणमें) लिखेंगे । दीपिकामें कहा है कि, जन्मनक्षत्र, कृत्तिका, दारुणसंज्ञक नक्षत्र, शनैश्चर और मंगलवार, प्रतिपदा और भद्रा, रिक्ता तिथि इनमें चूडाकर्म न करे और विद्याका आरम्भ पांचवें वर्षमें करे । प्रयोगरत्नमें कहा है कि, वसिष्ठगोत्रियोंकी चूडा शिरके दक्षिणमें अत्रि और कश्यप गोत्रियोंकी शिखा दोनों पार्श्वोंमें और सबकी शिरके मध्यमें होती है । माधवीयमें भी इसी प्रकार कहा है । आपस्तम्ब तो यह लिखते हैं कि, मौन होकर बालोंको काटकर ऋषियोंके प्रवरोंकी संख्याके अनुसार शिखाको धारण करनी चाहिये और उनका यज्ञोपवीतमें मुंडन मध्यशिखाको त्यागकर होता है; कारण कि, आपस्तंबने कहा है कि, उपनयनमें शिखाकी चारों दिशाओंको मुंडन करे । श्रुतिमें भी कहा है कि, जो यह मनुष्य शिखासे न ढका हो तो रिक्त (खाली) है, जिसे मुण्ड कहते हैं उसका शिखा ही ढकना है और यह निषेध भी है कि, जो कृत्य शिखा और विना यज्ञोपवीतके किया है वह सब निषिद्ध है, अर्थात् न कियेके तुल्य है । यज्ञमें तो वाक्यसे शिखासहित मुण्डन होता है । यह सुदर्शन भाष्यमें लिखा है । जो यह प्रमाण है कि, शिखाहीन कुमारोंके तुल्य है, यह छांदोगि (साम वेदपाठि)-योंके विषयमें जानना । अपरार्क और मदनरत्नमें लौगाक्षिने कहा है कि, वासिष्ठोंकी शिखा दक्षिणकी ओर, अत्रि और कश्यप गोत्रकी दोनों ओर, भृगु मुंडे, आंगिरसगोत्री पांच शिखावाले अथवा मंगलके निमित्त एक केशोंकी पंक्ति रक्खे और अन्य अपने कुलधर्मके अनुसार शिखासंयुक्त रहें । स्मृतिदर्पणमें कहा है कि, वसिष्ठगोत्रियोंकी दाहिनी ओर एक शिखा, आङ्गिरस तथा भृगुगोत्रवालेकी पांच शिखा और कश्यप

भृगोस्तु। नैका शिखा कश्यपगोत्रजानां शिखोभयत्रापि यथाकुलं च ॥"
एतच्छूद्रातिरिक्तविषयम्। 'शूद्रस्यानियताः केशवेशाः' इति वसिष्ठोक्तेः। यत्तु पाद्मे-'न शिखी नोपवीती स्यान्नोच्चरेत्संस्कृतां गिरम्।' इति शूद्रमुपक्रम्योक्तम्। तदसच्छूद्रस्येति केचित्। विकल्प इति तु युक्तम्। अत एव हारीतः-
"स्त्रीशूद्रौ तु शिखां छित्त्वा क्रोधाद्वैराग्यतोऽपि वा। प्राजापत्यं प्रकुर्यातां निष्कृतिर्नान्यथा भवेत् ॥" एतत् परिग्रहपक्षे। अत्र देशभेदाद्व्यवस्थेति दिक् ॥
ज्योतिर्निबन्धे-"नर्मदोत्तरदेशे तु सिंहस्थे देवमन्त्रिणि। शुभकर्म न कुर्वीत निषेधो नास्ति दक्षिणे ॥" अत्र भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये-
"निवृत्ते चूडहोमे तु प्राङ्नामकरणात्तथा। चरेत्सांतपनं भुक्त्वा जातकर्माणि चैव हि ॥ अतोऽन्येषु तु संस्कारेषूपवासेन शुद्ध्यति ॥" एते संस्काराः स्त्रीणाममन्त्रकाः कार्याः। 'होमस्तु समन्त्रकः' इति प्रयोगपारिजाते ॥ आश्वलायनोऽपि-
होमकृत्यं तु पुंवत्स्यात्स्त्रीणां चूडाकृतावपि।' इति। मनुरपि-'अमन्त्रका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।' इति होमोऽप्यमन्त्रक इत्येके संस्काराः स्त्रीणामहोमकास्तूष्णीं स्युरिति स्मृत्यर्थसारे। होमो नेति वृत्तिकृत् ॥ अथ विद्यारम्भः।
मदनरत्ने नृसिंहः-"अक्षरस्वीकृतिं कुर्यात्प्राप्ते पञ्चमहायने। उत्तरायणगे सूर्ये

गोत्रवालेकी दोनों ओर होती है अथवा अपने अपने कुलके अनुसार शिखा रखनी चाहिये। यह भी शूद्रके भिन्नोंमें जानना; कारण कि, वसिष्ठने लिखा है कि, शूद्रके केशवेशोंका नियम नहीं है। जो पद्मपुराणमें शूद्रके विषयमें लिखा है कि, शूद्र शिखा और यज्ञोपवीत धारण न करे और न संस्कृत वाणी बोले, यह असत् शूद्रके निमित्तक है, यह कोई कहते हैं, विकल्प तो युक्त है। इसीसे हारीतने लिखा है कि, क्रोध वा वैराग्यसे स्त्री और शूद्र शिखाच्छेदन करके प्राजापत्य व्रत करें, अन्यथा इसका प्रायश्चित्त नहीं है। यह परिग्रह पक्षमें जानना। इसमें देशभेदसे व्यवस्था माननी चाहिये, यही मार्ग है। ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, सिंहके बृहस्पतिमें नर्मदाके उत्तर देशोंमें शुभकर्म न करे और दक्षिणदेशोंमें इसका दोष नहीं है। यहां भोजनमें प्रायश्चित्त माधवीयमें इस प्रकार वर्णन किया है कि, मुण्डनके हवन होनेपर और नामकरणमें भोजन करके सान्तपन कृच्छ्र करना, इससे अन्य संस्कारोंमे भोजन करके व्रतकरके शुद्ध होता है। ये संस्कार स्त्रियोंके मन्त्ररहित करने चाहिये और हवन तो मन्त्रोंसे करना चाहिये। प्रयोगपारिजातमें आश्वलायनने लिखा है कि, स्त्रियोंके चूडाकर्ममें पुरुषोंके तुल्य होम कर्म होता है। मनुने कहा है कि, स्त्रियोंके ये सब कर्म्म विना मंत्र होते हैं। कोई यह लिखते हैं कि, स्त्रियोंका हवन भी विना मन्त्र होता है। स्त्रियोंके संस्कार हवनसे भिन्न मौनता युक्त होते हैं, यह स्मृत्यर्थसारग्रन्थमें कहा है। होम भी नहीं होता, यह वृत्तिकारका कथन है ॥ अब विद्यारम्भको कहते हैं-मदनरत्नमें नृसिंहने कहा है कि,